12·3

स्तुतिमणिमाला

द्वितीयो भागः

सम्पादक :

आचार्यकरुणापतित्रिपाठी



उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-अकादमी, लखनऊ


2215

SĀHITYA-GRANTHAMĀLĀ

[Vol-II]



STUTIMAṆIMĀLĀ

(PART-II)

EDITED

By

ĀCĀRYA KARUṆĀPATI TRIPĀṬHĪ

Chairman

Uttar Pradesh Sanskrit Academy

&

Ex-Vice-chancellor

Sampurnanand Sanskrit University

VARANASI



UTTAR PRADESH SANSKRIT ACADEMY

LUCKNOW

1985

Published by—
Hari Madhava Sharan
Director, Uttar Pradesh Sanskrit Academy,
Lucknow–226 007

Available at—
Sales Department,
Sanskrit Bhavanam, Uttar Pradesh Sanskrit Academy.
New Hydarabad
Lucknow–226 007

First Edition : 3100, Copies

Price Rs. { **20·00 Ordinary**
25·00 Hard bounded

Printed by—
Vijaya Press
Sarsauli
Varanasi.

साहित्य–ग्रन्थमाला

[द्वितीयं पुष्पम्]



स्तुतिमणिमाला

(द्वितीयो भागः)

सम्पादकः

आचार्यकरुणापतित्रिपाठी

अध्यक्षः

उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-अकादम्याः

कुलपतिचरश्चः

वाराणसीस्थ-

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य



उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-अकादमी, लखनऊ

२०४२ तमे वैक्रमाब्दे १९०७ तमे शकाब्दे १९८५ तमे ईशवीये

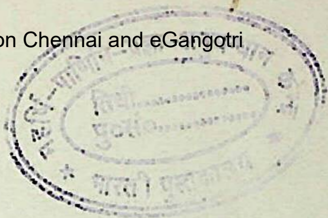
प्रकाशकः
हरिमाधवशरणः
निदेशकः, उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-अकादम्याः

प्राप्तिस्थानम्—
विक्रयविभागः, संस्कृतभवनम्,
उत्तर-प्रदेश-संस्कृत-अकादमी,
नया हैदराबाद,
लखनऊ–२२६ ००७

प्रथमं संस्करणम्—३१०० प्रतिरूपाणि

मूल्यम् : { अजिल्द—२०-०० रूप्यकाणि
सजिल्द—२५-०० रूप्यकाणि

मुद्रकः—
विजय प्रेस
सरसौली
वाराणसी



मङ्गलपाठः

हरिः ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १ ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वेनो देवाऽअवसा गमन्निह ॥ २ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ ३ ॥

शतमिन्नु शरदोऽअन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ४ ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वेदेवाऽअदितिः पञ्चजनाऽअदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ ५ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ६ ॥

यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु ।
शन्नः कुरुप्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ७ ॥ हरिः ॐ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्राक्कथन

'स्तुतिमणिमाला' के प्रथम भाग में मैंने संकेत किया था कि यदि सुविधा मिली तो इसका द्वितीय भाग अधिक विस्तृत रूप में प्रकाशित किया जायगा। प्रथम भाग में केवल अत्यन्त प्रचलित और लोकप्रिय कतिपय स्तोत्रों का संकलन किया गया था। उस अवसर पर अधिक समय भी नहीं मिला था। लगभग दो सप्ताह में उसे प्रकाशित कर दिया गया था। उद्देश्य यह था कि धर्मप्राण जनता को कुछ सहायता मिले और वे अपने नित्य की पूजा-उपासना में अपने प्रमुख पञ्चदेवों, भैरव आदि और पूज्य नदी-प्रभृति की उपासना में स्तुतियों का प्रयोग कर सकें। यह भी ध्यान रखा गया था कि उक्त भाग के स्तोत्रों में न्यास आदि के प्रयोग का उपक्रम न रखा जाय। इसका उद्देश्य यह था कि अत्यन्त सामान्य परिवेश में भी यदि उपासक चाहे तो उक्त स्तोत्रों का पाठ कर सकता है। इसी कारण अधिकांश चुने हुए एवं अत्यन्त प्रचलित स्तोत्र उक्त 'स्तुतिमणिमाला' में गुम्फित किये गए थे, जैसे—गणेश का द्वादशनामस्तोत्र, विष्णुसहस्रनाम, महिम्नःस्तोत्र, देवीक्षमापराधन-स्तोत्र, वाल्मीकि-रामायणोक्त—आदित्यहृदयस्तोत्र—इत्यादि।

उक्त प्रकार के प्रयास द्वारा सामान्य जन को सात्त्विक और क्रमशः आध्यात्मिक भावनाओं की ओर उन्मुख और अभ्यस्त करने की कामना थी। उक्त प्रयास का केवल लक्ष्य इतना ही था कि उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी सात्त्विक भावों के प्रबोधन द्वारा जन-जन के हृदय में सदाचार और सदनुष्ठान की प्रेरणा विकसित कर सके। मैं नहीं जानता कि आकादमी द्वारा सौंपे गए उत्तरदायित्व की पूर्ति के इस

प्रयास में हमें कितनी सफलता मिली है। इतना अवश्य जानता हूँ कि जिन लोगों को यह 'स्तुतिमणिमाला' प्रथम भाग समर्पित की गई, उन्होंने इसे बड़े सद्भाव से स्वीकार किया, पसन्द किया। उनको यह रुचिकर भी हुई और बहुत से जनों ने इस प्रयास की भूरि-भूरि प्रशंसा भी की। मेरे मन में और उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी की कार्यकारिणी समिति के समस्त सदस्यों के मन में यह अहसास हुआ कि ऐसे प्रयासों का क्रम बराबर चलता रहे।

इन्हीं परिस्थितियों में स्तुतिमणिमाला के द्वितीय भाग का संपादन-भार उठाने का मैंने साहस किया। लोगों द्वारा उत्साहित कार्य करने में बड़ा बल मिलता है। इस कृति के द्वितीय भाग में यद्यपि मुझे और मेरे सहायक डॉ० चन्द्रकान्त द्विवेदी (सहायक निदेशक) को अत्यधिक श्रम करना पड़ा, क्लेश उठाना पड़ा; पर इस कार्य में उत्साह बढ़ता ही गया—"क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते"—यदि क्लेश उठाने पर उसका सुफल प्राप्त हो जाता है, तो सारी श्रांति और क्लांति दूर हो जाती है। मनुष्य अपने को ताजा-ताजा अनुभव करता है। उसे लगता है कि उसकी सारी थकावट न जाने कहाँ विलीन हो गई। इसी स्थिति का आज इस द्वितीय भाग के स्तोत्रों का संकलन और संपादन करके मैं अनुभव कर रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि इसमें मुझे कहाँ तक वास्तविक सफलता मिली है। पर मेरा हठीलामन मान बैठा है कि अपने प्रयास में मेरे सफलता के चरण आगे अवश्य ही बढ़े हैं।

प्रथम भाग में मुख्यतः पौराणिक तथा पौराणिक शैली के थोड़े से स्तोत्रों का संकलन किया गया था। थोड़े से का तात्पर्य यह है कि स्वयं पौराणिक स्तोत्रों की ही—पुराण, उपपुराण, उपोपपुराण में—इतनी अगण्य संख्या है कि यदि उन्हीं का सर्वाङ्गीण संकलन किया जाय तो उनकी गणना करना सम्भव नहीं है। सभी पुराण स्तोत्रों से भरे पड़े हैं। श्रीमद्भागवतपुराण, श्रीमद्देवीभागवतपुराण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण मत्स्य और कूर्मादि एवं ब्रह्मवैवर्त्त पुराण आदि तो हजारों-हजारों

स्तोत्रों को अपने कलेवर में सजोंए हुए हैं। इनके अतिरिक्त तान्त्रिक ग्रन्थों—रुद्रयामल, ब्रह्मयामल आदि में भी स्तोत्रों की संख्या शत-शत से ऊपर है। स्वयं स्वतंत्र स्तोत्र वाङ्मय ही इतना विशाल है कि जिनका अनुमान करना भी कल्पनातीत है। कुल मिलाकर स्तोत्रों की संख्या केवल हिन्दू धर्म के संस्कृत-भाषा वाङ्मय में ही लाखों से अधिक हो जाती है। ऐसे अगाध और विशाल स्तोत्र-रत्नाकर से मुक्तामणियों का चुनकर निकालना मेरे लिए वैसा ही है, जैसा कालिदास ने कहा है:— "तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" अर्थात् घड़ा के ऊपर काठ का तख्ता बाँधकर घरनैल रूपी लघु नौका द्वारा अनन्त सागर को पार करने की महत्त्वाकांक्षा।

फिर भी संस्कृत वाङ्मय के स्तोत्र—बचपन से मेरे लिए चाँद तारों के सदृश झिलमिलानेवाले मोहक वस्तु थे। उन स्तोत्रमणियों के प्रति प्रेमभरी मेरी ललक ने अपनी असमर्थता का और वृद्धावस्था में कार्य की अक्षमता का भलीभाँति ज्ञान रहते हुए भी इस दुस्तर कार्य का भार सहर्ष उठा लिया। इसका वास्तविक निर्णय संस्कृत के विद्वान् और स्तोत्र-प्रेमी पारखी सुधीजन ही करेंगे कि इस कार्य में मुझे कुछ सफलता मिली है या नहीं। अभी इसका एक और भाग भी निकालने की उत्सुकता है। लेकिन यदि सुयोग मिला तभी ऐसा कर सकूँगा।

पूर्वभाग की तरह इस भाग में भी मुख्यतः श्लोक इस रूप से मुद्रित किये गए हैं, जिनका पाठ करने में श्लोक-परक और छन्दोगत कठिनाई न हो।

इस खण्ड में कतिपय पौराणिक स्तोत्रों को देने के लिए (जिनका स्मरण मुझे कुछ-कुछ था कि अमुक पुराण में है और पुराणों, महाभारत आदि के जिन संकलनीय स्तोत्रों में मेरी रुचि थी), उन्हें चुनकर के स्तुतियों का यहाँ संकलन किया गया है। जैसे—महाभारत, अग्निपुराण,

स्कन्दपुराण (काशी-खण्ड), श्रीमद्भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण आदि, जो उत्तम स्तोत्र संकलन करने से छूट गए हैं, वे या तो संग्रह में स्थानाभाव के कारण अथवा मेरे अज्ञान के कारण। इस संकलन का कलेवर बढ़ता जा रहा था। अतः इसके समापन की अनुभूति मन को कुरेदने लगी। फिर त्वरा के साथ फैले हुए कार्यों को समेट लिया गया।

इस संग्रह में कुछ तान्त्रिक पद्धति के स्तोत्र संगृहीत हैं। उदाहरणार्थ—विष्णुपञ्जर-स्तोत्र, भविष्योत्तर-पुराणान्तर्गत आदित्यहृदय-स्तोत्र, हनुमद्-वाडवानल-स्तोत्र, पञ्चमुख-हनुमत्-स्तोत्र आदि।

इस 'स्तुतिमणिमाला' के द्वितीय भाग में कतिपय प्रमुख वैदिक सूक्त और कुछ लघु उपनिषदों का भी संग्रह किया गया। अनेक वैदिक सूक्तों का जैसे—'उषा-सम्बन्धी-सूक्त', 'वरुण-सूक्त', 'अग्नि-सूक्त', 'इन्द्र-सूक्त', 'अश्विनीकुमार-सूक्त' आदि को भी इसमें रखना चाहता था; परन्तु स्मार्त पञ्चदेवोपासना पद्धति में अथवा लोक-देवों के रूप में इनकी लोकप्रियता अपेक्षाकृत कम रहने से और 'स्तुति-मणिमाला' के लिए इन स्तोत्रों का संकलन करके भी मैंने इस 'द्वितीय-भाग' में उन्हें जोड़ने से अपने को रोक लिया।

वैदिक सूक्तों के संकलन में अनेक कठिनाइयाँ भी उपस्थित हुईं। जिस प्रेस में हमारा यह संकलन छप रहा था, उसे पहले से निर्देश न देने के कारण वहाँ गुं या गूं का टाईप उपलब्ध न हो सका। इसी प्रकार यजुर्वेद में 'य' का पेट काटकर अनेकत्र लिखा जाता है और जिसका उच्चारण अल्पप्राण नादघोष प्रायः तालव्य 'ज' के समान होता है। वह भी उपलब्ध नहीं है। अक्षरों के ऊपर आगे और नीचे उदात्तादि-स्वर-निर्देशक अथवा उच्चारण-परक जो चिह्न-विशेष होते हैं, उन्हें भी नहीं बनवा सका। फिर भी इन कतिपय वैदिक सूक्तों का

संकलन रुचिकर लगा और मैंने इन उपयोगी एवं अति प्रचलित वैदिक सूक्तों का संकलन कर लिया।

इस संकलन में कतिपय उपनिषद् भी दिए गए हैं। जगद्गुरु शंकराचार्य ने जिन दश उपनिषदों पर भाष्य लिखा है, उनमें से छोटे-छोटे केवल तीन उपनिषद्—ईशावास्य, केन और माण्डूक्य ही लिए गये हैं। इसमें से 'ईशावस्योपनिषद्' का तो अनेक धार्मिक जन नित्य पाठ भी करते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ कुछ और उपनिषद् भी—जो मुख्य रूप से उपासना परक हैं और जिनकी पूजा-पाठ में आवश्यकता पड़ती रहती है, उन्हें—मैंने इस संग्रह के अन्तर्गत उद्धृत कर दिया है।

वैदिक सूक्तों के सम्बन्ध में मैंने कुछ चिह्नों की चर्चा की है। शुक्ल-यजुर्वेद का पाठकर्ता वैदिक जब उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के अनुसार पाठ करता है, तब उसमें स्वरों का उच्चारण तदनुकूल ही होता है। उसके लिए शुक्लयजुर्वेद माध्यदिन शाखा की संहिता या अन्य कर्मकाण्ड या रुद्राष्टाध्यायी ग्रन्थों में ऐसे चिह्नों का लिपि में मुद्रित या लिखित में प्रयोग होता है। उदात्त और अनुदात्त के लिए चिह्न लगते हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ तक मेरी जानकारी है, उक्त शाखा के शुक्लयजुर्वेद-संहिता के पाठ में कुछ लिपिचिह्न ऐसे भी होते हैं, जो हस्त-संचालन के विविध रूपोंका सकेत करते हैं। उक्त शुक्ल-यजुर्वेद का पाठ पाठकर्त्ता वैदिक जब उदात्त, स्वरित और अनुदात्त स्वरों के अनुसार करता है, तब उसमें स्वरों का उच्चारण तदनुकूल ही होता है। उसके लिए शुक्ल-यजुर्वेद की संहिता या अन्य कर्मकाण्ड के और रुद्राष्टाध्यायी आदि के ग्रन्थों में चिह्नों का लिपि में मुद्रित या लिखित रूप के अनुसार प्रयोग होता है। उदात्त और अनुदात्त के लिए भिन्न-भिन्न चिह्न लगते हैं। प्रायः शुक्ल-यजुर्वेद-संहिता में भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से बलात्मक स्वर (स्ट्रेस एक्सेन्ट) का प्रयोग होता है। इस कारण बहुत से चिह्न

पाठानुसार और भी लगते हैं। हस्त-संचालन भी उसमें परम्परागत विधि से ही पाठकर्त्ता जब संपादन करता है, तभी वह सस्वर पाठ—शुद्ध विधि से संपन्न माना जाता है। यह अत्यन्त अभ्यास-साध्य है और गुरु-परम्परा के शिक्षण से ही सीखा जा सकता है।

ऋग्वेद-संहिता के मन्त्रों का पाठ प्रायः संगीतात्मक अथवा आरोहावरोहात्मक (पिच एक्सेन्ट के अनुकूल) होता है। अतः उसमें हस्त-संचालन भी शुक्ल-यजुर्वेद की अपेक्षा सरल होता है। स्वर-प्रयोग के चिह्न भी कम दुरूह होते हैं। सामवेद में तो वैदिक स्वरगान की प्रक्रिया का दुस्तर और अति अभ्यास-साध्य पाठ ही आवश्यक होता है। सामवेद और अथर्ववेद के सूक्त इस 'माला' में नहीं गुँथे गए हैं। अतः उनके सम्बन्ध में चर्चा अनवसर और अनावश्यक है।

वैदिक-प्रक्रिया का मुझे अल्पमात्र ही ज्ञान है। फिर भी वैदिक सूक्तों के संपादन का साहस मैंने किया है। ज्ञानलव-दुर्विदग्ध होते हुए भी यह साहस उचित नहीं था। परन्तु स्तुति-पाठ की उपयोगिता की दृष्टि से इसमें वैदिक सूक्तों का संकलन किया गया है। अतः लिपियों, वैदिक-चिह्नों और वैदिक स्वर-प्रक्रिया के सूचक संकेतों आदि का अभाव इसमें खटक सकता है। पर मुद्रण कठिनाई के कारण ही उसे छोड़ना पड़ा।

वैदिक-सूक्तों के इस संकलन और सम्पादन कार्य में निश्चय ही अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं। इनमें कुछ का मुझे ज्ञान है और कुछ का नहीं भी है। पाठों को शुद्ध रूप में लिपि-विशेष के अभाव के रहने पर भी यथाशक्ति सम्पादित करने का जो मेरा प्रयास है, उसका सारा उत्तरदायित्व केवल मेरा ही है। वैदिक-भाषा के अनेक शब्दों के अर्थ-ज्ञान की दुरूहता के कारण शुद्ध पाठ सम्भवतः कहीं-कहीं नहीं हो सका है। ऐसी परिस्थितियों में मूल ग्रन्थों से उनका मिलान करने की चेष्टा की है। पर कहीं-कहीं ऐसा लगा कि मूल मुद्रित प्रति में मुद्रणकी अशु-

छियाँ रह गई हैं। पर उनका संशोधन करने का साहस वैदिक भाषा की दुर्बोधता के कारण मैंने नहीं किया। कहीं-कहीं पाठांतर दे दिया है। ऐसी सभी स्वाबोध्य त्रुटियों के लिए मैं विशेष रूप से विद्वानों की क्षमा का प्रार्थी हूँ।

वैदिक सूक्तों में मैं कुछ और सूक्त भी देना चाहता था जो वैदिक परम्परा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व के हैं। ऋग्वेद-वाङ्मय में ऋत, सत्य, न्याय और सदाचार के सर्व प्रमुख देवता वरुण हैं। वरुण के सूक्त यद्यपि इन्द्र, अग्नि, सूर्य, सोम (पेय) की अपेक्षा संख्या में बहुत कम हैं तथापि प्राच्य और पाश्चात्य वैदिक विद्वानों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। स्मार्त कर्मकाण्ड में और पौराणिक विद्वानों में भी कलशाधिष्ठित वरुण का पूजन अत्यन्त महत्त्व का माना जाता है। पुराणों में बताया गया है कि कलश में ब्रह्मा, विष्णु, महेश के सहित स्मार्त पौराणिक सभी देवों का (कलशस्य मुखे विष्णुरित्यादि) आवाहन और प्रतिष्ठापन करना महत्त्वपूर्ण है। विशेषरूप से विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद संहिता के सर्वप्रमुख देव इन्द्र हैं। देवतापरक इन्द्र सूक्त भी उक्त संहिता में अन्य सभी देवता वाले सूक्तों से अधिसंख्यक है। यजुर्वेद संहिता में भी उनकी महिमा बड़े उत्साह और उल्लास के साथ गाई गई है।

अग्नि का स्थान भी अत्यन्त ऊँचा है। यज्ञ में आहुतिभुक् होने के कारण और अपनी तेजस्विता और भूर्लोकीय आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक विशिष्टता के कारण उनका स्थान अपने आपमें अत्यन्त महत्त्व का है। ऋग्वेद संहिता का प्रथम सूक्त भी अग्नि की स्तुति से प्रारम्भ होता है। उक्त सूत्र में अग्नि की महिमा वर्णित है—

अग्निमीळे(ड़े) पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥
(ऋग्वेदसंहिता-मण्डल १, सूक्त १, मन्त्र १।)

सूर्य की महिमा भी सभी वेदों में अतिमहनीय है। द्युस्थानीय देवताओं में भी उनका आदर है। अन्तरीक्ष स्थानीय देवों में उनकी महिमा अपरिमेय, अद्भुत और वर्णनातीत है तथा इसी प्रकार भूस्थानीय कार्य-व्यापार की दृष्टि से अपरिमेय प्रकाश और जीवन के सर्जक सूर्य सवितादेव अत्यन्त आदरणीय हैं। द्विजों के सर्वप्रमुख नित्यकर्म अर्थात् त्रिकाल-सन्ध्या में सूर्य की ही उपासना, सूर्य के प्रति भक्ति-समर्पण और कृतज्ञता की भावना प्रकट की जाती है। मंत्रराज गायत्रीमंत्र भी सूर्य से ही सद्बुद्धि की प्रेरणा चाहता है।

उषा देवता भी ऋग्वेद में बड़े ही उल्लास के साथ वर्णित हैं। उनकी रमणीयता, सौन्दर्य, कार्य-व्यापार, अन्तरिक्ष में सूर्योदय से पूर्व उसका मोहक रूप-लालित्य-वर्णन करनेवाले सूक्त बहुसंख्यक हैं। कम से कम इन चारों देवताओं से संबद्ध ऋक्वैदिक सूक्तों को मैं स्तुतिमणिमाला में गुम्फित करना चाहता था यह कह चुका हूँ। परन्तु संकलन में विस्तार-भय और अन्य कठिनाइयों के कारण उस लोभ का मैंने संवरण कर लिया।

इस संकलन के प्रकाशन में जो त्रुटियाँ रह गई हैं उनका उत्तर-दायित्व मेरा है क्योंकि संपादन और संशोधन का अधिकांश कार्य मैंने ही किया है। जिन दिनों मैं अकादमी के कार्यों से वाराणसी नगर छोड़कर बाहर रहता रहा हूँ, उन दिनों में इस कार्य को न देख सका। इस कारण भी कुछ त्रुटियाँ इसमें बढ़ गईं। अतः उनके लिए भी मैं पुनः क्षमा प्रार्थी हूँ।

दक्षिणामूर्तिमठ के स्वामी श्री शारदानन्दजी महाराज ने सदैव की तरह संकलनीय सामग्री को उपलब्ध कराने तथा इसके प्रत्येक कार्य में निःस्वार्थ भाव से सहयोग दिया है। अतः वे हमारे ससाधुवाद आशीर्वाद के पात्र हैं।

डॉ० चन्द्रकान्त द्विवेदी (सहायक निदेशक)–इसमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक लगे रहे हैं। सामग्री के एकत्रीकरण, मूलग्रंथों से प्रतिलिपीकरण तथा संपादन-काल तक के अनेक कार्यों में जितना श्रम उन्होंने किया है उसके लिए वह विशेष रूप से धन्यवादार्ह हैं। इस संकलन में सबसे अधिक धन्यवाद के पात्र हैं 'स्तुतिमणिमाला' के मुद्रक विजय प्रेस के प्रबन्धक "श्री गिरीशचन्द्र" जिन्होंने बारबार काट-छाँट, संक्षेपण और परिवर्धन के करने पर भी बिना किसी श्रान्ति, क्लान्ति और मीनमेष के पूर्ण सहयोग दिया है। अतः उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ।

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी की कार्यकारिणी, निदेशक और कोषाध्यक्ष—सहित समस्त सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस कार्य के प्रति अपनी सहर्ष स्वीकृति देते हुए मेरा उत्साह बढ़ाया है।

सुविज्ञ पाठकों के सम्मुख इस संकलन को सहर्ष प्रस्तुत करते हुए मैं विश्वास करता हूँ कि इसमें जो त्रुटियाँ हैं उसको निःसंकोच बताएँ जिसे अगले संस्करण के मुद्रण और सम्पादन में सहायता मिले।

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

विद्वज्जन कृपाकांक्षी,
करुणापति त्रिपाठी
(संपादक)

शुद्ध श्रावण कृष्ण त्रयोदशी
संवत् २०४२ वि०



स्तुतिमणिमाला-

द्वितीय-भाग-

स्तोत्रानुक्रमकोशः

स्तुतिमणिमाला

द्वितीयो भागः

१. सर्वमङ्गलाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

लक्ष्मीर्यस्य परिग्रहः कमलभूः सूनुर्गरुत्मान् रथः
पौत्रश्चन्द्रविभूषणः सुरगुरुः शेषश्च शय्यासनः ।
ब्रह्माण्डं वरमन्दिरं सुरगणा यस्य प्रभोः सेवकाः
स त्रैलोक्यकुटुम्बपालनपरः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥ १ ॥
ब्रह्मा वायुगिरीशशेषगरुडा देवेन्द्रकामौ गुरु-
श्चन्द्राकौं वरुणानलौ मनुयमौ वित्तेशविघ्नेश्वरौ ।
नासत्यौ निर्ऋतिर्मरुद्गणयुताः पर्जन्यमित्रादयः
सस्त्रीकाः सुरपुङ्गवाः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ २ ॥
विश्वामित्रपराशरौर्वभृगवोऽगस्त्यः पुलस्त्यः क्रतुः
श्रीमानत्रिमरीचिकौत्सपुलहाः शक्तिर्वसिष्ठोऽङ्गिराः ।
माण्डव्यो जमदग्निगौतमभरद्वाजादयस्तापसाः
श्रीमद्विष्णुपदाब्जभक्तिनिरताः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ३ ॥
मान्धाता नहुषोऽम्बरीषसगरौ राजा पृथुर्हैहयः
श्रीमान् धर्मसुतो नलो दशरथो रामो ययातिर्यदुः ।
इक्ष्वाकुश्च विभीषणश्च भरतश्चोत्तानपादध्रुवा-
वित्याद्या भुवि भूभुजः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ४ ॥
श्रीमेरुर्हिमवांश्च मन्दरगिरिः कैलासशैलस्तथा
माहेन्द्रो मलयश्च विन्ध्यनिषधौ सिंहस्तथा रैवतः ।
सह्याद्रिर्वरगन्धमादनगिरिर्मैनाकगोमन्तका-
वित्याद्या भुवि भूभृतः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ५ ॥

गङ्गा सिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा
कृष्णा भीमरथी च फल्गुसरयूः श्रीगण्डकी गोमती ।
कावेरीकपिलाप्रयागवनितावेत्रावतीत्यादयो
नद्यः श्रीहरिपादपङ्कजभवाः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।। ६ ।।

वेदाश्चोपनिषद्‌गणाश्च विविधाः साङ्गाः पुराणान्विता
वेदान्ता अपि मन्त्रतन्त्रसहितास्तर्कस्मृतीनां गणाः ।
काव्यालंकृतिनीतिनाटकगणाः शब्दाश्च नानाविधाः
श्रीविष्णोर्गुणराशिकीर्तनकराः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।। ७ ।।

आदित्यादिनवग्रहाः शुभकरा मेषादयो राशयो
नक्षत्राणि सयोगकाश्च तिथयस्तद्‌देवतास्तद्‌गणाः ।
मासाब्दा ऋतवस्तथैव दिवसाः सन्ध्यास्तथा रात्रयः
सर्वे स्थावरजङ्गमाः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ।। ८ ।।

इत्येतद्वरमङ्गलाष्टकमिदं श्रीवादिराजेश्वरै-
र्व्याख्यातं जगतामभीष्टफलदं सर्वाशुभध्वंसनम् ।
माङ्गल्यादिशुभक्रियासु सततं सन्ध्यासु वा यः पठेद्
धर्मार्थादिसमस्तवाञ्छितफलं प्राप्नोत्यसौ मानवः ।। ९ ।।

।। इति श्रीमद्वादिराजविरचितं सर्वमङ्गलाष्टकं संपूर्णम् ।।

२. मङ्गलाचरणम्

गणेशवन्दना

वन्दे वन्दारुमन्दारमिन्दुभूषणनन्दनम् ।
अमन्दानन्दसन्दोहबन्धुरं सिन्धुराननम् ।। १ ।।
स्रवन्मदघटासक्तसगुञ्जदलिसंकुलः ।
लसत्सिन्दूरपूरोऽसौ जयति श्रीगणाधिपः ।। २ ।।
स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
वासरमणिरिव तमसां राशिं नाशयति विघ्नानाम् ।। ३ ।।

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो गणाधिपः ॥ ४ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ ५ ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ ६ ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ७ ॥

व्यासवन्दना

व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥ ८ ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे।
नमो वै ब्रह्मनिधये वसिष्ठाय नमो नमः ॥ ९ ॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः ॥ १० ॥

॥ इति मङ्गलाचरणं संपूर्णम् ॥

३. गणेशप्रातःस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम्।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्डमाखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमानमिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम्।
तं तुन्दिलं द्विरसनप्रिययज्ञसूत्रं पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ॥२॥
प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोकदावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम्।
अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाहमुत्साहवर्धनपरं सुतमीश्वरस्य ॥३॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम्।
प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ॥ ४ ॥

४. गणेशकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

गौर्युवाच—

एषोऽतिचपलो दैत्यान्बाल्येऽपि नाशयत्यहो ।
अग्रे किं कर्म कर्तेति न जाने मुनिसत्तम ॥ १ ॥

दैत्या नानाविधा दुष्टाः साधुदेवद्रुहः खलाः ।
अतोऽस्य कण्ठे किंचित्त्वं रक्षार्थं बद्धुमर्हसि ॥ २ ॥

मुनिरुवाच—

ध्यायेत्सिंहगतं विनायकममुं दिग्बाहुमाद्ये युगे
त्रेतायां तु मयूरवाहनममुं षड्बाहुकं सिद्धिदम् ।
द्वापारे तु गजाननं युगभुजं रक्ताङ्गरागं विभुं
तुर्ये तु द्विभुजं सिताङ्गरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा ॥ ३ ॥
विनायकः शिखां पातु परमात्मा परात्परः ।
अतिसुन्दरकायस्तु मस्तकं सुमहोत्कटः ॥ ४ ॥
ललाटं कश्यपः पातु भ्रूयुगं तु महोदरः ।
नयने भालचंद्रस्तु गजास्यस्त्वोष्ठपल्लवौ ॥ ५ ॥
जिह्वां पातु गणक्रीडश्चिबुकं गिरिजासुतः ।
वाचं विनायकः पातु दन्तान् रक्षतु विघ्नहा ॥ ६ ॥
श्रवणौ पाशपाणिस्तु नासिकां चिन्तितार्थदः ।
गणेशस्तु मुखं कण्ठं पातु देवो गणंजयः ॥ ७ ॥
स्कन्धौ पातुं गजस्कन्धः स्तनौ विघ्नविनाशनः ।
हृदयं गणनाथस्तु हेरम्बो जठरं महान् ॥ ८ ॥
धराधरः पातु पार्श्वौ पृष्ठं विघ्नहरः शुभः ।
लिङ्गं गुह्यं सदा पातु वक्रतुण्डो महाबलः ॥ ९ ॥
गणक्रीडो जानुजङ्घे ऊरू मङ्गलमूर्तिमान् ।
एकदन्तो महाबुद्धिः पादौ गुल्फौ सदाऽवतु ॥ १० ॥

क्षिप्रप्रसादनो बाहू पाणी आशाप्रपूरकः ।
अङ्गुलीश्च नखान्पातु पद्महस्तोऽरिनाशनः ॥ ११ ॥
सर्वाङ्गानि मयूरेशो विश्वव्यापी सदाऽवतु ।
अनुक्तमपि यत्स्थानं धूम्रकेतुः सदाऽवतु ॥ १२ ॥
आमोदस्त्वग्रतः पातु प्रमोदः पृष्ठतोऽवतु ।
प्राच्यां रक्षतु बुद्धीश आग्नेय्यां सिद्धिदायकः ॥ १३ ॥
दक्षिणस्यामुमापुत्रो नैर्ऋत्यां तु गणेश्वरः ।
प्रतीच्यां विघ्नहर्ताऽव्याद्वायव्यां गजकर्णकः ॥ १४ ॥
कौबेर्यां निधिपः पायादीशान्यामीशनन्दनः ।
दिवाऽव्यादेकदन्तस्तु रात्रौ संध्यासु विघ्नहृत् ॥ १५ ॥
राक्षसासुरवेतालग्रहभूतपिशाचतः ।
पाशाङ्कुशधरः पातु रजःसत्त्वतमःस्मृतिः ॥ १६ ॥
ज्ञानं धर्मं च लक्ष्मीं च लज्जां कीर्तिं तथा कुलम् ।
वपुर्धनं च धान्यं च गृहान् दाराः सुतान् सखीन् ॥ १७ ॥
सर्वायुधधरः पौत्रान् मयूरेशोऽवतात्सदा ।
कपिलोऽजाविकं पातु गजाश्वान्विकटोऽवतु ॥ १८ ॥
भूर्जपत्रे लिखित्वेदं यः कण्ठे धारयेत्सुधीः ।
न भयं जायते तस्य यक्षरक्षःपिशाचतः ॥ १९ ॥
त्रिसंध्यं जपते यस्तु वज्रसारतनुर्भवेत् ।
यात्राकाले पठेद्यस्तु निर्विघ्नेन फलं लभेत् ॥ २० ॥
युद्धकाले पठेद्यस्तु विजयं प्राप्नुयाद्द्रुतम् ।
मारणोच्चाटनाकर्षस्तम्भमोहनकर्मणि ॥ २१ ॥
सप्तवारं जपेदेतद्दिनानामेकविंशतिम् ।
तत्तत्फलमवाप्नोति साधको नात्र संशयः ॥ २२ ॥
एकविंशतिवारं च पठेत्तावद्दिनानि यः ।
कारागृहगतं सद्यो राज्ञा वध्यं च मोचयेत् ॥ २३ ॥

राजदर्शनवेलायां पठेदेतत्त्रिवारतः ।
स राजानं वशं नीत्वा प्रकृतीश्च सभां जयेत् ॥ २४ ॥

इदं गणेशकवचं कश्यपेन समीरितम् ।
मुद्गलाय च तेनाथ माण्डव्याय महर्षये ॥ २५ ॥

मह्यं स प्राह कृपया कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
न देयं भक्तिहीनाय देयं श्रद्धावते शुभम् ॥ २६ ॥

यस्यानेन कृता रक्षा न बाधाऽस्य भवेत्क्वचित् ।
राक्षसासुरवेतालदैत्यदानवसंभवा ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीगणेशपुराणे गणेशकवचं संपूर्णम् ॥

५. शत्रुसंहारकमेकदन्तस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः ।

सनत्कुमार उवाच—

शृणु शम्भ्वादयो देवा मदासुरविनाशने ।
उपायं कथयिष्यामि तत्कुरुध्वं मुनीश्वराः ॥ १ ॥

गणेशं पूजयध्वं वै यूयं सर्वे समावृताः ।
स बाह्यान्तरसंस्थो वै हनिष्यति मदासुरम् ॥ २ ॥

सनत्कुमारवाक्यं तच्छ्रुत्वा देवर्षिसत्तमाः ।
ऊचुस्तं प्रणिपत्यादौ भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥ ३ ॥

देवर्षय ऊचुः—

केनोपायेन देवेशं गणेशं मुनिसत्तम ।
पूजयामो विशेषण तं वदस्व यथातथम् ॥ ४ ॥

एवं पृष्टो महायोगी देवैश्च मुनिभिः सह ।
उवाचाराधनं तेभ्यो गाणपत्यो महायशाः ॥ ५ ॥

एकाक्षरेण तं देवं हृदिस्थं गणनायकम् ।
विधिना पूजयध्वं च तुष्टस्तेन भविष्यति ॥ ६ ॥
ध्यानं तस्य प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं सुरसत्तमाः ।
यूयं तं तादृशं ध्यात्वा तोषयध्वं विधानतः ॥ ७ ॥

एकदन्तं चतुर्बाहुं गजवक्त्रं महोदरम् ।
सिद्धिबुद्धिसमायुक्तं मूषकारूढमेव च ॥ ८ ॥
नाभिशेषं सपाशं वै परशुं कमलं शुभम् ।
अभयं संदधन्तं च प्रसन्नवदनाम्बुजम् ॥ ९ ॥

भक्तेभ्यो वरदं नित्यमभक्तानां निषूदनम् ।
एतादृशं हृदि ध्यात्वा सेवध्वमेकदन्तकम् ॥ १० ॥
सर्वेषां हृदिसंस्थोऽयं बुद्धिप्रेरकभावतः ।
स्वयं बुद्धिपतिः साक्षादात्मा च सर्वदेहिनाम् ॥ ११ ॥

एकशब्दात्मिका माया देहरूपा विलासिनी ।
दन्तः सत्तात्मकः प्रोक्तः शब्दस्तत्र न संशयः ॥ १२ ॥
मायाया धारकोऽयं वै सत्तामात्रेण संस्थितः ।
एकदन्तो गणेशो वै कथ्यते वेदवादिभिः ॥ १३ ॥

सर्वसत्ताधरं पूर्णमेकदन्तं गजाननम् ।
सेवध्वं भक्तिभावेन भविष्यति सदा सुखम् ॥ १४ ॥
एवमुक्त्वा ययौ योगी सनत्कुमार आदरात् ।
जय हेरम्बमन्त्रं वै समुच्चरन् मुखेन सः ॥ १५ ॥

ततो देवगणाः सर्वे मुनयस्तपसि स्थिताः ।
एकाक्षरविधानेन तोषयामासुरादरात् ॥ १६ ॥
पत्रभक्षा निराहारा वायुभक्षा जलाशिनः ।
कन्दमूलफलाहाराः केचित्केचिद्बभूविरे ॥ १७ ॥
संस्थिता ध्याननिष्ठा वै जपहोमपरायणाः ।
नानातपःप्रभावेण तोषयन् गणनायकम् ॥ १८ ॥

गतवर्षशतेषु वै सन्तुष्ट एकदन्तकः ।
आययौ तान्वरान्दातुं ध्यातस्तैर्यादृशस्तथा ॥ १९ ॥
जगाद स तपोयुक्तान् मुनीन्देवान्गजाननः ।
वरं वृणुत तुष्टोऽहं दास्यामि ब्राह्मणामराः ॥ २० ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टा देवर्षयोऽभवन् ।
उन्मील्य लोचने देवमपश्यन्समीपस्थितम् ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा मूषकसंस्थं तं प्रणेमुस्ते गजाननम् ।
मुनयो देवदेवेन्द्रा पुपूजुर्भक्तिसंयुताः ॥ २२ ॥
पूजयित्वा यथान्यायं प्रणम्य करसंपुटाः ।
तुष्टुवुरेकदन्तं तं भक्तिनम्रात्मकन्धराः ॥ २३ ॥

देवर्षय ऊचुः—

नमस्ते गजवक्त्राय गणेशाय नमो नमः ।
अनन्तानन्तभोक्त्रे वै ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे ॥ २४ ॥
आदिमध्यान्तहीनाय चराचरमयाय ते ।
अनन्तोदरसंस्थाय नाभिशेषाय ते नमः ॥ २५ ॥
कर्त्रे पात्रे च संहर्त्रे त्रिगुणानामधीश्वर ।
सर्वसत्ताधरायैव निर्गुणाय नमो नमः ॥ २६ ॥
सिद्धिबुद्धिपते तुभ्यं सिद्धिबुद्धिप्रदाय च ।
ब्रह्मभूताय देवेश सगुणाय नमो नमः ॥ २७ ॥
परशुधारिणे तुभ्यं कमलहस्तशोभिने ।
पाशाभयधरायैव महोदराय ते नमः ॥ २८ ॥
मूषकारूढदेवाय मूषकध्वजिने नमः ।
आदिपूज्याय सर्वाय सर्वपूज्याय ते नमः ॥ २९ ॥
सगुणात्मककायाय निर्गुणमस्तकाय ते ।
तयोरभेदरूपेण चैकदन्ताय ते नमः ॥ ३० ॥

वेदान्ताऽगोचरायैव वेदान्तलभ्यकाय ते ।
योगाधीशाय वै तुभ्यं ब्रह्माधीशाय ते नमः ॥ ३१ ॥
अपारगुणधामायानन्तमायाप्रचारिणे ।
नानावतारभेदाय शान्तिदाय नमो नमः ॥ ३२ ॥
वयं धन्या वयं धन्या यैर्दृष्टो गणनायकः ।
ब्रह्मभूतमयः साक्षात्प्रत्यक्षं पुरतः स्थितः ॥ ३३ ॥
एवं स्तुत्वा प्रहर्षेण ननृतुर्भक्तिसंयुताः ।
साश्रुनेत्रान्सरोमाञ्चान्दृष्ट्वा तान्ढुण्ढिरब्रवीत् ॥३४॥

एकदन्त उवाच—

वरं वृणुत देवेशा मुनयश्च यथेप्सितम् ।
दास्यामि तं न सन्देहो यद्यपि दुर्लभं भवेत् ॥ ३५ ॥
भवत्कृतं मदीयं तत् स्तोत्रं सर्वार्थदं भवेत् ।
पठते श्रृण्वते देवा नानासिद्धिप्रदं द्विजाः ॥ ३६ ॥
शत्रुनाशकरं चैव सुखानन्दप्रदायकम् ।
पुत्रपौत्रादिकं सर्वं लभते पाठतो नरः ॥ ३७ ॥

गृत्समद उवाच—

एवं तस्य वचः श्रुत्वा हर्षयुक्ताः सुरर्षयः ।
ऊचुस्तमेकदन्तं ते प्रणम्य भक्तिभावतः ॥ ३८ ॥

सुरर्षय ऊचुः—

यदि तुष्टोऽसि सर्वेश एकदन्त महाप्रभो ।
यदि देयो वरो नश्चेज्जहि दुष्टं मदासुरम् ॥ ३९ ॥

॥ इति श्रीमुद्गलपुराणान्तर्गतं सनकादिकृतमेकदन्तस्तोत्रं समाप्तम् ॥

६. महागणपतिस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

योगं योगविदां विधूतविविधव्यासंगशुद्धाशय-
प्रादुर्भूतसुधारसप्रसृमरध्यानास्पदाध्यासिनाम् ।
आनन्दप्लवमानबोधमधुरामोदच्छटामेदुरं
तं भूमानमुपास्महे परिणतं दन्तावलास्यात्मना ॥ १ ॥
तारश्रीपरशक्तिकामवसुधारूपानुगं यं विदु-
स्तस्मै स्तात्प्रणतिर्गणाधिपतये यो रागिणाभ्यर्थ्यते ।
आमन्त्र्य प्रथमं वरेति वरदेत्यार्तेन सर्वं जनं
स्वामिन्मे वशमानयेति सततं स्वाहादिभिः पूजितः ॥ २ ॥
कल्लोलाञ्चलचुम्बिताम्बुदतताविक्षुद्रवाम्भोनिधौ
द्वीपे रत्नमये सुरद्रुमवनामोदैकमेदस्विनि ।
मूले कल्पतरोर्महामणिमये पीठेऽक्षराम्भोरुहे
षट्कोणाकलितत्रिकोणरचनासत्कर्णिकेऽमुं भजे ॥ ३ ॥
चक्रप्रासरसालकार्मुकगदासद्बीजपूरद्विज-
ब्रीह्यग्रोत्पलपाशपङ्कजकरं शुण्डाग्रजाग्रद्घटम् ।
आश्लिष्टं प्रियया सरोजकरया रत्नस्फुरद्भूषया
माणिक्यप्रतिमं महागणपतिं विश्वेशमाशास्महे ॥ ४ ॥
दानाम्भःपरिमेदुरप्रसृमरव्यालम्बिरोलम्बभृत्-
सिन्दूरारुणगण्डमण्डलयुगव्याजात्प्रशस्तिद्वयम् ।
त्रैलोक्येष्टविधानवर्णसुभगं यः पद्मरागोपमं
धत्ते स श्रियमातनोतु सततं देवो गणानां पतिः ॥ ५ ॥
भ्राम्यन्मन्दरघूर्णनापरवशक्षीराब्धिवीचिच्छटा-
सच्छायाश्चलच्चामरव्यतिकरश्रीगर्वसर्वंकषाः ।
दिक्कान्ताघनसारचन्दनरसासाराः श्रयन्तां मनः
स्वच्छन्दप्रसरप्रलिप्तवियतो हेरम्बदन्तत्विषः ॥ ६ ॥

मुक्ताजालकरम्बितप्रविकसन्माणिक्यपुञ्जच्छटा-
कान्ताः कम्बुकदम्बचुम्बितघनाम्भोजप्रवालोपमाः ।
ज्योत्स्नापूरतरङ्गमन्थरतरत्सन्ध्यावयस्याश्चिरं
हेरम्बस्य जयन्ति दन्तकिरणाकीर्णाः शरीरत्विषः ॥ ७ ॥

शुण्डाग्राकलितेन हेमकलशेनावर्जितेनक्षरन्
नानारत्नचयेन साधकजनान्संभावयन् कोटिशः ।
दानामोदविनोदलुब्धमधुपप्रोत्सारणाविर्भव-
त्कर्णान्दोलनखेलनो विजयते देवो गणग्रामणीः ॥ ८ ॥

हेरम्बं प्रणमामि यस्य पुरतः शाण्डिल्यमूले श्रिया
बिभ्रन्त्याम्बुरुहे समं मधुरिपुस्ते शङ्खचक्रे वहन् ।
न्यग्रोधस्य तले सहाद्रिसुतया शम्भुस्तथा दक्षिणे
बिभ्राणः परशुं त्रिशूलमितया पाशाङ्कुशाभ्यां सह ॥९॥

पश्चात्पिप्पलमाश्रितो रतिपतेर्देवस्य रक्तोत्पले
बिभ्रत्या सममैक्षवं धनुरिषून्पौष्पान्वहन्पञ्च च ।
वामे चक्रगदाधरः स भगवान्क्रोडः प्रियङ्गोस्तले
हस्तोद्यच्छुकशालिमञ्जरिकया देव्या धरण्या सह ॥१०॥

षट्कोणाश्रिषु षट्सु षड्गजमुखाः पाशाङ्कुशाभीवरा-
न्बिभ्राणाः प्रमदासखाः पृथुमहाशोणाश्मपुञ्जत्विषः ।
आमोदः पुरतः प्रमोदसुमुखौ तं चाभितो दुर्मुखः
पश्चात् पार्श्वगतोऽस्य विघ्न इति यो यो विघ्नकर्तेति च ॥११॥

आमोदादिगणेश्वरप्रियतमास्तत्रैव नित्यं स्थिताः
कान्ताश्लेषरसज्ञमन्थरदृशः सिद्धिः समृद्धिस्ततः ।
कान्तिर्या मदनावतीत्यपि तथा कल्पेषु या गीयते
साऽन्या यापि मदद्रवा तदपरा द्राविण्यमूः पूजिताः ॥१२॥

आश्लिष्टौ वसुधेत्यथो वसुमती ताभ्यां सितालोहितौ
वर्षन्तौ वसुपार्श्वयोर्विलसतस्तौ शङ्खपद्मौ निधी ।

अङ्गान्यन्वथ मातरश्च परितः शक्रादयोऽब्जाश्रया-
स्तद्बाह्ये कुलिशादयः परिपतत्कालानलज्योतिषः ॥१३॥
इत्थं विष्णुशिवादितत्त्वतनवे श्रीवक्रतुण्डाय हुँ-
काराक्षिप्तसमस्तदैत्यपृतनाव्राताय दीप्तत्विषे ।
आनन्दैकरसावबोधलहरीविध्वस्तसर्वोर्मये
सर्वत्र प्रथमानमुग्धमहसे तस्मै परस्मै नमः ॥ १४ ॥
सेवाहेवाकिदेवासुरनरनिकरस्फारकोटीरकोटी-
कोटिव्याटीकमानद्युमणिसममणिश्रेणिभावेणिकानाम् ।
राजन्नीराजनश्रीसखचरणनखद्योतविद्योतमानः
श्रेयः स्थेयः स देयान्मम विमलदृशो बन्धुरं सिन्धुरास्यः ॥१५॥
एतेन प्रकटरहस्यमन्त्रमाला-
गर्भेण स्फुटतरसंविदा स्तवेन ।
यः स्तौति प्रचुरतरं महागणेशं
तस्येयं भवति वशंवदा त्रिलोकी ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यश्रीराघवचैतन्य-
विरचितं महागणपतिस्तोत्रं समाप्तम् ॥

७. गणेशाष्टोत्तरशतनामार्चनस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

काश्यां तु बहवो विघ्नाः काशीवासवियोजकाः ।
तच्छान्त्यर्थं ढुण्ढिराजः पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ १ ॥
अष्टोत्तरशतैर्दिव्यैर्गणेशस्यैव नामभिः ।
कर्तव्यमतियत्नेन नवदूर्वाङ्कुरार्पणम् ॥ २ ॥
हिरण्मयतनुं शुद्धं सर्वार्तिहरमव्ययम् ।
वरदं गणपं ध्यात्वा पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥ ३ ॥

ऋषिर्विघ्नेश इत्यादिनाम्नां सर्वेश्वरः शिवः ।
देवता विघ्नराजोऽत्र छन्दोऽनुष्टुप् शुभप्रदम् ॥ ४ ॥
सर्वप्रत्यूहशमनं फलं शक्तिः सुधात्मिका ।
कीलकं गणनाथस्य पूजा कार्येति कामदा ॥ ५ ॥
विघ्नेशो विश्ववदनो विश्वचक्षुर्जगत्पतिः ।
हिरण्यरूपः सर्वात्मा ज्ञानरूपो जगन्मयः ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वरेता महाबाहुरमेयोऽमितविक्रमः ।
वेदवेद्यो महाकायो विद्यानिधिरनामयः ॥ ७ ॥
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तो गजास्यो विगतज्वरः ।
विश्वमूर्तिरमेयात्मा विश्वाधारः सनातनः ॥ ८ ॥
सामगानप्रियो मन्त्री सत्त्वाधारः सुराधिपः ।
समस्तसाक्षिनिर्द्वन्द्वो निर्लिप्तोऽमोघविक्रमः ॥ ९ ॥
नियतो निर्मलः पुण्यः कामदः कान्तिदः कविः ।
कामरूपी कामवेषो कमलाक्षः कलाधरः ॥ १० ॥
सुमुखः शर्मदः शुद्धो मूषकाधिपवाहनः ।
दीर्घतुण्डधरः श्रीमाननन्तो मोहवर्जितः ॥ ११ ॥
वक्रतुण्डः शूर्पकर्णः पवनः पावनो वरः ।
योगीशो योगिवन्द्याङ्घ्रिरुमासूनुरघापहः ॥ १२ ॥
एकदन्तो महाग्रीवः शरण्यः सिद्धिसेवितः ।
सिद्धिदः करुणासिन्धुर्भगवान् भव्यविग्रहः ॥ १३ ॥
विकटः कपिलो ढुण्ढिरुग्रो भीमो हरः शुभः ।
गणाध्यक्षो गणाराध्यो गणेशो गणनायकः ॥ १४ ॥
ज्योतिःस्वरूपो भूतात्मा धूम्रकेतुरनाकुलः ।
कुमारगुरुरानन्दो हेरम्बो वेदसंस्तुतः ॥ १५ ॥
नागोपवीती दुर्धर्षो बालदूर्वाङ्कुरप्रियः ।
भालचन्द्रो विश्वधामा शिवपुत्रो विनायकः ॥ १६ ॥

लीलावलम्बितवपुः पूर्णः परमसुन्दरः ।
विद्यान्धकारमार्तण्डो विघ्नारण्यदवानलः ॥ १७ ॥
सिन्दूरवदनो नित्यो विष्णुः प्रमथपूजितः ।
शरण्यदिव्यपादाब्जो भक्तमन्दारभूरुहः ॥ १८ ॥
रत्नसिंहासनासीनो मणिकुण्डलमण्डितः ।
भक्तकल्याणदोऽमेयकल्याणगुणसंश्रयः ॥ १९ ॥
एतानि दिव्यनामानि गणेशस्य महात्मनः ।
पठनीयानि यत्नेन सर्वदा सर्वदेहिभिः ॥ २० ॥
नाम्नामेकैकमेतेषां सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
सर्वविघ्नेशनाम्नां तु फलं वक्तुं न शक्यते ॥ २१ ॥
एकैकमेव तन्नाम दिव्यं जप्त्वा मुनीश्वराः ।
प्रत्यूहमात्ररहितास्तिष्ठन्ति शिवपूजकाः ॥ २२ ॥
दूर्वायुग्मानि संगृह्य नूतनान्यतियत्नतः ।
पूजनीयो गणाध्यक्षो नाम्नामेकैकसंख्यया ॥ २३ ॥
नभस्यशुक्लपक्षस्य चतुर्थ्यां विधिपूर्वकम् ।
वक्रतुण्डेशकुण्डे तु स्नानं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ २४ ॥
वक्रतुण्डेशमाराध्यं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ।
ध्यायेदघहरं शुद्धं काञ्चनाभमनामयम् ॥ २५ ॥
ततः पूजा यथाशास्त्रं कृत्वा दूर्वाङ्कुरैर्नवैः ।
पूजा कार्या विशेषेण नामोच्चारणपूर्वकम् ॥ २६ ॥
ततश्च मोदकैर्दिव्यैः सुगन्धैर्घृतपाचितैः ।
नैवेद्यं कल्पयेदिष्टं गणेशाय शुभावहम् ॥ २७ ॥
अन्यैश्च परमान्नाद्यैर्भक्ष्यैर्भोज्यैर्मनोहरैः ।
तोषणीयः प्रयत्नेन वक्रतुण्डो विनायकः ॥ २८ ॥
प्रदक्षिणनमस्कारा दिव्यतन्नामसंख्यया ।
कर्तव्या नियतं शुद्धैर्मौनव्रतपरायणैः ॥ २९ ॥

ततः संतर्प्य विधिवच्छैवान् ब्राह्मणसत्तमान् ।
पुनरभ्यर्च्य विघ्नेशमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ३० ॥

वक्रतुण्ड सुराराध्य सूर्यकोटिसमप्रभ ।
निर्विघ्नेनैव सततं काशीवासं प्रयच्छ मे ॥ ३१ ॥

इति संप्रार्थ्य विधिवत् पूजां कृत्वा पुनर्मुदा ।
नमस्कृत्वा प्रसाद्यैनं गच्छेत् ढुण्ढिविनायकम् ॥ ३२ ॥

ढुण्ढिराजार्चनं सम्यक् कर्तव्यं विधिपूर्वकम् ।
तत्रैव च विशेषेण पूजां कृत्वा ततः परम् ॥ ३३ ॥

पूजनीयाः प्रयत्नेन सर्वदा मोदकप्रियाः ।
शिवप्रीतिकरा नित्यं शुद्धा पञ्च विनायकाः ॥ ३४ ॥

क्षिप्रसिद्धिप्रदं क्षिप्रगणेशं सुरवन्दितम् ।
संपूज्य पूर्ववत्सम्यक् गच्छेदाशाविनायकम् ॥ ३५ ॥

आशाविनायकं सम्यक् पूजयित्वा ततः परम् ।
अर्कविघ्नेश्वरः सम्यक् पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ ३६ ॥

पूर्ववत्पूजनीयः स्यात्ततः सिद्धिविनायकः ।
पूजनीयस्ततः सम्यक् चिन्तामणिविनायकः ॥ ३७ ॥

सेवाविनायकोऽप्येवं संपूज्यस्तदनन्तरम् ।
दुर्गाविनायकस्यापि पूजा कार्या ततः परम् ॥ ३८ ॥

एवं संपूज्य विधिवद्भक्तिश्रद्धासमन्वितैः ।
शैवाः शङ्करतत्त्वज्ञा भोजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥

एवं संपूजिताः सम्यक् प्रीतास्ते गणनायकाः ।
काशीवासं प्रयच्छन्ति निर्विघ्नेनैव सादरम् ॥ ४० ॥

आज्येन कापिलेनैव सार्धलक्षत्रयाहुतीः ।
हुत्वैतन्नामभिः सम्यक् सर्वविद्याधिपो भवेत् ॥ ४१ ॥

एतानि दिव्यनामानि प्रतिवासरमादरात् ।
पठित्वा गणनाथस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः ॥ ४२ ॥

यस्य कस्यापि संतुष्टो गणपः सर्वसिद्धिदः ।
अत एव सदा पूज्यो गणनाथो विचक्षणैः ॥ ४३ ॥
गणेशादपरो लोके विघ्नहर्ता न विद्यते ।
तस्मादन्वहमाराध्यो गणेशः सर्वसिद्धिदः ॥ ४४ ॥
काशीनिवाससिद्ध्यर्थं विष्णुना पूजितः पुरा ।
पुरा विघ्नेश्वरः सम्यक्पूजितो दण्डपाणिना ॥ ४५ ॥
कर्कोटकेन नागेन गणेशः पूजितः पुरा ।
शेषेण पूजितः पूर्वं गणेशः सिद्धिदायकः ॥ ४६ ॥
काशीयात्रार्थमुद्युक्तो विधिर्विघ्नकुलाकुलः ।
पूजयामास विघ्नेशं विधिवद्भक्तिपूर्वकम् ॥ ४७ ॥
सूर्येणाभ्यर्चितः पूर्वं चन्द्रेणेन्द्रेण च प्रिये ।
देवैरन्यैश्च विधिवत्पूजितो गणनायकः ॥ ४८ ॥
मर्त्यानाममराणां च मुनीनां वा वरानने ।
न सिद्ध्यन्त्येव कार्याणि गणेशाभ्यर्चनं विना ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीशिवरहस्यान्तर्गतकाशीमाहात्म्ये हरगौरीसंवादे गणेशाष्टोत्तरशतनामार्चनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

८. विघ्ननिवारकं सिद्धिविनायकस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

विघ्नेश विघ्नचयखण्डननामधेय
श्रीशङ्करात्मज सुराधिपवन्द्यपाद ।
दुर्गामहाव्रतफलाखिलमङ्गलात्मन्
विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ १ ॥
सत्पद्मरागमणिवर्णशरीरकान्तिः
श्रीसिद्धिबुद्धिपरिचर्चितकुङ्कुमश्रीः ।
दक्षस्तने वलयितातिमनोज्ञशुण्डो
विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ २ ॥

पाशाङ्कुशाब्जपरशूंश्च दधच्चतुर्भि-
दोर्भिश्च शोणकुसुमस्रगुमाङ्गजातः ।
सिन्दूरशोभितललाटविधुप्रकाशो
विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ ३ ॥

कार्येषु विघ्नचयभीतविरञ्चिमुख्यैः
सम्पूजितः सुरवरैरपि मोदकाद्यैः ।
सर्वेषु च प्रथममेव सुरेषु पूज्यो
विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ ४ ॥

शीघ्राञ्चनस्खलनतुङ्गरवोर्ध्वकण्ठ-
स्थूलेन्दुरुद्रगणहासितदेवसङ्घः ।
शूर्पश्रुतिश्च पृथुवर्तुलतुङ्गतुन्दो
विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ ५ ॥

यज्ञोपवीतपदलम्भितनागराजो
मासादिपुण्यदद्दशीकृतऋक्षराजः ।
भक्ताभयप्रद दयालय विघ्नराज
विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ ६ ॥

सद्रत्नसारततिराजितसत्किरीटः
कौसुम्भचारुवसनद्वय ऊर्जितश्रीः ।
सर्वत्रमङ्गलकरस्मरणप्रतापो
विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ ७ ॥

देवान्तकाद्यसुरभीतसुरार्तिहर्ता
विज्ञानबोधनवरेण तमोपहर्ता ।
आनन्दितत्रिभुवनेश कुमारबन्धो
विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ ८ ॥

॥ इति मौद्गलोक्तं विघ्ननिर्वारकं सिद्धिविनायकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

९. प्रातःस्मरणस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति नित्यं
तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसङ्घः ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि मनसो वचसामगम्यं
वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यं नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचु-
स्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्र्यम् ॥ २ ॥

प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं
पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ
रज्जौ भुंजगम इव प्रतिभासितं वै ॥ ३ ॥

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीमद्भगवत्पादाचार्यविरचितं प्रातःस्मरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१०. भगवत्प्रातःस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः

प्रातः स्मरामि फणिराजतनौ शयानं
नागामरासुरनरादिजगन्निदानम् ।
वेदैः सहागमगणैरुपगीयमानं
कान्तारकेतनवतां परमं निधानम् ॥ १ ॥

प्रातर्भजामि भवसागरवारिपारं
देवर्षिसिद्धनिवहैर्विहितोपहारम् ।
संदृप्तदानवकदम्बमदापहारं
सौन्दर्यराशिजलराशिसुताविहारम् ॥ २ ॥

प्रातर्नमामि शरदम्बुजकान्तिकान्तं
पादारविन्दमकरन्दजुषां भवान्तम् ।
नानावतारहृतभूमिभरं कृतान्तं
पाथोजकम्बुरथ पादकरं प्रशान्तम् ॥ ३ ॥

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं ब्रह्मानन्देन कीर्तितम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसब्रह्मानन्दस्वामिविरचितं श्रीभगवत्प्रातःस्मरणं सम्पूर्णम् ॥

११. विष्णोः प्रातःस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम् ।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना
पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः ।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य
पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि भजतामभयङ्करं तं
प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।

यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोर-
शोकप्रणाशमकरोद्धृतशङ्खचक्रः ॥ ३ ॥

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातःकाले पठेत्तु यः ।
लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥ ४ ॥

॥ इति श्री विष्णोः प्रातःस्मरणं सम्पूर्णम् ॥

१२. श्रीहरिप्रातःस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः

ग्राहग्रस्ते गजेन्द्रे रुवति सरभसं तार्क्ष्यमारुह्य धावन्
व्याघूर्णन्माल्यभूषावसनपरिकरो मेघगम्भीरघोषः ।
आबिभ्राणो रथाङ्गं शरमसिमभयं शङ्खचापौ सखेटौ
हस्तैः कौमोदकीमप्यवतु हरिरसावंहसां संहतेर्नः ॥ १ ॥

नक्राक्रान्ते करीन्द्रे मुकुलितनयने मूलमूलेऽतिखिन्ने
नाहं नाहं न चाहं न च भवति पुनस्तादृशो मादृशेषु ।
इत्येवं त्यक्तहस्ते सपदि सुरगणे भावशून्ये समस्ते
मूलं यत्प्रादुरासीत्स दिशतु भगवान् मङ्गलं सन्ततं नः ॥ २ ॥

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशांत्यै नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम् ।
ग्राहाभिभूतमदवारणमुक्तिहेतुं चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥ ३ ॥

प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना पादारविंदयुगलं परमस्य पुंसः ।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य पारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ॥ ४ ॥

प्रातर्भजामि भजतामभयंङ्करं तं प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापनुत्त्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोरशोकप्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः ॥ ५ ॥

श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥

॥ इति श्रीहरिप्रातःस्मरणं संपूर्णम् ॥

१३. विष्णुपञ्जरस्तोत्रम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ अस्य श्रीविष्णुपञ्जरस्तोत्रमन्त्रस्य, नारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीविष्णुः परमात्मा देवता, अहं बीजम्, सोऽहं शक्तिः, ॐ ह्रीं कीलकम्, मम सर्वदेहरक्षणार्थं जपे विनियोगः ।

ॐ नारदऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे ।
श्रीविष्णुपरमात्मदेवतायै नमः हृदये । अहं बीजाय नमः गुह्ये ।
सोऽहं शक्तये नमः पादयोः ।
ॐ ह्रीं कीलकाय नमः पादाग्रे ।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः इति मन्त्रः ।
ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

इति करन्यासः ॥

ॐ ह्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा ।
ॐ ह्रूं शिखायै वषट् । ॐ ह्रैं कवचाय हुम् ।
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ।

इति अंगन्यासः ॥

अहंबीजादिमन्त्रत्रयेण प्राणायामं कुर्यात् ।

अथ ध्यानम् ॥

परं परस्मात्प्रकृतेरनादिमेकं निविष्टं बहुधा गुहायाम् ।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं नमामि विष्णुं जगदेकनाथम् ॥ १ ॥

ॐ विष्णुपञ्जरकं दिव्यं सर्वदुष्टनिवारणम् ।
उग्रतेजो महावीर्यं सर्वशत्रुनिकृन्तनम् ॥ २ ॥
त्रिपुरं दहमानस्य हरस्य ब्रह्मणोदितम् ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि आत्मरक्षाकरं नृणाम् ॥ ३ ॥

पादौ रक्षतु गोविन्दो जङ्घे चैव त्रिविक्रमः ।
ऊरू मे केशवः पातु कटिं चैव जनार्दनः ॥ ४ ॥

नाभिं चैवाच्युतः पातु गुह्यं चैव तु वामनः ।
उदरं पद्मनाभश्च पृष्ठं चैव तु माधवः ॥ ५ ॥
वामपार्श्वं तथा विष्णुर्दक्षिणं मधुसूदनः ।
बाहू वै वसुदेवश्च हृदि दामोदरस्तथा ॥ ६ ॥

कण्ठं रक्षतु वाराहः कृष्णश्च मुखमण्डलम् ।
माधवः कर्णमूले तु हृषीकेशश्च नासिके ॥ ७ ॥

नेत्रे नारायणो रक्षेल्ललाटं गरुडध्वजः ।
कपोलौ केशवो रक्षेद्वैकुण्ठः सर्वतोदिशम् ॥ ८ ॥
श्रीवत्साङ्कश्च सर्वेषामङ्गानां रक्षको भवेत् ।
पूर्वस्यां पुण्डरीकाक्ष आग्नेय्यां श्रीधरस्तथा ॥ ९ ॥
दक्षिणे नारसिंहश्च नैर्ऋत्यां माधवोऽवतु ।
पुरुषोत्तमो मे वारुण्यां वायव्यां च जनार्दनः ॥ १० ॥

गदाधरस्तु कौबेर्यामीशान्यां पातु केशवः ।
आकाशे च गदा पातु पाताले च सुदर्शनम् ॥ ११ ॥
संनद्धः सर्वगात्रेषु प्रविष्टो विष्णुपञ्जरः ।
विष्णुपञ्जरविष्टोऽहं विचरामि महीतले ॥ १२ ॥
राजद्वारेऽपथे घोरे सङ्ग्रामे शत्रुसङ्कटे ।
नदीषु च रणे चैव चोरव्याघ्रभयेषु च ॥ १३ ॥

डाकिनीप्रेतभूतेषु भयं तस्य न जायते ।
रक्ष रक्ष महादेव रक्ष रक्ष जनेश्वर ॥ १४ ॥
रक्षन्तु देवताः सर्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः ॥ १५ ॥

अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ।
दिवा रक्षतु मां सूर्यो रात्रौ रक्षतु चन्द्रमाः ॥ १६ ॥

पन्थानं दुर्गमं रक्षेत्सर्वमेव जनार्दनः।
रोगविघ्नहतश्चैव ब्रह्महा गुरुतल्पगः॥ १७॥

स्त्रीहन्ता बालघाती च सुरापो वृषलीपतिः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यः पठेन्नात्र संशयः॥ १८॥

अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी लभते गतिम्॥ १९॥

आपदो हरते नित्यं विष्णुस्तोत्रार्थसंपदा।
यस्त्विदं पठति स्तोत्रं विष्णुपञ्जरमुत्तमम्॥ २०॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।
गोसहस्रफलं तस्य वाजपेयशतस्य च॥ २१॥

अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
सर्वकामं लभेदस्य पठनान्नात्र संशयः॥ २२॥

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥ २३॥

॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे इन्द्रनारदसंवादे श्रीविष्णुपञ्जरस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

१४. अच्युताष्टकस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

अच्युताच्युत हरे परमात्मन् राम कृष्ण पुरुषोत्तम विष्णो।
वासुदेव भगवन्ननिरुद्ध श्रीपते शमय दुःखमशेषम्॥ १॥

विश्वमङ्गल विभो जगदीश नन्दनन्दन नृसिंह नरेन्द्र।
मुक्तिदायक मुकुन्द मुरारे श्रीपते शमय दुःखमशेषम्॥ २॥

रामचन्द्र रघुनायक देव दीननाथ दुरितक्षयकारिन्।
यादवेन्द्र यदुभूषण यज्ञ श्रीपते शमय दुःखमशेषम्॥ ३॥

देवकीतनय दुःखदवाग्ने राधिकारमण रम्यसुमूर्ते ।
दुःखमोचन दयार्णव नाथ श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ४ ॥
गोपिकावदनचन्द्रचकोर नित्य निर्गुण निरंजन जिष्णो ।
पूर्णरूप जय शङ्कर सर्व श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ५ ॥
गोकुलेश गिरिधारण धीर यामुनाच्छतटखेलन वीर ।
नारदादिमुनिवन्दितपाद श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ६ ॥
द्वारकाधिप दुरन्तगुणाब्धे प्राणनाथ परिपूर्ण भवारे ।
ज्ञानगम्य गुणसागर ब्रह्मन् श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ७ ॥
दुष्टनिर्दलन देव दयालो पद्मनाभ धरणीधरधारिन् ।
रावणान्तक रमेश मुरारे श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥ ८ ॥
अच्युताष्टकमिदं रमणीयं निर्मितं भवभयं विनिहन्तुम् ।
यः पठेद्विषयवृत्तिनिवृत्तिर्जन्मदुःखमखिलं स जहाति ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितमच्युताष्टकस्तोत्रं समाप्तम् ॥

१५. अच्युताष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् ।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥ १ ॥
अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं माधवं श्रीधरं राधिकाराधितम् ।
इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दनं संदधे ॥ २ ॥
विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये ।
वल्लवीवल्लभायार्चितायात्मने कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः ॥ ३ ॥
कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे ।
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक ॥ ४ ॥
राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः ।
लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितोऽगस्त्यसंपूजितो राघवः पातु माम् ॥ ५ ॥

धेनुकारिष्टकोऽनिष्टकृद्द्वेषिणां केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः ।
पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो बालगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥ ६ ॥

विद्युदुद्द्योतवान्प्रस्फुरद्वाससं प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम् ।
वन्यया मालया शोभितोरःस्थलं लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे ॥७॥
कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः ।
हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे ॥ ८ ॥
अच्युतस्याष्टकं यः पठेदिष्टदं प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम् ।
वृत्ततः सुन्दरं कर्तृ विश्वंभरं तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितमच्युताष्टकं संपूर्णम् ॥

१६. मधुसूदनस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐमिति ज्ञानमात्रेश रोगाजीर्णेन निर्जितः ।
कालनिद्रां प्रपन्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ १ ॥
न गतिर्विद्यते चान्या त्वमेव शरणं मम ।
पापपङ्के निमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ २ ॥

मोहितो मोहजालेन पुत्रदारगृहादिषु ।
तृष्णया पीड्यमानोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ३ ॥
भक्तिहीनं च दीनं च दुःखशोकातुरं प्रभो ।
अनाश्रयमनाथं च त्राहि मां मधुसूदन ॥ ४ ॥

गतागतेन श्रान्तोऽस्मि दीर्घसंसारवर्त्मसु ।
येन भूयो न गच्छामि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ५ ॥
बहवो हि मया दृष्टा क्लेशाश्चैव पृथक् पृथक् ।
गर्भवासे महद्दुःखं त्राहि मां मधुसूदन ॥ ६ ॥
तेन देव प्रपन्नोऽस्मि त्राणार्थं त्वत्परायणः ।
दुःखार्णवपरित्राणात् त्राहि मां मधुसूदन ॥ ७ ॥

वाचा यच्च प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् ।
तत्पापार्जितमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ८ ॥
सुकृतं न कृतं किंचिद्दुष्कृतं च कृतं मया ।
घोरे भवे निमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ९ ॥

देहान्तरसहस्रेषु चान्योन्यं भ्रामितो ह्यहम् ।
तिर्यक्त्वं मानुषत्वं च त्राहि मां मधुसूदन ॥ १० ॥
वाचयामि यथोन्मत्तः प्रलपामि तवाग्रतः ।
जरामरणभीतोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥ ११ ॥
यत्र यत्र च यातोऽस्मि स्त्रीषु वा पुरुषेषु वा ।
तत्र तत्राचला भक्तिस्त्राहि मां मधुसूदन ॥ १२ ॥
गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
कदापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वपातालमर्त्येषु व्याप्तलोकजगत्त्रयम् ।
द्वादशाक्षरात्परं नास्ति वासुदेवेन भाषितम् ॥ १४ ॥
द्वादशाक्षरं महामन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् ।
गर्भवासनिवासेन शुक्रेन परिभाषितम् ॥ १५ ॥
द्वादशाक्षर निराहारो यः पठेद्धरिवासरे ।
स गच्छेद्वैष्णवं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ॥ १६ ॥
॥ इति श्रीशुकदेवविरचितं मधुसूदनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१७. विष्णुभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

चिदंशं विभुं निर्मलं निर्विकल्पं निरीहं निराकारमोंकारगम्यम् ।
गुणातीतमव्यक्तमेकं तुरीयं परं ब्रह्म यं वेद तस्मै नमस्ते ॥ १ ॥

विशुद्धं शिवं शान्तमाद्यन्तशून्यं जगज्जीवनं ज्योतिरानन्दरूपम् ।
अदिग्देशकालव्यवच्छेदनीयं त्रयी वक्ति यं वेद तस्मै नमस्ते ॥ २ ॥

महायोगपीठे परिभ्राजमाने धरण्यादितत्त्वात्मके शक्तियुक्ते ।
गुणाहस्करे वह्निबिम्बार्धमध्ये समासीनमोङ्कर्णिकेऽष्टाक्षराब्जे ॥ ३ ॥
समानोदितानेकर्यन्दुकोटिप्रभापूरतुल्यद्युतिं दुर्निरीक्षम् ।
न शीतं न चोष्णं सुवर्णावदातप्रसन्नं सदानन्दसंवित्स्वरूपम् ॥ ४ ॥

सुनासापुटं सुन्दरभ्रूललाटं किरीटोचिताकुञ्चितस्निग्धकेशम् ।
स्फुरत्पुण्डरीकाभिरामायताक्षं समुत्फुल्लरत्नप्रसूनावतंसम् ॥ ५ ॥
लसत्कुण्डलामृष्टगण्डस्थलान्तं जपारागचोराधरं चारुहासम् ।
अलिव्याकुलामोदिमन्दारमालं महोरःस्फुरत्कौस्तुभोदारहारम् ॥ ६ ॥
सुरत्नाङ्गदैरन्वितं बाहुदण्डैश्चतुर्भिश्चलत्कङ्कणालंकृताग्रैः ।
उदारोदरालंकृतं पीतवस्त्रं पदद्वन्द्वनिर्धूतपद्माभिरामम् ॥ ७ ॥

स्वभक्तेषु संदर्शिताकारमेवं सदा भावयन्सन्निरुद्धेन्द्रियाश्वः ।
दुरापं नरो याति संसारपारं परस्मै परेभ्योऽपि तस्मै नमस्ते ॥ ८ ॥
श्रिया शातकुम्भद्युतिस्निग्धकान्त्या धरण्या च दूर्वादलश्यामलाङ्ग्या ।
कलत्रद्वयेनामुनातोषिताय त्रिलोकीगृहस्थाय विष्णो नमस्ते ॥ ९ ॥

शरीरं कलत्रं सुतं बन्धुवर्गं वयस्यं धनं सद्म भृत्यं भुवं च ।
समस्तं परित्यज्य हा कष्टमेको गमिष्यामि दुःखेन दूरं किलाहम् ॥१०॥
जरेयं पिशाचीव हा जीवतो मे वसामत्ति रक्तं च मांसं बलं च ।
अहो देव सीदामि दीनानुकम्पिन् किमद्यापि हन्त त्वयोदासितव्यम् ॥११॥

कफव्याहतोष्णोल्वणश्वासवेगव्यथाविस्फुरत्सर्वमर्मास्थिबन्धाम् ।
विचिन्त्याहमन्त्यामसंख्यामवस्थां बिभेमि प्रभो किं करोमि प्रसीद ॥१२॥

लपन्नच्युतानन्त गोविन्द विष्णो मुरारे हरे नाथ नारायणेति ।
यथानुस्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं तथा मे दयाशील देव प्रसीद ॥१३॥

भुजङ्गप्रयातं पठेद्यस्तु भक्त्या समाधाय चित्ते भवन्तं मुरारे ।
स मोहं विहायाशु युष्मत्प्रसादात्समाश्रित्य योगं व्रजत्यच्युतं त्वाम् ॥१४॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपाद-
शिष्यस्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ विष्णुभुजङ्गप्रयातस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१६. मुकुन्दमालास्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम् ।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥१॥

श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति भक्तिप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासेत्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द ॥२॥

जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं
जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः ।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो
जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥३॥

मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम् ।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे भवे भवे मेऽस्तु तव प्रसादात् ॥४॥

श्रीगोविन्दपदाम्भोजमधुनो महदद्भुतम् ।
यत्पायिनो न मुञ्चन्ति मुञ्चन्ति यदपायिनः ॥ ५ ॥

नाहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नापनेतुम् ।
रम्या रामा मृदुतनुलता नन्दने नापि रन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥६॥

नास्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपम् ।
एतत्प्रार्थ्यं मम बहुमतं जन्मजन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥७॥

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो नरके वा नरकान्तकप्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि ॥८॥

सरसिजनयने सशङ्खचक्रे मुरभिदि मा विरमेह चित्त रन्तुम् ।
सुखतरमपरं न जातु जाने हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥९॥

मा भैर्मन्द मनो विचिन्त्य बहुधा यामीश्चिरं यातना
नैवामी प्रभवन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः ।
आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं
लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः ॥१०॥

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् ।
विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां
भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥११॥

रजसि निपतितानां मोहजालावृतानां जननमरणदोलादुर्गसंसर्गणाम् ।
शरणमशरणानामेक एवातुराणां कुशलपथनियुक्तश्चक्रपाणिर्नराणाम् ॥१२॥

अपराधसहस्रसंकुलं पतितं भीमभवार्णवोदरे ।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥१३॥

मा मे स्त्रीत्वं मा च मे स्यात्कुभावो मा मूर्खत्वं मा कुदेशेषु जन्म ।
मिथ्या दृष्टिर्मा च मे स्यात्कदाचिज्जातौ जातौ विष्णुभक्तो भवेयम् ॥१४॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायैव समर्पयामि ॥१५॥

यत्कृतं यत्करिष्यामि तत्सर्वं न मया कृतम् ।
त्वया कृतं तु फलभुक् त्वमेव मधुसूदन ॥ १६ ॥

भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं
कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम् ।
सरसिजदृशि देवे तावकी भक्तिरेका
नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥ १७ ॥

तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले
दारावर्ते तनयसहजग्राहसंघाकुले च ।

संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्
पादाम्भोजे वरद भवतो भक्तिभावं प्रदेहि ॥ १८ ॥

पृथ्वीरेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुस्फुलिंगो लघु-
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः ।
क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा
दृष्टे यत्र स तावको विजयते श्रीपादधूलीकणः ॥ १९ ॥

आम्नायाभ्यसनान्यरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं
भेदच्छेदफलानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मनि ।
तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पद-
द्वन्द्वाम्भोरुहसंस्मृतिं विजयते देवः स नारायणः ॥२०॥

आनन्द गोविन्द मुकुन्द राम नारायणानन्त निरामयेति ।
वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनानि मोक्षे ॥२१॥

क्षीरसागरतरङ्गसीकरासारतारकितचारु मूर्तये ।
भोगिभोगशयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥२२॥

॥ इति श्रीकुलशेखरेण विरचितं मुकुन्दमालास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

२०. भगवच्छरणस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

सच्चिदानन्दरूपाय भक्तानुग्रहकारिणे ।
मायानिर्मितविश्वाय महेशाय नमो नमः ॥ १ ॥

रोगा हरन्ति सततं प्रबलाः शरीरं
कामादयोऽप्यनुदिनं प्रदहन्ति चित्तम् ।
मृत्युश्च नृत्यति सदा कलयन्दिनानि
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ २ ॥

देहो विनश्यति सदा परिणामशील-
श्चित्तं च खिद्यति सदा विषयानुरागी।
बुद्धिः सदा हि रमते विषयेषु नान्त-
स्तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ३ ॥

आयुर्विनश्यति यथाऽऽमघटस्थतोयं
विद्युत्प्रभेव चपला बत यौवनश्रीः।
वृद्धा प्रधावति यथा मृगराजपत्नी
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ४ ॥

आयाद्व्ययो मम भवत्यधिको विनीते
कामादयो हि बलिनो विबला शमाद्याः।
मृत्युर्यदा तुदति मां बत किं वदेयं
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ५ ॥

तप्तं तपो नहि कदापि मयेह तन्वा
वाण्या तथा नहि कदापि तपश्च तप्तम्।
मिथ्याभिभाषणपरेण न मानसं हि
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ६ ॥

स्तब्धं मनो मम सदा नहि याति सौम्यं
चक्षुश्च मे न तव पश्यति विश्वरूपम्।
वाचा तथैव न वदेन्मम सौम्यवाणीं
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ७ ॥

सत्त्वं न मे मनसि याति रजस्तमोभ्यां
विद्धे तथा कथमहो शुभकर्मवार्ता।
साक्षात्परम्परतया सुखसाधनं तत्
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ८ ॥

पूजा कृता नहि कदापि मया त्वदीया
मन्त्रं त्वदीयमपि मे न जपेद्रसज्ञा।

चित्तं न मे स्मरति ते चरणौ ह्यवाप्य
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ९ ॥

यज्ञो न मेऽस्ति हुतदानदयादियुक्तो
ज्ञानस्य साधनगणो न विवेकमुख्यः ।
ज्ञानं क्व साधनगणेन विना क्व मोक्ष-
स्तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १० ॥

सत्संगतिर्हि विदिता तव भक्तिहेतुः
साऽप्यद्य नास्ति बत पण्डितमानिनो मे ।
तामन्तरेण नहि सा क्व च बोधवार्ता
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ ११ ॥

दृष्टिर्न भूतविषया समताभिधाना
वैषम्यमेव तदियं विषयीकरोति ।
शान्तिः कुतो मम भवेत् समता न चेत्स्यात्
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १२ ॥

मैत्री समेषु न च मेऽस्ति कदापि नाथ
दीने तथा न करुणा मुदिता च पुण्ये ।
पापेऽनुपेक्षणवतो मम मुत्कथं स्यात्
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १३ ॥

नेत्रादिकं मम बहिर्विषयेषु सक्तं
नान्तर्मुखं भवति तामविहाय तस्य ।
क्वान्तर्मुखत्वमपहाय सुखस्य वार्ता
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १४ ॥

त्यक्तं गृहाद्यपि मया भवतापशान्त्यै
नासीदसौ हृतहृदो मम मायया ते ।
सा चाधुना किमु विधास्यति नेति जाने
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १५ ॥

प्राप्ता धनं गृहकुटुम्बगजाश्वदारा
राज्यं यदैहिकमथेन्द्रपुरश्च नाथ ।
सर्वं विनश्वरमिदं न फलाय कस्मै
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १६ ॥

प्राणान्निरुध्य विधिना न कृतो हि योगो
योगं विनाऽस्ति मनसः स्थिरता कुतो मे ।
तां वै विना मम न चेतसि शान्तिवार्ता
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १७ ॥

ज्ञानं यथा मम भवेत्कृपया गुरूणां
सेवां तथा न विधिनाकरवं हि तेषाम् ।
सेवापि साधनतया विदितास्ति चित्ते
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १८ ॥

तीर्थादिसेवनमहाविधिना हि नाथ
नाकारि येन मनसो मम शोधनं स्यात् ।
शुद्धिं विना न मनसोऽवगमापवर्गौ
तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ १९ ॥

वेदान्तशीलनमपि प्रमितिं करोति
ब्रह्मात्मनः प्रमितिसाधनसंयुतस्य ।
नैवास्ति साधनलवो मयि नाथ तस्या-
स्तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥ २० ॥

गोविन्द शंकर हरे गिरिजेश मेश
शम्भो जनार्दन गिरीश मुकुन्द साम्ब ।
नान्या गतिर्मम कथञ्चन वां विहाय
तस्मात्प्रभो मम गतिः कृपया विधेया ॥ २१ ॥

एतं स्तवं भगवदाश्रयणाभिधानं
ये मानवाः प्रतिदिनं प्रणताः पठन्ति ।
ते मानवा भवरतिं परिभूय शान्तिं
गच्छन्ति किञ्च परमात्मनि भक्तिमन्तः ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमन्मौक्तिकरामोदासीनशिष्यब्रह्मानन्दविरचितं भगवच्छरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

२१. श्रीहरिस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

जगज्जालपालं कचत्कण्ठमालं शरच्चन्द्रभालं महादैत्यकालम् ।
नभोनीलकायं दुरावारमायं सुपद्मासहायं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ १ ॥

सदाम्भोधिवासं गलत्पुष्पहासं जगत्संनिवासं शतादित्यभासम् ।
गदाचक्रशस्त्रं लसत्पीतवस्त्रं हसच्चारुवक्त्रं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ २ ॥

रमाकण्ठहारं श्रुतिव्रातसारं जलान्तर्विहारं धराभारहारम् ।
चिदानन्दरूपं मनोज्ञस्वरूपं धृतानेकरूपं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ३ ॥

जराजन्महीनं परानन्दपीनं समाधानलीनं सदैवानवीनम् ।
जगज्जन्महेतुं सुरानीककेतुं त्रिलोकैकसेतुं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ४ ॥

कृताम्नायगानं खगाधीशयानं विमुक्तेर्निदानं हरारातिमानम् ।
स्वभक्तानुकूलं जगद्वृक्षमूलं निरस्तार्तशूलं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ५ ॥

समस्तामरेशं द्विरेफाभकेशं जगद्बिम्बलेशं हृदाकाशदेशम् ।
सदा दिव्यदेहं विमुक्ताखिलेहं सुवैकुण्ठगेहं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ६ ॥

सुरालीबलिष्ठं त्रिलोकीवरिष्ठं गुरूणां गरिष्ठं स्वरूपैकनिष्ठम् ।
सदा युद्धधीरं महावीरधीरं भवाम्भोधितीरं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ७ ॥

रमावामभागं तलानग्ननागं कृताधीनयागं गतारागरागम् ।
मुनीन्द्रैः सुगीतं सुरैः संपरीतं गुणौघैरतीतं भजेऽहं भजेऽहम् ॥ ८ ॥

इदं यस्तु नित्यं समाधाय चित्तं पठेदष्टकं कष्टहारं मुरारेः।
स विष्णोर्विशोकं ध्रुवं याति लोकं जराजन्मशोकं पुनर्विद्यते नो ॥९॥

॥ इति श्रीपरमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं श्रीहरिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

२२. सङ्कष्टनाशनं विष्णुस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

नारद उवाच—

पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः।
भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥ १ ॥

देवा ऊचुः—

नमो मत्स्यकूर्मादिनानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहन्त्रे।
विधात्रादिसर्गस्थितिध्वंसकर्त्रे गदाशङ्खपद्मारिहस्ताय तेऽस्तु ॥ २ ॥
रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय।
मखादिक्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्याय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥३॥
नमो दैत्यसन्तापितामर्त्यदुःखाचलध्वंसदम्भोलये विष्णवे ते।
भुजङ्गेशतल्पेशयायार्कचन्द्रद्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥ ४ ॥

नारद उवाच—

संकष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत्पठेन्नरः।
स कदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥ ५ ॥

॥ इति पद्मपुराणे पृथुनारदसंवादे संकष्टनाशनं नाम
विष्णुस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

२३. नारायणहृदयस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ अस्य श्रीनारायणहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः, श्रीलक्ष्मीनारायणो देवता, श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥ अथ करन्यासः ॥ ॐ नारायणः परं ज्योतिरित्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नारायणः परं ब्रह्मेति तर्जनीभ्यां नमः । ॐ नारायणः परो देवेति मध्यमाभ्यां नमः । ॐ नारायणः परं धामेति अनामिकाभ्यां नमः । ॐ नारायणः परो धर्म इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ विश्वं नारायणः पर इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयदिन्यासः ॥ अथ ध्यानम् ॥ उद्यदादित्यसंकाशं पीतवाससमच्युतम् । शङ्खचक्रगदापाणिं ध्यायेल्लक्ष्मीपतिं हरिम् ॥ ॐ नमो भगवते नारायण इति मन्त्रं जपेत् ॥

श्रीवेदव्यास उवाच—

श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
नारायणः परं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
नारायणः परो देवो दाता नारायणः परः ।
नारायणः परो ध्याता नारायण नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

नारायणपरो बोधो विद्या नारायणः परा ।
विश्वं नारायणः साक्षान्नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥

नारायणाद्विधिर्जातो जातो नारायणाच्छिवः ।
जातो नारायणादिन्द्रो नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
रविर्नारायणं तेजश्चन्द्रो नारायणं महः ।
वह्निर्नारायणः साक्षान्नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

नारायण उपास्यः स्याद्गुरुर्नारायणः परः ।
नारायणः परो बोधो नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥

नारायणः फलं मुख्यं सिद्धिर्नारायणः सुखम् ।
सर्वं नारायणः शुद्धो नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

नारायणस्त्वमेवासि नारायण हृदि स्थितः ।
प्रेरकः प्रेर्यमाणानां त्वया प्रेरितमानसः ॥ ९ ॥

त्वदाज्ञां शिरसा धृत्वा जपामि जनपावनम् ।
नानोपासनमार्गाणां भावकृद्भावबोधकः ॥ १० ॥

भावकृद्भावभूतस्त्वं मम सौख्यप्रदो भव ।
त्वन्मायामोहितं विश्वं त्वयैव परिकल्पितम् ॥ ११ ॥

त्वदधिष्ठानमात्रेण संव सर्वार्थकारिणी ।
त्वमेवैतां पुरस्कृत्य मम कामान् समर्पय ॥ १२ ॥

न मे त्वदन्यः सन्त्राता त्वदन्यं न हि दैवतम् ।
त्वदन्यं न हि जानामि पालकं पुण्यरूपकम् ॥ १३ ॥

यावत्सांसारिको भावो नमस्ते भावनात्मने ।
तत्सिद्धिदो भवेत्सद्यः सर्वथा सर्वदा विभो ॥ १४ ॥

पापिनामहमेकाग्र्यो दयालूनां त्वमग्रणीः ।
दयनीयो मदन्योऽस्ति तव कोऽत्र जगत्त्रये ॥ १५ ॥

त्वयाऽप्यहं न सृष्टश्चेन्न स्यात्तव दयालुता ।
आमयो वा न सृष्टश्चेदौषधस्य वृथोदयः ॥ १६ ॥

पापसंघपरिक्रान्तः पापात्मा पापरूपधृक् ।
त्वदन्यः कोऽत्र पापेभ्यस्त्राता मे जगतीतले ॥ १७ ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या च गुरुस्त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥ १८ ॥

प्रार्थनादशकं चैव मूलाष्टकमथापि वा ।
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं तस्य लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ १९ ॥

नारायणस्य हृदयं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।
लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं यदि चैतद्विनाशकृत् ॥ २० ॥

तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तं लक्ष्मीः क्रुध्यति सर्वतः ।
एतत्संकलित स्तोत्रं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ २१ ॥

लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं तथा नारायणात्मकम् ।
जपेद्यः सङ्कलीकृत्य सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

नारायणस्य हृदयमादौ जत्त्वा ततः परम् ।
लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं जपेन्नारायणं पुनः ॥ २३ ॥

पुनर्नारायणं जपवा पुनर्लक्ष्मीहृदं जपेत् ।
पुनर्नारायणहृदं संपुटीकरणं जपेत् ।
एवं मध्ये द्विवारेण जपेल्लक्ष्मीहृदं हि तत् ॥ २४ ॥

लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं सर्वमेतत्प्रकाशितम् ।
तद्वज्जपादिकं कुर्यादितत्संकलितं शुभम् ॥ २५ ॥

स सर्वकाममाप्नोति आधिव्याधिभयं हरेत् ॥
गोप्यमेतत्सदा कुर्यान्न सर्वत्र प्रकाशयेत् ॥ २६ ॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमुक्तं ब्रह्मादिकैः पुरा ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपयेत्साधयेत्सुधीः ॥ २७ ॥

यत्रैतत्पुस्तकं तिष्ठेल्लक्ष्मीनारायणात्मकम् ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च वेतालान्नाशयेत्सदा ॥ २८ ॥

लक्ष्मीहृदयप्रोक्तेन विधिना साधयेत्सुधीः ।
भृगुवारे च रात्रौ तु पूजयेत्पुस्तकद्वयम् ॥ २९ ॥

सर्वदा सर्वदा सत्यं गोपयेत्साधयेत्सुधीः ।
गोपनात्साधनाल्लोके धन्यो भवति तत्त्ववित् ।
नारायणहृदं नित्यं नारायण नमोऽस्तु ते ॥ ३० ॥

॥ इत्यथर्वणरहस्योत्तरभागे नारायणहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

२४. त्रैलोक्यमङ्गलकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

नारद उवाच—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ कवचं यत्प्रकाशितम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कृपया कथय प्रभो ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच—

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम् ।
नारायणेन कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥ २ ॥
ब्रह्मणा कथित मह्यं परं स्नेहाद्वदामि ते ।
अतिगुह्यतरं सत्यं ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ॥ ३ ॥
यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ।
यद्धृत्वा पठनात्पाति महालक्ष्मीजगत्त्रयम् ॥ ४ ॥
पठनाद्धारणाच्छम्भुः संहर्ता सर्वमन्त्रवित् ।
त्रैलोक्यजननी. दुर्गा महिषादिमहासुरान् ॥ ५ ॥
वरद्दप्तान् जघानैव पठनाद्धारणाद्यतः ।
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥ ६ ॥
इदं कवचमत्यन्तगुप्तं कुत्रापि नो वदेत् ।
शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ॥ ७ ॥
शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।
त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥ ८ ॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो नारायणः स्वयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥
प्रणवो मे शिरः पातु नमो नारायणाय च ।
भालं मे नेत्रयुगलमष्टार्णो भुक्तिमुक्तिदः ॥ १० ॥
क्लीं पायाच्छ्रोत्रयुग्मं चैकाक्षरसर्वमोहनः ।
क्लीं कृष्णाय सदा घ्राणं गोविन्दायेति जिह्विकाम् ॥ ११ ॥

गोपीजनपदवल्लभाय स्वाहाऽऽननं मम।
अष्टादशाक्षरो मन्त्रः कण्ठं पातु दशाक्षरः ॥ १२ ॥
गोपीजनपदवल्लभाय स्वाहा भुजद्वयम्।
क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः स्कन्धौ दशाक्षरः ॥ १३ ॥

क्लीं कृष्णः क्लीं करौ पायात् क्लीं कृष्णायाङ्गतोऽवतु।
हृदयं भुवनेशानः क्लीं कृष्णाय क्लीं स्तनौ मम ॥ १४ ॥
गोपालायाग्निजायान्तं कुक्षियुग्मं सदाऽवतु।
क्लीं कृष्णाय सदा पातु पार्श्वयुग्मं मनूत्तमः ॥ १५ ॥

कृष्णगोविन्दकौ पातां स्मराद्यो ङेयुतो मनुः।
अष्टाक्षरः पातु नाभिं कृष्णेति द्व्यक्षरोऽवतु ॥ १६ ॥
पृष्ठं क्लीं कृष्णकं गल्लं क्लीं कृष्णाय द्विठान्तकः।
सक्थिनी सततं पातु श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णठद्वयम् ॥ १७ ॥

ऊरू सप्ताक्षरः पायात्त्रयोदशाक्षरोऽवतु।
श्रीं-ह्रीं-क्लींपदतो गोपीजनवल्लभपदं ततः ॥ १८ ॥
भाय स्वाहेति पायुं वै क्लीं ह्रीं श्रीं सदशार्णकः।
जानुनी च सदा पातु ह्रीं क्लीं च दशाक्षरः ॥ १९ ॥

त्रयोदशाक्षरः पातु जङ्घे चक्राद्युदायुधः।
अष्टादशाक्षरो ह्रीं-श्रीं-पूर्वको विंशदर्णकः ॥ २० ॥
सर्वाङ्गं मे सदा पातु द्वारकानायको बली।
नमो भगवते पश्चाद्वासुदेवाय तत्परम् ॥ २१ ॥

ताराद्यो द्वादशार्णोऽयं प्राच्यां मां सर्वदाऽवतु।
श्रीं ह्रीं क्लीं च दशार्णस्तु क्लीं ह्रीं श्रीं षोडशार्णकः ॥२२॥
गदाद्युदायुधो विष्णुर्मामग्नेर्दिशि रक्षतु।
ह्रीं श्रीं दशाक्षरो मन्त्रो दक्षिणे मां सदाऽवतु ॥ २३ ॥

तारो नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय च।
स्वाहेति षोडशार्णोऽयं नैर्ऋत्यां दिशि रक्षतु ॥ २४ ॥

क्लीं हृषीकपदेशाय नमो मां वरुणोऽवतु ।
अष्टादशार्णः कामान्तो वायव्ये मां सदाऽवतु ॥ २५ ॥

श्रीं मायाकामकृष्णाय गोविन्दाय द्विठो मनुः ।
द्वादशार्णात्मको विष्णुरुत्तरे मां सदाऽवतु ॥ २६ ॥

वाग्भवं कामकृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय तत्परम् ।
श्रीं गोपीजनवल्लभान्ते भाय स्वाहा करौ ततः ॥ २७ ॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मामैशान्ये सदाऽवतु ।
कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् ॥ २८ ॥
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रोऽप्यधो मां सर्वदाऽवतु ॥ २९ ॥

कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि ।
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयादेषा मां पातु चोर्ध्वतः ॥ ३० ॥
इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥ ३१ ॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥ ३२ ॥

गुरुं प्रणम्य विधिवत्कवचं प्रपठेत्ततः ।
सकृद्द्विस्त्रिर्यथाज्ञानं स हि सर्वतपोमयः ॥ ३३ ॥

मन्त्रेषु सकलेष्वेव देशिको नात्र संशयः ।
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥ ३४ ॥
हवनादिदशांशेन कृत्वा तत्साधयेद्ध्रुवम् ।
यदि स्यात्सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेत्स्वयम् ॥ ३५ ॥

मन्त्रसिद्धिर्भवेत्तस्य पुरश्चर्याविधानतः ।
स्पर्धामुद्भूय सततं लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥ ३६ ॥
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ।
दशवर्षसहस्राणि पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥ ३८ ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ॥ ३९ ॥
कलां नार्हन्ति तान्येव सकृदुच्चारणात्ततः ।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ ४० ॥
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
इदं कवचमज्ञात्वा यजेद्यः पुरुषोत्तमम् ॥ ४१ ॥
शतलक्षं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रस्तस्य सिद्धयति ॥ ४२ ॥

॥ इति श्रीमन्नारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे त्रैलोक्यमङ्गलकवचं सम्पूर्णम् ॥

२५. श्रीजगन्नाथाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

कदाचित्कालिन्दीतटविपिनसङ्गीतकरवो
मुदाभीरीनारीवदनकमलास्वादमधुपः ।
रमाशम्भुब्रह्मामरपतिगणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ १ ॥

भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचरकटाक्षं विदधते ।
सदा वृन्दावनश्रीमद्वसतिलीलापरिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ २ ॥

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहजबलभद्रेण बलिना ।
सुभद्रामध्यस्थः सकलसुरसेवावसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ३ ॥

कृपापारावारः सजलजलदश्रेणिरुचिरो
रमावाणीरामस्फुरदमलपद्मेक्षणमुखैः ।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगणशिखागीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ४ ॥

रथारूढो गच्छन् पथि मिलितभूदेवपटलैः
स्तुतिप्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः ।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुतया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ५ ॥

परब्रह्मापीडः कुवलयदलोत्फुल्लनयनो
निवासी नीलाद्रौ निहितचरणोऽनन्तशिरसि ।
रसानन्दो राधासरसवपुरालिङ्गनसुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ६ ॥

न वै प्रार्थ्यं राज्यं न च कनकतां भोगविभवं
न याचेऽहं रम्यां निखिलजनकाम्यां वरवधूम् ।
सदा काले काले प्रमथपतिना गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ७ ॥

हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते ।
अहो दीनानाथं निहितमचलं निश्चितपदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीशङ्कराचार्यप्रणीतं जगन्नाथाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

२६. श्रीरङ्गस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

पद्माधिराजे गरुडाधिराजे विरिञ्चिराजे सुरराजराजे ।
त्रैलोक्यराजेऽखिलराजराजे श्रीरङ्गराजे रमतां मनो मे ॥ १ ॥

नीलाब्जवर्णे भुजपूर्णकर्णे कर्णान्तनेत्रे कमलाकलत्रे ।
श्रीमल्लरङ्गे जितमल्लरङ्गे श्रीरङ्गरङ्गे रमतां मनो मे ॥ २ ॥

लक्ष्मीनिवासे जगतां निवासे हृत्पद्मवासे रविबिम्बवासे ।
क्षीराब्धिवासे फणिभोगवासे श्रीरङ्गवासे रमतां मनो मे ॥ ३ ॥

कुबेरलीले जगदेकलीले मन्दारमालाङ्कितचारुफाले ।
दैत्यान्तकालेऽखिलोकमौ़ले श्रीरङ्गलीले रमतां मनो मे ॥ ४ ॥

अमोघनिद्रे जगदेकनिद्रे विदेहनिद्रे च समुद्रनिद्रे ।
श्रीयोगनिद्रे सुखयोगनिद्रे श्रीरङ्गनिद्रे रमतां मनो मे ॥ ५ ॥

आनन्दरूपे निजबोधरूपे ब्रह्मस्वरूपे क्षितिमूर्तिरूपे ।
विचित्ररूपे रमणीयरूपे श्रीरङ्गरूपे रमतां मनो मे ॥ ६ ॥

भक्ताकृतार्थे मुररावणार्थे भक्तासमर्थे जगदेवकीर्ते ।
अनेकमूर्ते रमणीयमूर्ते श्रीरङ्गमूर्ते रमतां मनो मे ॥ ७ ॥

कंसप्रमाथे नरकप्रमाथे दुष्टप्रमाथे जगतां निधाने ।
अनाथनाथे जगदेकनाथे श्रीरङ्गनाथे रमतां मनो मे ॥ ८ ॥

सचित्रशायी जगदेशायी नन्दाङ्कशायी कमलाङ्कशायी ।
अम्बोधिशायी वटपत्रशायी श्रीरङ्गशायी रमतां मनो मे ॥ ९ ॥

सकलदुरितहारी भूमिभारापहारी दशमुखकुलहारी दैत्यदर्पापहारी ।
सुललितकृतचारी पारिजातापहारी त्रिभुवनभयहारी
प्रीयतां श्रीमुरारिः ॥ १० ॥

रङ्गस्तोत्रमिदं पुण्यं प्रातःकाले पठेन्नरः ।
कोटिजन्मार्जितं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥

॥ इति श्रीरङ्गस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

२७. गजेन्द्रमोक्षस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीशुक उवाच—

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

गजेन्द्र उवाच—

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयं भुवम् ॥ ३ ॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं,
क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते,
स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदाऽसीद्गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभि राजते विभुः ॥ ५ ॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नरस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसम्भववाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥८॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥
सत्त्वेन प्रतिलभ्याय, नैष्कर्म्येण विपश्चिता।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाण-सुख-संविदे ॥ ११ ॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥
क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्टे सर्वं-प्रत्ययहेतवे।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय।
सर्वागमाम्नाय महार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय, तत्क्षोभविस्फूर्जित-मानसाय।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम स्वयं प्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

माद्दक्प्रपन्नपशुपाश—विमोक्षणाय,
मुक्ताय भूरि-करुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत
प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥

आत्मात्मजात–गृह–वित्त–जनेषु सक्तै-
र्दुष्प्रापणाय गुण–सङ्ग–विवर्जिताय।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय,
ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥

थं धर्मकामार्थ-विमुक्ति-कामा भजन्त इष्टो गतिमाप्नुवन्ति।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्र-दयो विमोक्षणम् ॥१९॥
एकान्तिनो यस्य न काञ्चनार्थं, वाञ्छन्ति ये वै भगवत्-प्रपन्नाः।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं, गायन्त आनन्द-समुद्र-मग्नाः ॥ २० ॥

तमक्षरं ब्रह्मपरं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोग-गम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवाति-दूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ।
नाम-रूप-विभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनःखानि शरीरसर्गाः ॥ २३ ॥

स वै न देवासुरमर्त्य-तिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥

जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्म-लोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥

योग-रन्धित-कर्माणो हृदि योग-विभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्य-वेग-शक्ति-त्रयायाऽखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥

नायं वेद स्वमात्ममानं यच्छक्त्याहं धिया हतम् ।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥

श्रीशुक उवाच—

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं,
ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्-
तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥

तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः
स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।

छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान-
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥

सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रा-
न्नारायणा खिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥ ३२ ॥

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य,
सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद्विपाटित–मुखादरिणा गजेन्द्रं
संपश्यतां हरिरभूमचदुस्त्रियाणाम् ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

२८. श्रीगोपालकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमहादेव उवाच—

अथ वक्ष्यामि कवचं गोपालस्य जगद्गुरोः ।
यस्य स्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ १

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय ।
नारदोऽस्य ऋषिर्देवि छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥

देवता बालकृष्णश्च चतुर्वर्गप्रदायकः ।
शिरो मे बालकृष्णश्च पातु नित्यं मम श्रुती ॥ ३ ॥

नारायणः पातु कण्ठं गोपीवन्द्यः कपोलकम् ।
नासिके मधुहा पातु चक्षुषी नन्दनन्दनः ॥ ४ ॥

जनार्दनः पातु दन्तानधरं माधवस्तथा ।
ऊर्ध्वोष्ठं पातु वाराहश्चिबुकं केशिसूदनः ॥ ५ ॥

हृदयं गोपिकानाथो नाभिं सेतुप्रदः सदा ।
हस्तौ गोवर्धनधरः पादौ पीताम्बरोऽवतु ॥ ६ ॥

कराङ्गुलीः श्रीधरो मे पादाङ्गुल्यः कृपामयः ।
लिङ्गं पातु गदापाणिर्बालक्रीडामनोरमः ॥ ७ ॥

जगन्नाथः पातु पूर्वं श्रीरामोऽवतु पश्चिमम् ।
उत्तरं कैटभारिश्च दक्षिणं हनुमत्प्रभुः ॥ ८ ॥

आग्नेय्यां पातु गोविन्दो नैर्ऋत्यां पातु केशवः ।
वायव्यां पातु दैत्यारिरैशान्यां गोपनन्दनः ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वं पातु प्रलम्बारिरधः कैटभमर्दनः ।
शयानं पातु पूतात्मा गतौ पातु श्रियःपतिः ॥ १० ॥

शेषः पातु निरालम्बे जाग्रद्भावे ह्यपांपतिः ।
भोजने केशिहा पातु कृष्णः सर्वाङ्गसन्धिषु ॥ ११ ॥

गणनासु निशानाथो दिवानाथो दिनक्षये ।
इति ते कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥

यः पठेन्नित्यमेवेदं कवचं प्रयता नरः ।
तस्याशु विपदो देवि नश्यन्ति रिपुसंघतः ॥ १३ ॥

अन्ते गोपालचरणं प्राप्नोति परमेश्वरि ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यः पठेच्छृणुयादपि ॥ १४ ॥

तं सर्वदा रमानाथः परिपाति चतुर्भुजः ।
अज्ञात्वा कवचं देवि गोपालं पूजयेद्यदि ॥ १५ ॥

सर्वं तस्य वृथा देवि जपहोमार्चनादिकम् ।
स शस्त्रघातं सम्प्राप्य मृत्युमेति न संशयः ॥ १६ ॥

इति नारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे चतुर्थरात्रे श्रीगोपाल-
कवचं सम्पूर्णम् ॥

२९. जगन्मङ्गलकवचस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधारमणाय नमः

श्रीसनत्कुमार उवाच—

ब्रूहि मे कवचं ब्रह्मन् जगन्मङ्गलमङ्गलम् ।
पूज्यं पुण्यस्वरूपं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच—

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम् ।
श्रीकृष्णेनैव कथितं मह्यं च कृपया पुरा ॥ २ ॥
मया दत्तं च धर्माय तेन नारायणर्षये ।
ऋषिणा तेन तद्दत्तं सुभद्राय महात्मने ॥ ३ ॥
अतिगुह्यतमं शुद्धं परं स्नेहाद्वदाम्यहम् ।
यद्धृत्वा पठनात्सिद्धाः सिद्ध्यादि प्राप्नुवन्ति च ॥४॥

एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।
ऋषिश्छन्दश्च सावित्री देवो नारायणः स्वयम् ॥ ५ ॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
ॐराधेशो मे शिरः पातु कण्ठं राधेश्वरः स्वयम् ॥६॥

गोपीशश्चक्षुषी पातु तालुं च भगवान्स्वयम् ।
गण्डयुग्मं च गोविन्दः कर्णयुग्मं च केशवः ॥ ७ ॥
गलं गदाधरः पातु स्कन्धं कृष्णः स्वयंप्रभुः ।
वक्षःस्थलं वासुदेवश्चोदरं चापि सोऽच्युतः ॥ ८ ॥

नाभिं पातु पद्मनाभः कङ्कालं कंससूदनः ।
पुरुषोत्तमः पातु पृष्ठं नित्यानन्दो नितम्बकम् ॥ ९ ॥
पुण्डरीकः पादयुग्मं हस्तयुग्मं हरिः स्वयम् ।
नासां च नखरं पातु नरसिंहः स्वयंप्रभुः ॥ १० ॥

सर्वेश्वरश्च सर्वाङ्गं सततं मधुसूदनः ।
प्राच्यां पातु च रामश्च वह्नौ वंशीधरः स्वयम् ॥ ११ ॥

पातु दामोदरो दक्षे नैर्ऋत्ये च नरोत्तमः ।
पश्चिमे पुण्डरीकाक्षो वायव्यां वामनः स्वयम् ॥ १२ ॥

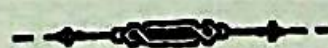
अनन्तश्चोत्तरे पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ।
जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा ॥ १३ ॥

पातु वृन्दावनेशश्च मां भक्तं शरणागतम् ।
इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्‌भुतम् ॥ १४ ॥

सुखदं मोक्षदं सारं सर्वसिद्धिप्रदं सताम् ।
इदं कवचमिष्टं च पूजाकाले च यः पठेत् ॥ १५ ॥

हरिदास्यमवाप्नोति गोलोके वा समुत्तमम् ।
इहैव हरिभक्तिं च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे प्रथमैकरात्रे
ब्रह्मनारदसंवादे जगन्मङ्गलकवचं समाप्तम् ॥



शिवस्त्रोत्राणि

३०. शिवप्रातःस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ १ ॥
प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्धदेहं सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ २ ॥
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।
नामादिभेदरहितं षड्भावशून्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥ ३ ॥
प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।
ते दुःखजातं बहुजन्मसंचितं हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥ ४ ॥

॥ इति शिवप्रातःस्मरणम् ॥

३१. द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम् ॥ १ ॥
परल्यां वैद्यनाथं (वैजनाथं) च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥ २ ॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुसृणेशं शिवालये ॥ ३ ॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायंप्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥ ४ ॥

॥ इति द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणं सम्पूर्णम् ॥

३२. शशाङ्कमौलीश्वरस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

माङ्गल्यदाननिरत प्रणमज्जनानां
मान्धातृमुख्यधरणीपतिचिन्तिताङ्घ्रे ।
मान्द्यन्धकारविनिवारणचण्डभानो
मां पाहि धीरगुरुभूत शशाङ्कमौले ॥ १ ॥
मां प्राप्नुयादखिलसौख्यकरी सुधीश्च
माकन्दतुल्यकविता सकलाः कलाश्च ।
क्वाचित्कयत्पदसरोजनतेर्हि स त्वं
मां पाहि धीरगुरुभूत शशाङ्कमौले ॥ २ ॥
मातङ्गकृत्तिवसन प्रणतार्तिहारिन्-
मायासरित्पतिविशोषणवाडवाग्ने ।
मानोन्नतिप्रद निजाङ्घ्रिजुषां नराणां
मां पाहि धीरगुरुभूत शशाङ्कमौले ॥ ३ ॥

॥ इति शशाङ्कमौलीश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

३३. अर्धनारीश्वरस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

मन्दारमालालुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥ १ ॥
एकः स्तनस्तुङ्गतरः परस्य वार्तामिव प्रष्टुमगान्मुखाग्रम् ।
यस्याः प्रियार्धस्थितिमुद्वहन्त्याः सा पातु वः पर्वतराजपुत्री ॥ २ ॥
यस्योपवीतगुण एव फणावृतैकवक्षोरुहः कुचपटीयति वामभागे ।
तस्मै ममास्तु तमसामवसानसीम्ने चन्द्रार्धमौलिशिरसे नमस्या ॥३॥
स्वेदार्द्रवामकुचमण्डनपत्रभङ्गसंशोषिदक्षिणकराङ्गुलिभस्मरेणुः ।
स्त्रीपुंनपुंसकपदव्यतिलङ्घिनो वः शम्भोस्तनुः सुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी ॥४॥

॥ इत्यर्धनारीश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

३४. शिवनामावल्यष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शम्भो ।
भूतेश भीतभयसूदन मामनाथं संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ १ ॥
हे पार्वतीहृदयवल्लभ चन्द्रमौले भूताधिप प्रमथनाथ गिरीशजाप ।
हे वामदेव भव रुद्र पिनाकपाणे संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ २ ॥
हे नीलकण्ठ वृषभध्वज पञ्चवक्त्र लोकेश शेषवलय प्रमथेश शर्व ।
हे धूर्जटे पशुपते गिरिजापते मां संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ ३ ॥
हे विश्वनाथ शिव शंकर देवदेव गङ्गाधर प्रथमनायक नन्दिकेश ।
बाणेश्वरान्धकरिपो हर लोकनाथ संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ ४ ॥
वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश वीरेश दक्षमखकाल विभो गणेश ।
सर्वज्ञ सर्वहृदयैकनिवास नाथ संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ ५ ॥
श्रीमन्महेश्वर कृपामय हे दयालो हे व्योमकेश शितिकण्ठ गणाधिनाथ ।
भस्माङ्गराग नृकपालकलापमाल संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ ६ ॥
कैलासशैलविनिवास वृषाकपे हे मृत्युंजय त्रिनयन त्रिजगन्निवास ।
नारायणप्रिय मदापह शक्तिनाथ संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ ७ ॥
विश्वेश विश्वभवनाशितविश्वरूप विश्वात्मक त्रिभुवनैकगुणाभिवेश ।
हे विश्वबन्धुकरुणामय दीनबन्धो संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥ ८ ॥
गौरीविलासभुवनाय महेश्वराय पञ्चाननाय शरणागतरक्षकाय ।
शर्वाय सर्वजगतामधिपाय तस्मै दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं शिवनामावल्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥

३५. लिङ्गाष्टकस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ब्रह्ममुरारिसुरार्चितलिङ्गं निर्मलभासितशोभितलिङ्गम् ।
जन्मजदुःखविनाशकलिङ्गं तत्प्रणमामि सदा शिवलिङ्गम् ॥ १ ॥

देवमुनिप्रवरार्चितलिङ्गं कामदहं करुणाकरलिङ्गम् ।
रावणदर्पविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ २ ॥

सर्वसुगन्धिसुलेपितलिङ्गं बुद्धिविवर्धनकारणलिङ्गम् ।
सिद्धसुरासुरवन्दितलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ३ ॥

कनकमहामणिभूषितलिङ्गं फणिपतिवेष्टितशोभितलिङ्गम् ।
दक्षसुयज्ञविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ४ ॥

कुंकुमचन्दनलेपितलिङ्गं पङ्कजहारसुशोभितलिङ्गम् ।
सञ्चितपापविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ५ ॥

देवगणार्चितसेवितलिङ्गं भावैर्भक्तिभिरेव च लिङ्गम् ।
दिनकरकोटिप्रभाकरलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ६ ॥

अष्टदलोपरिवेष्टितलिङ्गं सर्वसमुद्भवकारणलिङ्गम् ।
अष्टदरिद्रविनाशितलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ७ ॥

सुरगुरुसुरवरपूजितलिङ्गं सुरवनपुष्पसदार्चितलिङ्गम् ।
परात्परं परमात्मकलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥ ८ ॥

लिङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीलिङ्गाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

३६. शिवषडक्षरस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥ १ ॥

नमन्ति ऋषयो देवा नमन्त्यप्सरसां गणाः ।
नरा नमन्ति देवेशं नकाराय नमो नमः ॥ २ ॥

महादेवं महात्मानं महाध्यानं परायणम् ।
महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः ॥ ३ ॥

शिवं शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रहकारकम् ।
शिवमेकपदं नित्यं शिकाराय नमो नमः ॥ ४ ॥

वाहनं वृषभो यस्य वासुकिः कण्ठभूषणम् ।
वामे शक्तिधरं देवं वकाराय नमो नमः ॥ ५ ॥

यत्र यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
यो गुरुः सर्वदेवानां यकाराय नमो नमः । ६ ॥

षडक्षरमिदं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले उमामहेश्वरसंवादे शिवषडक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

३७. वेदसारशिवस्तवस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ॥ १ ॥

महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नि त्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ॥ २ ॥

गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गजेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ॥ ३ ॥

शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन् ।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ॥ ४ ॥

परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥ ५ ॥

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा ।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे ॥ ६ ॥

अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
तुरीयं तमःपारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥ ७ ॥
नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ॥ ८ ॥

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र ।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ॥ ९ ॥

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन् ।
काशीपते करुणया जगदेतदेकस्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ॥१०॥

त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश लिङ्गात्मकं हर चराचरविश्वरूपिन् ॥११॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितो वेदसारशिवस्तवः सम्पूर्णः ॥

३८. शिवस्तुतिः

श्रीगणेशाय नमः

गले कलितकालिमः प्रकटितेन्दुभालस्थले
विनाटितजटोत्करं रुचिरपाणिपाथोरुहे ।

उदञ्चितकपालकं जघनसीम्नि सन्दर्शित-
द्विपाजिनमनुक्षणं किमपि धाम वन्दामहे ॥ १ ॥

वृषोपरि परिस्फुरद्धवलधाम धाम श्रियां
कुबेरगिरिगौरिमप्रभवगर्वनिर्वासि तत् ।

क्वचित्पुनरुमाकुचोपचितकुंकुमै रञ्जितं
गजाजिनविराजितं वृजिनभङ्गबीजं भजे ॥ २ ॥

उदित्वरविलोचनत्रयविसृत्वरज्योतिषा
कलाकरकलाकरव्यतिकरेण चाहर्निशम् ।
विकासितजटाटवीविहरणोत्सवप्रोल्लस-
त्तरामरतरङ्गिणीतरलचूडमीडे मृडम् ॥ ३ ॥

विहाय कमलालयाविलसितानि विद्युन्नटी
विडम्बनपटूनि मे विहरणं विधत्तां मनः ।
कपर्दिनि कुमुद्वतीरमणखण्डचूडामणौ
कटीतटपटीभवत्करटिचर्मणि ब्रह्मणि ॥ ४ ॥

भवद्भवनदेहलीनिकटतुण्डदण्डाहति-
त्रुटन्मुकुटकोटिभिर्मघवदादिभिर्भूयते ।
व्रजेम भवदन्तिकं प्रकृतिमेत्य पैशाचिकीं
किमित्यमरसम्पदः प्रथमनाथ नाथामहे ॥ ५ ॥

त्वदर्चनपरायणप्रमथकन्यकालुण्ठित-
प्रसूनसफलद्रुमं कमपि शैलमाशास्महे ।
अलं तटवितर्दिकाशयितसिद्धसीमन्तिनी
प्रकीर्णसुमनोमनोरमणमेरुणा मेरुणा ॥ ६ ॥

न जातु हर यातु मे विषयदुर्विलासं मनो
मनोभवकथाऽस्तु मे न च मनोरथातिथ्यभूः ।
स्फुरत्सुरतरङ्गिणीतटकुटीरकोटौ वस-
न्नये शिव दिवानिशं तव भवानि पूजापरः ॥ ७ ॥

विभूषणसुरापगाशुचितराल-ालावली-
वलद्वहलसीकरप्रकरसेकसंवर्धिता ।
महेश्वरसुरद्रुमस्फुरितसज्जटामञ्जरी
निमज्जनफलप्रदा मम नु हन्त भूयादियम् ॥ ८ ॥

बहिर्विषयसङ्गतिप्रतिनिर्वर्तिताक्षावलेः
समाधिकलितात्मनः पशुपतेरशेषात्मनः ।

शिरःसुरसरित्तटीकुटिलकल्पकल्पद्रुमं
निशाकरकलामहं बटुविमृश्यमानां भजे ॥ ९ ॥
त्वदीयसुरवाहिनीविमलवारिधारावल-
ज्जटागहनगाहिनी मतिरियं मम क्रामतु ।
उपोत्तमसरित्तटीविटपिताटवी प्रोल्लसत्
तपस्विपरिषत्तुलाममलमल्लिकाभं प्रभो ॥ १० ॥

॥ इति लङ्केश्वरविरचिता शिवस्तुतिः सम्पूर्णा ॥

३९. चन्द्रशेखराष्टकस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम् ।
चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ।। १ ।।

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं
शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युताननसायकम् ।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ २ ॥

पञ्चपादपपुष्पगन्धपदाम्बुजद्वयशोभितं
भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम् ।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशनं भवमव्ययं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ३ ॥

मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं
पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम् ।
देवसिन्धुतरङ्गसीकरसिक्तशुभ्रजटाधरं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ४ ॥

यक्षराजसखं भगाक्षहरं भुजङ्गविभूषणं
शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम् ।

क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ५ ॥
कुण्डलीकृतकुण्डलेश्वरकुण्डलं वृषवाहनं
नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकान्धकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ६ ॥
भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं
दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम् ।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं सकलौघसंघनिवर्हणं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ७ ॥
भक्तवत्सलमर्चितं निधिक्षयं हरिदम्बरं
सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनुत्तमम् ।
सोमवारिदभूहुताशनसोमपानिलखाकृतिं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ८ ॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं
संहरन्तमपि प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम् ।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमन्वितं
चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥ ९ ॥
मृत्युभीतमृकण्डसूनुकृतस्तवं शिवसंनिधौ
यत्र कुत्र च यः पठन्न हि तस्य मृत्युभयं भवेत् ।
पूर्णमायुररोगितामखिलार्थसम्पदमादरं
चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः ॥ १० ॥

॥ इति श्रीचन्द्रशेखराष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

४०. निर्वाणदशकम्

श्रीगणेशाय नमः

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुर्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः ।
अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्त्यैकसिद्धस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ १ ॥
न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणाध्यानयोगादयोऽपि ।
अनात्माश्रयाऽहंममाध्यासहानात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ २ ॥
न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति ।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ३ ॥
न साङ्ख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा ।
विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ४ ॥
न शुक्लं न कृष्णं न रक्त न पीतं न पीनं न कुब्जं न ह्रस्वं न दीर्घम् ।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ५ ॥
न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा ।
अविद्यात्मकत्वात्त्रयाणां तुरीयस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ६ ॥
न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः ।
स्वरूपावबोधाद्विकल्पासहिष्णुस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ७ ॥
न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न बाह्यं न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वा परा दिक् ।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूपस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ८ ॥
अपि व्यापकत्वाद्धितत्त्वत्प्रयोगात्स्वतःसिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् ।
जगत्तुच्छमेतत्समस्तं तदन्यत्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ ९ ॥
न चैकं तदन्यद्द्वितीयं कुतः स्यान्न चाकेवलत्वं न चाकेवलत्वम् ।
न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वात्कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं निर्वाणदशकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

४१. अपमृत्युहरं महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युञ्जयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमार्कण्डेय ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमृत्युञ्जयो देवता, गौरी शक्तिः, मम सर्वारिष्टसमस्तमृत्युशान्त्यर्थं सकलैश्वर्यप्राप्त्यर्थं च जपे विनियोगः।

॥ अथ ध्यानम् ॥

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम्।
कोटीन्दुप्रगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्तं विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत्:

ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ १ ॥

नीलकण्ठं कालमूर्तिं कालज्ञं कालनाशनम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ २ ॥

नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निलयप्रभम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ३ ॥

वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ४ ॥

देवदेवं जगन्नाथं देवेशं वृषभध्वजम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ५ ॥

गङ्गाधरं महादेवं सर्वाभरणभूषितम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ६ ॥

अनाथः परमानन्दं कैवल्यपदगामिनि।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ७ ॥

स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थितिविनाशकम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ८ ॥

उत्पत्तिस्थितिसंहारकर्तारमीश्वरं गुरुम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
तस्य मृत्युभयं नास्ति नाग्निचौरभयं क्वचित् ॥ १० ॥

शतावर्तं प्रकर्तव्यं संकटे कष्टनाशनम् ।
शुचिर्भूत्वा पठेत्स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ११ ॥

मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम् ।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ॥ १२ ॥

तावतस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ।
इति विज्ञाप्य देवेशं त्र्यम्बकाख्यं मनुं जपेत् ॥ १३ ॥

नमः शिवाय साम्बाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय योगिनां पतये नमः ॥ १४ ॥

शताङ्गायुर्मन्त्रः । ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं ह्रैं ह्रः हन हन दह दह पच पच गृहाण गृहाण मारय मारय मर्दय मर्दय महामहाभैरव भैरवरूपेण धुनय धुनय कम्पय कम्पय विघ्नय विघ्नय विश्वेश्वर क्षोभय क्षोभय कटु कटु मोहय मोहय हुं फट् स्वाहा ॥

इति मन्त्रमात्रेण समाभीष्टो भवति ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्कण्डेयकृतमपमृत्युहरं महामृत्युञ्जयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

४२. शिवानन्दलहरीस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

पुरे पौरान्पश्यन्नरयुवतिनामाकृतिमयान्
सुवेशान् स्वर्णालङ्करणकलिताञ्चित्रसदृशान् ।
स्वयं साक्षी द्रष्टेत्यपि च कलयंस्तैः सह रमन्
मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ १ ॥

वने वृक्षान्पश्यन् दलफलभरान्नम्रमुशिखाद्-
घनच्छायाछन्नान् बहुलकलकूजद्द्विजगणान् ।
भक्षन् घस्रे रात्रावतनितलतल्पैकशयनो
मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ २ ॥

कदाचित्प्रासादे क्वचिदपि तु सौधे च धवले
कदाकाले शैले क्वचिदपि च कूले च सरिताम् ।
कुटीरे दान्तानां मुनिजनवराणामपि वसन्
मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ ३ ॥

क्वचिद्बालैः सार्धं करतलजतालैश्च हसितैः
क्वचिद्वै तारुण्याङ्कितचतुरनार्या सह रमन् ।
क्वचिद्वृद्धैश्चिन्तां क्वचिदपि तदन्यैश्च विलपन्
मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ ४ ॥

कदाचिद्विद्वद्भिर्विविधसुपुरानन्दरसिकैः
कदाचित्काव्यालंकृतरसरसालैः कविवरैः ।
वदन्वादांस्तर्कैरनुमितिपरैस्तार्किकवरै
र्मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ ५ ॥

कदा ध्यानाभ्यासैः क्वचिदपि सपर्या विकसितैः
सुगन्धैः सत्पुष्पैः क्वचिदपि दलैरेव विमलैः ।

प्रकुर्वन्देवस्य प्रमुदितमनाः संस्तुतिपरो
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ ६ ॥

शिवायाः शम्भोर्वा क्वचिदपि च विष्णोरपि कदा
गणाध्यक्षस्यापि प्रकटतपनस्यापि च कदा ।
पठन्वै नामालिं नयनरचितानन्दसलिलो
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ ७ ॥

कदा गङ्गाम्भोभिः क्वचिदपि च कूपोत्थितजलैः
क्वचित्कासारोत्थैः क्वचिदपि सदुष्णैश्च शिशिरैः ।
भजन्स्नानैर्भूत्या क्वचिदपि च कर्पूरनिभया
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ ८ ॥

कदाचिज्जागृत्यां विषयकरणैः संव्यवहरन्
कदाचित्स्वप्नस्थानपि च विषयानेव च भजन् ।
कदाचित्सौषुप्तं सुखमनुभवन्नेव सततं
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ ९ ॥

कदाप्याशावासाः क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः
क्वचित्पञ्चास्योत्थां त्वचमपि दधानः कटितटे ।
मनस्वी निःशङ्कः स्वजनहृदयानन्दजनको
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ १० ॥

कदाचित्सत्त्वस्थः क्वचिदपि रजोवृत्तियुगत-
स्तमोवृत्तिः क्वापि त्रितयरहितः क्वापि च पुनः ।
कदाचित्संसारी श्रुतिपथविहारी क्वचिदपि
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ ११ ॥

कदाचिन्मौनस्थः क्वचिदपि च व्याख्याननिरतः
कदाचित्सानन्दं हसति रभसत्यक्तवचसा ।
कदाचिल्लोकानां व्यवहृतिसमालोकनपरो
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ १२ ॥

कदाचिच्छक्तीनां विकचमुखपद्मेषु कवला-
न्क्षिपंस्तासां क्वापि स्वयमपि च गृह्णन्स्वमुखतः ।
महाद्वैतं रूपं निजपरविहीनं प्रकटयन्
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ १३ ॥

क्वचिच्छैवैः सार्धं क्वचिदपि च शाक्तैः सह वसन्
कदा विष्णोर्भक्तैः क्वचिदपि च सौरैः सह वसन् ।
कदा गाणापत्यैर्गतसकलभेदोऽद्वयतया
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ १४ ॥

निराकारं क्वापि क्वचिदपि च साकारममलं
निजं शैवं रूपं विविधगुणभेदेन बहुधा ।
कदाश्चर्यं पश्यन्किमिदमिति हृष्यन्नपि कदा
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ १५ ॥

कदा द्वैतं पश्यन्नखिलमपि सत्यं शिवमयं
महावाक्यार्थानामवगतसमभ्यासवशतः ।
गतद्वैताभावः शिव शिव शिवेत्येव विलपन्
मुनिर्नं व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमा ॥ १६ ॥

इमां मुक्तावस्थां परमशिवसंस्थां गुरुकृपा-
सुधापाङ्गावाप्यां सहजसुखवाप्यामनुदिनम् ।
मुहुर्मज्जन्मज्जन् भजति सुकृती चेन्नरवर-
स्तदा योगी त्यागी कविरिति वदन्तीह कवयः ॥ १७ ॥

मौने मौनी गुणिनि गुणवान् पण्डिते पण्डितश्च
दीने दीनः सुखिनि सुखवान् भोगिनि प्राप्तभोगः ।
मूर्खे मूर्खो युवतिषु युवा वाग्मिनि प्रौढवाग्मी
धन्यः कोऽपि त्रिभुवनजयी योऽत्रधूतेऽवधूतः ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचिता श्रीशिवानन्दलहरी सम्पूर्णा ॥

४३. आङ्गिरसप्रोक्तं सर्वसिद्धिदं शिवस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

आङ्गिरस उवाच—

जय शंकर ! शान्त ! शशाङ्करुचे ! रुचिरार्थद ! सर्वद ! सर्वशुचे ! ।
शुचिदत्तगृहीतमहोपहृते ! हृतभक्तजनोद्धततापतते ! ॥ १ ॥

ततसर्वहृदम्बर ! वरद ! नते ! नतवृजिनमहावनदाहकृते ! ।
कृतविविधचरित्रतनो ! सुतनो ! तनुविशिखविशोषणधैर्यनिधे ! ॥ २ ॥

निधनादिविवर्जितकृतनतिकृत्कृतिविहितमनोरथपन्नगभृत् ! ।
नगभर्तृसुतार्पितवामवपुः ! स्ववपुःपरिपूरितसर्वजगत् ! ॥ ३ ॥

त्रिजगन्मयरूप ! सुदृग्दृगुदञ्चनकुञ्चनकृतहुतभुक् ! ।
भवभूतपते ! प्रमथैकपते ! पतितेष्वपि दत्तकरप्रसृते ! ॥ ४ ॥

प्रसृताखिलभूतलसंवरण ! प्रणवध्वनिसौधसुधांशुधर ! ।
धरराजकुमारिकयापरया परितः परितुष्ट ! नतोस्मि शिव ! ॥ ५ ॥

शिव ! देव ! गिरीश ! महेश ! विभो ! विभवप्रद ! गिरिश ! शिवेश ! मृड !
मृडयोडुपतिध्र ! जगत्त्रितयं ! कृतयन्त्रणभक्तिविघातकृताम् ॥ ६ ॥

नकृतान्ततत एष बिभेमि हर प्रहराशु महाघममोघमते ।
न मतान्तरमन्यदवैमि शिवं शिवपादनतेः प्रणतोऽस्मि ततः ॥७॥

विततेऽत्र जगत्यखिलेऽघहरं हरतो पणमेव परं गुणवत् ।
गुणहीनमहीनमहावलयं प्रलयान्तकमीश ! नतोस्मि ततः ॥ ८ ॥

इति स्तुत्वा महादेवं विररामाङ्गिरःसुतः ।
व्यतरच्च महेशानः स्तुत्या तुष्टो वरान्बहून् ॥ ९ ॥

श्रीमहादेव उवाच—

बृहता तपसानेन बृहतां पतिरेध्यहो ।
नाम्ना बृहस्पतिरिति ग्रहेष्वर्च्योऽभवद् द्विज ॥ १० ॥

अस्माल्लिङ्गार्चनान्नित्यं जीवभूतोऽसि मे यतः ।
अतो जीव इति ख्याति त्रिषु लोकेषु यास्यसि ॥ ११ ॥
वाचां प्रपञ्चैश्चतुरैर्निष्प्रपञ्चो यतः स्तुतः ।
अतो वाचां प्रपञ्चस्य पतिर्वाचस्पतिर्भव ॥ १२ ॥

अस्य स्तोत्रस्य पठनादपि वागुदियाच्च यम् ।
तस्य स्यात्संस्कृता वाणी त्रिभिर्वर्षैस्त्रिकालतः ॥ १३ ॥
समुत्पन्ने महाकार्ये न स बुद्ध्या प्रहीयते ।
यः पठिष्यत्यदः स्तोत्रं वायव्याख्यं दिने दिने ॥ १४ ॥

अस्य स्तोत्रस्य पठनान्नियतं मम सन्निधौ ।
न दुर्वृत्तौ प्रवृत्तिः स्यादविवेकवतां नृणाम् ॥ १५ ॥
अदः स्तोत्रं पठञ्जन्तुर्जातु पीडां ग्रहोद्भवाम् ।
न प्राप्स्यति ततो जप्यमिदं स्तोत्रं ममाग्रतः ॥ १६ ॥

नित्यं प्रातः समुत्थाय यः पठिष्यति मानवः ।
इमां स्तुतिं हरिष्येऽहं तस्य बाधाः सुदारुणाः ॥ १७ ॥
त्वत्प्रतिष्ठितलिङ्गस्य पूजां कृत्वा प्रयत्नतः ।
इमां स्तुतिमधीयानो मनोवाञ्छामवाप्स्यति ॥ १८ ॥

इति दत्त्वा वराञ्छम्भुः पुनर्ब्रह्माणमाह्वयत् ।
सेन्द्रान्देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगकिन्नरान् ॥ १९ ॥

तानागतान् समालोक्य शिवो ब्रह्माणमब्रवीत् ।
विधे विधेहि मद्वाक्यादमुं वाचस्पतिं मुनिम् ॥ २० ॥
गुरुं सर्वसुरेन्द्राणां परितः स्वगुणैर्गुरुम् ।
अभिषिञ्च विधानेन देवाचार्यपदे मुदे ॥ २१ ॥

अतीव धिषणाधीशा मम प्रीतो भविष्यति ।
महाप्रसाद इत्याज्ञां शिरस्याधाय तत्क्षणात् ॥ २२ ॥
सुरज्येष्ठः सुराचार्यं चकाराङ्गिरसं तदा ।
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २३ ॥

गुरुपूजां व्यधुः सर्वे गीर्वाणा मुदिताननाः ।
अभिषिक्तो वशिष्ठाद्यैर्मन्त्रपूतेन वारिणा ॥ २४ ॥

पुनरन्यं वरं प्रादाद् गिरीशः पतयो गिराम् ।
शृण्वाङ्गिरस धर्मात्मन् देवेज्यकुलनन्दन ॥ २५ ॥

भवता स्थापितं लिङ्गं सुबुद्धिपरिवर्धनम् ।
बृहस्पतीश्वर इति ख्यातं काश्यां भविष्यति ॥ २६ ॥

गुरुपुष्यसमायोगे लिङ्गमेतत्समर्च्य च ।
यत्करिष्यन्ति मनुजास्तत्सिद्धिमधियास्यति ॥ २७ ॥

बृहस्पतीश्वरं लिङ्गं मया गोप्यं कलौ युगे ।
अस्य संदर्शनादेव प्रतिभा प्रतिलभ्यते ॥ २८ ॥

चन्द्रेश्वराद्दक्षिणतो वीरेशान्नैऋते स्थितम् ।
आराध्य धिषणेशं वै गुरुलोके महीयते ॥ २९ ॥

गुर्वङ्गनागमनजं पापं षण्माससेवनात् ।
अवश्यं विलयं याति तमः सूर्योदयाद्यथा ॥ ३० ॥

अत एव हि गोप्तव्यं महापातकनाशनम् ।
बृहस्पतीश्वरं लिङ्गं नाख्येयं यस्य कस्यचित् ॥ ३१ ॥

इति दत्वा वरान्देवस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।
द्रुहिणो गुरुणा सार्द्धं सेन्द्रोपेन्द्रो बृहस्पतिम् ॥ ३२ ॥

अस्मिन्पुरेऽभिषिच्याथ विसृज्येन्द्रादिकान्सुरान् ।
अलंचकार स्वं लोकं विष्णुनाऽनुमतो द्विज ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गतकाशीखण्डोक्ताङ्गिरसकृता
॥ शिवस्तुतिः समाप्ता ॥

४४. शिवापराधक्षमापनस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

आदौ कर्मप्रसङ्गात् कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां
विण्मूत्रामेध्यमध्ये कथयति नितरां जाठरो जातवेदाः ।
यद्यद्वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥१॥

बाल्ये दुःखातिरेकान्मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति ।
नानारोगादिदुःखाद्रुदनपरवशः शङ्करं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥२॥

प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभिर्मर्मसन्धौ
दष्टो नष्टोऽविवेकः सुतधनयुवतिस्वादसौख्ये निषण्णः ।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥३॥

वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विगतगतिमतिश्चाधिदैवादितापैः
पापै रोगैर्वियोगैस्त्वनवसितवपुः प्रौढिहीनं च दीनम् ।
मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥४॥

नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपद्गहनप्रत्यवायाकुलाख्यं
श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गे सुसारे ।
ज्ञातो धर्मो विचारैः श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥५॥

स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गाङ्गतोयं
पूजार्थं वा कदाचिद्बहुतरगहनात्खण्डबिल्वीदलानि ।

नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पैस्त्वदर्थं
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥६॥

दुग्धैर्मध्वाज्ययुक्तैर्दधिसितसहितैः स्नापितं नैव लिङ्गं
नोलिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं न प्रसूनैः ।
धूपैः कर्पूरदीपैर्विविधरसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥७॥

ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो
हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नार्पितं बीजमन्त्रैः ।
नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रतजपनियमैः रुद्रजाप्यैर्न वेदैः
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥८॥

स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत्कुण्डले सूक्ष्ममार्गे
शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे ज्योतिरूपेऽपराख्ये ।
लिङ्गज्ञे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥९॥

नग्नो निःसंगशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो
नासाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित् ।
उन्मन्याऽवस्थया त्वां विगतकलिमलं शङ्करं न स्मरामि
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥१०॥

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥ ११ ॥

किं वाऽनेन धनेन वाजिकरिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
किं वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभिर्देहेन गेहेन किम् ।
ज्ञात्वैतत्क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः
स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम् ॥ १२ ॥

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः ।
लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं
तस्मान्मां शरणागतं शरणद! त्वं रक्ष रक्षाधुना ॥ १३ ॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवापराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

४५. शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

शिवो महेश्वरः शम्भुः पिनाकी शशिशेखरः ।
वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः ॥ १ ॥

शङ्करः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः ।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठो भक्तवत्सलः ॥ २ ॥

भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकंठः शिवाप्रियः ।
उग्रः कपाली कामारिरंधकासुरसूदनः ॥ ३ ॥

गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः ।
भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः ॥ ४ ॥

कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरांतकः ।
वृषाङ्की वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ ५ ॥

सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः ।
सर्वज्ञः परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचनः ॥ ६ ॥

हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः ।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः ॥ ७ ॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः ।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः ॥ ८ ॥
कृत्तिवासाः पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिपः ।
मृत्युञ्जयः सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरुः ॥ ९ ॥
व्योमकेशो महासेनजनकश्चारुविक्रमः ।
रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः ॥ १० ॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः ।
शाश्वतः खण्डपरशू रजःपाशविमोचनः ॥ ११ ॥
मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययो हरिः ।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः ॥ १२ ॥
भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः ॥ १३ ॥

इति श्रीशिवाष्टोत्तरशतनामावलिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

४६. द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम् ।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥
श्रीशैलश‍ृङ्गे विबुधातिसङ्गे तुलाद्रितुङ्गेऽपि मुदा वसन्तम् ।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं नमामि संसारसमुद्रसेतुम् ॥ २ ॥
अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम् ।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं वन्दे महाकालमहासुरेशम् ॥ ३ ॥
कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे समागमे सज्जनतारणाय ।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्तमोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे ॥ ४ ॥

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने सदा वसन्तं गिरिजासमेतम् ।
सुरासुराराधितपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि ॥ ५ ॥
याम्ये सदङ्गे नगरेऽतिरम्ये विभूषिताङ्गं विविधैश्च भोगैः ।
सद्भुक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥
महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्तं सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः ।
सुरासुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः केदारमीशं शिवमेकमीडे ॥ ७ ॥

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं गोदावरीतीरपवित्रदेशे ।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ॥ ८ ॥
सुताम्रपर्णीजलराशियोगे निबध्य सेतुं विशिखैरसङ्ख्यैः ।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं रामेश्वराख्यं नियतं नमामि ॥ ९ ॥

यं डाकिनीशाकिनिकासमाजैर्निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च ।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं तं शङ्करं भक्तहितं नमामि ॥ १० ॥
सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये॥ ११ ॥

इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम् ।
वन्दे महोदारतरस्वभावं घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये ॥ १२ ॥
ज्योतिर्मयद्वादशलिङ्गकानां शिवात्मनां प्रोक्तमिदं क्रमेण ।
स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या फलं तदालोक्य निजं भजेच्च ॥१३ ॥

॥ इति श्रीद्वादशज्योतिलिङ्गस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

४७. अथ रुद्रताण्डवम्

श्रीगणेशाय नमः

विलोलबाहुवल्लरी नखक्षतेन्दुमण्डल-
स्रवत्सुधाम्बुजीवितस्रगट्टहासपेशलम्-
झणज्झणज्झणज्झणज्झणज्झणज्झण-
ज्झणज्झणेति ताण्डवं मुदे ममास्तु शाम्भवम् ॥ १ ॥

विदग्धभावकिन्नरी सुरेशसद्मसुन्दरी
नदन्मृदङ्गझल्लरी सुशङ्खगोमुखादिभिः ।
धईयतत्ततद्धईं यतत्ततद्धईधई-
धईति चण्डताण्डवं मुदे ममास्तु शाम्भवम् ॥ २ ॥

अमन्दमोदमानमानसोग्रसिद्धिसाधक-
स्फुरन्मृदङ्गवल्लकीपिशाचताललालितम् ।
डिमिं डिमिं डिमिं डिमिं डिमिं डिमिं डिमिं डिमिं
डिमिं डिमीति ताण्डवं मुदे ममास्तु शाम्भवम् ॥३॥

प्रमत्तभूतडाकिनी पिशाच यक्षशाकिनी-
गणो यदट्टगर्जिते जपत्यभीतिहेतवे ।
विभो गिरीश रक्ष रक्ष रक्ष रक्ष रक्ष मा-
मिति प्रचण्डताण्डवं मुदे ममास्तु शाम्भवम् ॥ ४ ॥

भ्राजिष्णुविष्णुपद्मयोनिमुख्यदेवतास्फुर-
त्स्फुरत्सुवाद्यविभ्रमोल्लसत्सहेति सद्भुजम् ।
पिशाचभूतरक्षसां ठठं ठठं ठठं ठठं
ठठं ठठेति ताण्डवं मुदे ममास्तु शाम्भवम् ॥ ५ ॥

क्वचित्सुशङ्खवादितं क्वचिन्मृदङ्गनादितं
क्वचित्सुदुन्दुभिस्वनं क्वचित्सुवंशनिःस्वम् ।
क्वचिच्च घोरभोरकं भभं भभं भमं भभं,
भभं भभेति ताण्डवं मुदे ममास्तु शाम्भवम् ॥ ६ ॥

स्फुरत्सुकालकूटकं लसत्कदर्पजूटकं
भुजङ्गभोगमण्डनं मनोजमानखण्डनम् ।
यदष्टमूर्तिरूपकं ततं ततं ततं ततं
ततं ततेति ताण्डवं मुदे ममास्तु शाम्भवम् ॥ ७ ॥

यदीयनामजल्पने विभाति रामसत्पदं
ततोऽपि नन्दनिर्मितं स्वरद्वितीयवर्मितम् ।
इदं हि रुद्रताण्डवं मुदामुनैव जल्पितं
पठन्ति ये लभन्ति ते वरं परं महेशितुः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीत्रिपाठिरामानन्दशर्मविनिर्मितं रुद्रताण्डव समाप्तम् ॥

४८. मृत्युञ्जयकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

भैरव उवाच

शृणुष्व परमेशानि कवचं मन्मुखोदितम् ।
महामृत्युञ्जयस्यास्य न देयं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥
यं धृत्वा यं पठित्वा च यं श्रुत्वा कवचोत्तमम् ।
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सुखितोऽस्मि महेश्वरि ॥ २ ॥
तदेव वर्णयिष्मामि तव प्रीत्या वरानने ।
तथापि परमं तत्त्वं न दातव्य दुरात्मने ॥ ३ ॥
ॐअस्य श्रीमहामृत्युञ्जयकवचस्य श्री भैरव ऋषिः ।
गायत्रीछन्दः । श्रीमहामृत्युञ्जयो देवता ।
ॐ बीजम् । जं शक्तिः । सः कीलकम् ।
हौं इति तत्त्वम् । चतुर्वर्गफलसाधने पाठे विनियोगः ॥
ॐ चन्द्रमण्डलमध्यस्थे रुद्रमाले विचित्रिते ।
तत्रस्थं चिन्तयेत्साध्यं मृत्युं प्राप्तोऽपि जीवति ॥ ४ ॥
ॐ जूं सः हौं शिरः पातु देवो मृत्युञ्जयो मम ।
श्री शिवो वै ललाटं च ॐ हौं भ्रुवौ सदाशिवः ॥ ५ ॥
नीलकण्ठोऽवतान्नेत्रे कपर्दी मेऽवताच्छ्रुती ।
त्रिलोचनोऽवताद्गण्डौ नासां मे त्रिपुरान्तकः ॥ ६ ॥

मुखं पीयूषघटभृदोष्ठौ मे कृत्तिकाम्बरः।
हनुं मे हाटकेशानो मुखं बटुकभैरवः ॥ ७ ॥

कन्धरां कालमथनो गलं गणप्रियोऽवतु।
स्कन्धौ स्कन्दपिता पातु हस्तौ मे गिरिशोऽवतु ॥ ८ ॥

नखान्मे गिरिजानाथः पायादङ्गुलिसंयुतान्।
स्तनौ तारापतिः पातु वक्षः पशुपतिर्मम ॥ ९ ॥

कुक्षिं कुबेरवदनः पार्श्वौ मे मारशासनः।
सर्वः पातु तथा नाभिः शूली पृष्ठं ममावतु ॥ १० ॥

शिश्नं मे शङ्करः पातु गुह्यं गुह्यकवल्लभः।
कटिं कालान्तकः पायादूरू मेऽघन्धकतकः ॥ ११ ॥

जागरूकोऽवताज्जानू जङ्घे मे कालभैरवः।
गुल्फौ पायाज्जटाधारी पादौ मृत्युञ्जयोऽवतु ॥ १२ ॥

पादादिमूर्द्धपर्यन्तं सद्योजातो ममावतु।
रक्षाहीनं नामहीनं वपुः पात्वमृतेश्वरः ॥ १३ ॥

पूर्वे बलविकरणो दक्षिणे कालशासनः।
पश्चिमे पार्वतीनाथ उत्तरे मां मनोन्मनः ॥ १४ ॥

ऐशान्यमीश्वरः पादादाग्नेय्यामग्निलोचनः।
नैऋत्यां शम्भुरव्यान्मां वायव्यां वायुवाहनः ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वं बलप्रमथनः पाताले परमेश्वरः।
दशदिक्षु सदा पातु महामृत्युञ्जयश्च माम् ॥ १६ ॥

रणे राजकुले द्यूते विषमे प्राणसंशये।
पायादों जूं महारुद्रो देवदेवो दशाक्षरः ॥ १७ ॥

प्रभाते पातु मां ब्रह्मा मध्याह्ने भैरवोऽवतु।
सायं सर्वेश्वरः पातु निशायां नित्यचेतनः ॥ १८ ॥

अर्धरात्रे महादेवो निशान्ते मां महोदयः।
सर्वदा सर्वतः पातु ॐ जूं सः हौं मृत्युञ्जयः ॥ १९ ॥

इतीदं कवचं पुण्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
सर्वमन्त्रमयं गुह्यं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥ २० ॥
पुण्यं पुण्यप्रदं दिव्यं देवदेवादिदैवतम् ।
य इदं च पठेन्मन्त्रं कवचं वाचयेत्ततः ॥ २१ ॥
तस्य हस्ते महादेवि त्र्यम्बकस्याष्टसिद्धयः ।
रणे धृत्वा चरेद्युद्धं हत्वा शत्रुञ्जयं लभेत् ॥ २२ ॥
जपं कृत्वा गृहे देवि सम्प्राप्स्यति सुखं पुनः ।
महाभये महारोगे महामारीभये तथा ॥ २३ ॥
दुर्भिक्षे शत्रुसंहारे पठेत्कवचमादरात् ।

॥ इति श्रीमहामृत्युञ्जयकवचं सम्पूर्णम् ॥

४९. मृतसञ्जीवनकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

एवमाराध्य गौरीशं देवं मृत्युञ्जयेश्वरम् ।
मृतसञ्जीवनं नाम्ना कवच प्रजपेत्सदा ॥ १ ॥
सारात्सारतरं पुण्यं गुह्याद्गुह्यतरं शुभम् ।
महादेवस्य कवचं मृतसञ्जीवनाभिधम् ॥ २ ॥
समाहितमना भूत्वा शृणुष्व कवचं शुभम् ।
श्रुत्वैतद्दिव्यकवचं रहस्यं कुरु सर्वदा ॥ ३ ॥
वराभयकरो यज्वा सर्वदेवनिषेवितः ।
मृत्युञ्जयो महादेवः प्राच्यां मां पातु सर्वदा ॥ ४ ॥
दधानः शक्तिमभयां त्रिमुखः षड्भुजः प्रभुः ।
सदाशिवोऽग्निरूपी मामाग्नेय्यां पातु सर्वदा ॥ ५ ॥
अष्टादशभुजोपेता दण्डाभयकरो विभुः ।
यमरूपी महादेवो दक्षिणस्यां सदाऽवतु ॥ ६ ॥

खड्गाभयकरो धीरो रक्षोगणनिषेवितः ।
रक्षोरूपी महेशो मां नैर्ऋत्यां सर्वदाऽवतु ॥ ७ ॥

पाशाभयभुजः सर्वरत्नाकरनिषेवितः ।
वरुणात्मा महादेवः पश्चिमे मां सदाऽवतु ॥ ८ ॥
गदाभयकरः प्राणनायकः सर्वदागतिः ।
वायव्यां मारुतात्मा मां शङ्करः पातु सर्वदा ॥ ९ ॥

शङ्खाभयकरस्थो मां नायकः परमेश्वरः ।
सर्वात्मान्तरदिग्भागे पातु मां शङ्करः प्रभुः ॥ १० ॥
शूलाभयकरः सर्वविद्यानामधिनायकः ।
ईशानात्मा तथैशान्यां पातु मां परमेश्वरः ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वभागे ब्रह्मरूपी विश्वात्माऽधः सदाऽवतु ।
शिरो मे शङ्करः पातु ललाटं चन्द्रशेखरः ॥ १२ ॥

भ्रूमध्यं सर्वलोकेशस्त्रिनेत्रो लोचनेऽवतु ।
भ्रूयुग्मं गिरिशः पातु कर्णौ पातु महेश्वरः ॥ १३ ॥
नासिकां मे महादेव ओष्ठौ पातु वृषध्वजः ।
जिह्वां मे दक्षिणामूर्तिर्दन्तान्मे गिरिशोऽवतु ॥ १४ ॥

मृत्युञ्जयो मुखं पातु कण्ठं मे नागभूषणः ।
पिनाकी मत्करौ पातु त्रिशूली हृदयं मम ॥ १५ ॥

पञ्चवक्त्रः स्तनौ पातु उदरं जगदीश्वरः ।
नाभिं पातु विरूपाक्षः पार्श्वौ मे पार्वतीपतिः ॥ १६ ॥

कटिद्वयं गिरीशो मे पृष्ठं मे प्रमथाधिपः ।
गुह्यं महेश्वरः पातु ममोरू पातु भैरवः ॥ १७ ॥
जानुनी मे जगद्धर्ता जङ्घे मे जगदीश्वरः ।

पादौ मे सततं पातु लोकवन्द्यः सदाशिवः ॥ १८ ॥
गिरीशः पातु मे भार्यां भवः पातु सुतान्मम ।
मृत्युञ्जयो ममायुष्यं चित्तं मे गणनायकः ॥ १९ ॥



सर्वाङ्गं मे सदा पातु कालकालः सदाशिवः ।
एतत्ते कवचं पुण्यं देवतानां च दुर्लभम् ॥ २० ॥
मृतसञ्जीवनं नाम्ना महादेवेन कीर्तितम् ।
सहस्रावर्तनं चास्य पुरश्चरणमीरितम् ॥ २१ ॥
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेत्सुसमाहितः ।
स कालमृत्युं निर्जित्य सदायुष्यं समश्नुते ॥ २२ ॥
हस्तेन वा यदा स्पृष्ट्वा मृतं सञ्जीवयत्यसौ ।
आधयो व्याधयस्तस्य न भवन्ति कदाचन ॥ २३ ॥
कालमृत्युमपि प्राप्तमसौ जयति सर्वदा ।
अणिमादिगुणैश्वर्यं लभते मानवोत्तमः । २४ ॥
युद्धारम्भे पठित्वेदमष्टाविंशतिवारकम् ।
युद्धमध्ये स्थितः शत्रुः सद्यः सर्वैर्न दृश्यते ॥ २५ ॥
न ब्रह्मादीनि चास्त्राणि क्षयं कुर्वन्ति तस्य वै ।
विजयं लभते देवयुद्धमध्येऽपि सर्वदा ॥ २६ ॥
प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्कवचं शुभम् ।
अक्षय्यं लभते सौख्यमिह लोके परत्र च ॥ २७ ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।
अजरामरणो भूत्वा सदा षोडशवार्षिकः ॥ २८ ॥
विचरत्यखिलाँल्लोकान्प्राप्य भोगांश्च दुर्लभान् ।
तस्मादिदं महागोप्यं कवचं समुदाहृतम् ॥ २९ ॥
मृतसञ्जीवनं नाम्ना दैवतैरपि दुर्लभम् ॥ ३० ॥

इति श्रीवसिष्ठप्रणीतं मृतसञ्जीवनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

५०. अनादिकल्पेश्वरस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

कर्पूरगौरो भुजगेन्द्रहारो गङ्गाधरो लोकहितावहः सः ।
सर्वेश्वरो देववरोऽप्यघोरो योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥ १ ॥

कैलासवासी गिरिजाविलासी श्मशानवासी सुमनोनिवासी ।
काशीनिवासी विजयप्रकाशी योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥ २ ॥

त्रिशूलधारी भवदुःखहारी कन्दर्पवैरी रजनीशधारी ।
कपर्दधारी भजकानुसारी योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥ ३ ॥

लोकाधिनाथः प्रमथाधिनाथः कैवल्यनाथः श्रुतिशास्त्रनाथः ।
विद्यार्थनाथः पुरुषार्थनाथो योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥ ४ ॥

लिङ्गं परिच्छेत्तुमधोगतस्य नारायणश्चोपरि लोकनाथः ।
बभूवतुस्तावपि नो समर्थौ योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥ ५ ॥

यं रावणस्ताण्डवकौशलेन गीतेन चातोषयदस्य सोऽत्र ।
कृपाकटाक्षेण समृद्धिमाप योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥ ६ ॥

सकृच्च बाणोऽवनमय्य शीर्षं यस्याग्रतः सोऽप्यलभत्समृद्धिम् ।
देवेन्द्रसम्पत्त्यधिकां गरिष्ठां योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥ ७ ॥

गुणान्विमातुं न समर्थ एष वेषश्च जीवोऽपि विकुण्ठितोऽस्य ।
श्रुतिश्च नूनं चकितं बभाषे योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥ ८ ॥

अनादिकल्पेश उमेश एतत् स्तवाष्टकं यः पठति त्रिकालम् ।
स धौतपापोऽखिललोकवन्द्यं शैवं पदं यास्यति भक्तिमांश्चेत् ॥९ ॥

॥ इति श्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीकृतं अनादिकल्पेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥



देवीस्तोत्राणि

५१. देवी प्रातःस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां
सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम् ।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां
रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥
प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्ड-
शुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलां
चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ॥
प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं
धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम् ।
संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां
मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः ॥

॥ इति देवी प्रातःस्मरणम् समाप्तम् ॥

५६. श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीदुर्गायै नमः

ईश्वर उवाच—

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती ॥ १ ॥
ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी ।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥ २ ॥

पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः ।
मनो बुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥ ३ ॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी ।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याभव्या सदागतिः ॥ ४ ॥
शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा ।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनि ॥ ५ ॥
अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती ।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥ ६ ॥
अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी ।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥ ७ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥ ८ ॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा ।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥ ९ ॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी ।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥ १० ॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी ।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥ ११ ॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी ।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः ॥ १२ ॥
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा ।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥ १३ ॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी ।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥ १४ ॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी ।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥ १५ ॥

य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम् ।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति ॥ १६ ॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च ।
चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥ १७ ॥
कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम् ॥ १८ ॥
तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि सर्वैः सुरवरैरपि ।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥
गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण ।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत् सदा धारयते पुरारिः ॥२०॥
भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते ।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् संपदां पदम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीविश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम् ॥

५२. अथ देवीकवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बा-प्रीत्यर्थे (पाठे) विनियोगः ।

श्रीगणेशाय नमः । ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच—

यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच—

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥ २ ॥

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥ ३ ॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥ ४ ॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥ ५ ॥
अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्त्ताः शरणं गताः ॥ ६ ॥
न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसङ्कटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ॥ ७ ॥
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्नसंशयः ॥ ८ ॥
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ॥ ९ ॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ॥ १० ॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ॥ ११ ॥
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥ १२ ॥
दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥ १३ ॥
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥ १४ ॥
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥ १५ ॥

नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनी ॥ १६ ॥

त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनी ।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ॥ १७ ॥

दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी ।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ॥ १८ ॥
उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ॥ १९ ॥

एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ॥ २० ॥
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥ २१ ॥
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥ २२ ॥

शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ॥ २३ ॥
नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ॥ २४ ॥

दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥ २५ ॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला ।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ॥ २६ ॥

नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी ।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च ।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥ २८ ॥

स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनःशोकविनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥ २९ ॥

नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी ॥ ३० ॥

कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनो विन्ध्यवासिनी ।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥

गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी ।
पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ॥ ३२ ॥

नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ॥ ३३ ॥
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ॥ ३४ ॥
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ॥ ३५ ॥
शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ॥ ३६ ॥

प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना ॥ ३७ ॥
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ॥ ३८ ॥
आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी ।
यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी ॥ ३९ ॥
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ॥ ४० ॥

पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा ।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता ॥ ४१ ॥

रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥ ४२ ॥

पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥ ४३ ॥

तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ॥ ४४ ॥

निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ॥ ४५ ॥

इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥ ४६ ॥

दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥ ४७ ॥

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ॥ ४८ ॥

अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥ ४९ ॥

सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥ ५० ॥

ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः ॥ ५१ ॥

नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ॥ ५२ ॥

यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ॥ ५३ ॥

यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ॥ ५४ ॥

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥ ५५ ॥
लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ ५६ ॥

॥ इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम् ॥

५३. अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन पाठे विनियोगः॥

श्रीगणेशाय नमः ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि ।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

मधुकैटभविद्रावि विधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ३ ॥

महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ४ ॥

रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ५ ॥

शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ६ ॥

वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ७ ॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ८ ॥

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ९ ॥

स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १० ॥

चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ ११ ॥

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १२ ॥

विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १३ ॥

विधेहि देवि कल्याणं विदेहि परमां श्रियम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १४ ॥

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १५ ॥

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १६ ॥

प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १७ ॥

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १८ ॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ १९ ॥

हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २० ॥
इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २१ ॥
देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २२ ॥
देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २३ ॥
पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥ २४ ॥
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥ २५ ॥

॥ इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

५४. कीलकस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

श्रीगणेशाय नमः । ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच—

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥ १ ॥
सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥
सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥ ३ ॥

न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ ४ ॥

समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥ ५ ॥

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः ।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥ ६ ॥

सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशयः ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥ ७ ॥

ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ ८ ॥

यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् ।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥ ९ ॥

न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते ।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १० ॥

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत ह्यकुर्वाणो विनश्यति ।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥ ११ ॥

सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने ।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥ १२ ॥

शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः ।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥ १३ ॥

ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः ।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥ १४ ॥

॥ इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

५५. अथ पौराणिक रात्रिसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः ॐ नमश्चण्डिकायै ।

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच—

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारस्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥ २ ॥
अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥ ३ ॥

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥ ४ ॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥ ५ ॥

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महेश्वरी ॥ ६ ॥
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥ ७ ॥

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥ ८ ॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ॥ ९ ॥

सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परा पराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ १० ॥
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥ ११ ॥

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ १२ ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्भवेत् ॥ १३ ॥
सा त्वमित्थंप्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥ १४ ॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ १५ ॥

॥ इति पुराणोक्तं रात्रिसूक्तं सम्पूर्णम् ॥

५६. शक्रादिकृता देवीस्तुतिः

श्रीगणेशाय नमः

ऋषिरुवाच—

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥ १ ॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ २ ॥

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ३ ॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ ४॥

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ५ ॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ६ ॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ ७ ॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ ८ ॥

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ॥ ९ ॥

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।

श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ १० ॥

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ १२ ॥

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १३ ॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ १४ ॥

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ १५ ॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥ १६ ॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥ १७ ॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥ १८ ॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ १९ ॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २० ॥

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ २१ ॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥ २२ ॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ २३ ॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ २४ ॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ २५ ॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ २६ ॥

ऋषिरुवाच—

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥ २७ ॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ २८ ॥

देव्युवाच—

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥ २९ ॥

देवा ऊचुः—

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥ ३० ॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ ३१ ॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ ३२ ॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥ ३३ ॥

ऋषिरुवाच—

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥ ३४ ॥

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ३५ ॥

पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत्।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ३६ ॥

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ह्रींॐ॥३७॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे शक्रादिस्तुतिः ॥

५७. मार्कण्डेयपुराणान्तर्गततन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः नमश्चण्डिकायै

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ १ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ २ ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ३ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ ४ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ ५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७ ॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ९ ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १० ॥

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ११ ॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १२ ॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १४ ॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १७ ॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १८ ॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २० ॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २१॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २२॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २३॥

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २४॥

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २५॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २६॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥ २७॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २८॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।

करोतु सा नः शुभहेतुश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः॥ २९॥

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।

या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः॥ ३०॥

॥ इति मारकण्डेय पुराणान्तर्गततन्त्रोक्तम् देवीसूक्तम् ॥

५८. मारकण्डेयपुराणान्तंगतनारायणीस्तुतिः

श्रीगणेशाय नमः ॐ नमश्चण्डिकायै ।

ऋषिरुवाच—

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्
विकासिवक्त्राब्जविकासिताशाः ॥ १ ॥

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ २ ॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥ ३ ॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ ४ ॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ६ ॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥

सर्वमङ्गलम(मा)ङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १३ ॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १७ ॥

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २० ॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २१ ॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।
महारात्रि महाविद्ये (–माये) नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २२ ॥

मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥ २६ ॥
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥ २७ ॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥ २८ ॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वमाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥२९ ॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्ति कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥ ३० ॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥ ३१ ॥
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वं ॥ ३२ ॥
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३३॥

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते
नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ ३४ ॥

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥ ३५ ॥

देव्युवाच—

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥ ३७ ॥

देवा ऊचुः—

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

देव्युवाच—

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥ ४१ ॥

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ॥ ४२ ॥

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ ४३ ॥

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४४ ॥

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ ४५ ॥

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा ॥ ४६ ॥

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ॥ ४७ ॥

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ ४८ ॥

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च बधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ ४९ ॥

दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥ ५० ॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥ ५१ ॥

भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ ५२ ॥
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥ ५३ ॥

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ॥ ५४ ॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीमारकण्डेयपुराणान्तर्गतदेव्याः स्तुतिः ॥

५६. श्रीपराम्बामानस-पूजा

श्रीगणेशाय नमः

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां
नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके ।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो
मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात् ॥ १ ॥

देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
चञ्चत्काञ्चनसञ्चयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम् ।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं
गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके ॥ ॥

पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणी श्रीसुन्दरि प्रायशो
गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम् ।

तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि त्वन्नुदे ॥३॥

सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनसकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम् ।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ॥ ४ ॥

गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासन्तानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम् ।
मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं
चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्नुदम् ॥ ५ ॥

स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका
मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये ।
हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम् ॥ ६ ॥

ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम् ।
राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीप्रदे ॥ ७ ॥

अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे ।
गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमै-
र्विनिर्मितमघच्छिदं रतिकराम्बुजस्थायिनम् ॥ ८ ॥

कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम् ।
देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजै-
रम्भः शाम्भवि सम्भ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके ॥ ९ ॥

कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालती-
मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमैः रक्ताश्वमारादिभिः ।
पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्त्रोतसा
ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये ॥ १० ॥

मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजःकर्पूरशैलेयजै-
र्माध्वीकैः सह कुङ्कुमैः सुरचितैः सर्पिभिरामिश्रितैः ।
सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये
धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥ ११ ॥

घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो
महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः ।
सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वित-
स्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे ॥ १२ ॥

जाती सौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं
युक्तं हिङ्गुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः ।
पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसम्मिश्रितं
नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे ॥ १३ ॥

लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं
सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम् ।
सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम् ॥ १४ ॥

शरत्प्रभवचन्द्रमःस्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं
गलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम् ।
गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं
महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत् ॥ १५ ॥

मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदाऽऽन्दोलितं
शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम्

सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः
स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः ॥१६॥
स्वर्गाङ्गणे वेणुमृदङ्गशङ्खभेरीनिनादैरुपगीयमाना ।
कोलाहलैराकलिता तवास्तु विद्याधरीनृत्यकला सुखाय ॥ १७ ॥
देवि भक्तिरसभावितवृत्ते प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते ।
तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम् ॥ १८ ॥
एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः ।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात् ॥ १९ ॥

॥ इति पराम्बामानस-पूजा समाप्ता ॥

६०. द्वात्रिंशद्दुर्गानाममालास्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीदुर्गायै नमः

दुर्गा दुर्गार्त्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी ।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥ १ ॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा ।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला ॥ २ ॥
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी ।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥ ३ ॥
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी ।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥ ४ ॥
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी ।
दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥ ५ ॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी ।
नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः ॥ ६ ॥
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः ।

॥ इति द्वात्रिंशद्दुर्गानाममालास्तोत्रम् ॥

६१. देवीशतकम्

श्रीगणेशाय नमः

अनन्तमहिमव्याप्तविश्वां वेधा न वेद याम् ।
या च मातेव भजते प्रणते मानवे दयाम् ॥ १ ॥
नतापनीतक्लेशायाः सुरारिजनतापनी ।
न तापनी तनुर्यस्यास्तुल्या नादीनतापनी ॥ २ ॥
वक्त्रपद्मा विधेर्भान्ति यया सर्गलयो दया ।
या साक्षाद्या च जनितस्थितिसर्गलयोदया ॥ ३ ॥
याश्रिता पावनतया यातनाच्छिदनीचया ।
याचनीया धिया मायायामायासं स्तुता श्रिया ॥ ४ ॥
तमांसिध्वंसमायान्ति यस्याः स्तुत्यादरेण वः ।
तस्याः सिद्ध्यै धियां मातुः कल्पतां पादरेणवः ॥ ५ ॥
ऋषीणां सादयाबास या तमांसि त्रयीमयी ।
पायाद्वः सा दयामाधिच्छिदं जगति बिभ्रती ॥ ६ ॥
स्मरद्विषा या ययाचे यया चेयं विधेः क्रिया ।
यां चाच्युतोऽपि तुष्टाव तुष्टा वः साऽस्तु पार्वती ॥ ७ ॥
या दमावनयागेन स्वाराधा नयसारया ।
हरिकैतवहास्याय सायामा विजिता यया ॥ ८ ॥
यायताजिविमाया सा यस्या हा बत कैरिह ।
या रसायनधारा स्वा न गेयानवमा दया ॥ ९ ॥
सा बुद्धिरुत्तमालोकः सतामर्या पुनातु वः ।
यद्भक्तेरुत्तमा लोकः प्राप्नोत्येव विशुद्धताम् ॥ १० ॥
अयुद्ध साधुत्राणाय सामरा या सहारिणा ।
खड्गेन दीप्रा देवांनां सामरायासहारिणा ॥ ११ ॥
चरणाघातनिहतकासरा च रणाजिरे ।
रराज या नयजयैरराजसजनानता ॥ १२ ॥

सावताद्वोऽम्बिकाऽभ्यर्च्यमाना न न यशोभितः ।
तनोति प्रणतो यस्या ना माननयशोभितः ॥ १३ ॥

संयतं याचमानेन यस्याः प्रापि द्विषा वधः ।
संयतं या च मानेन युनक्ति प्रणतं जनम् ॥ १४ ॥

या दमानवमानन्द दमाननमानदा ।
दानमानक्षमानित्यधनमानवमानिता ॥ १५ ॥

सा रक्षतादपारा ते रसकृद्गौरवाधिका ।
सारक्षतादपारातेरसकृद्गौरवाधिका ॥ १६ ॥

अनुत्तमोहराशायो भवन्ति यामिनाश्रिताः ।
अनुत्तमो हराशया यया चिरं च रञ्जितः ॥ १७ ॥

अनन्तरागतापायास्तारयित्री भवापदः ।
अनन्तरागतापायाः सा वो गौरी ह्रियात्क्रियाः ॥ १८ ॥

यामयासजिदासक्तशोकजालस्य पातिनी ।
या माता सर्वदा भक्तलोकजालस्य पालनी ॥ १९ ॥

सामरागमनायासं त्यक्त्वा सार्वं सुरारिभिः ।
सामरा गमनायासन्नुद्यता युधि यद्गणाः ॥ २० ॥

सामोदयाजया शातैः शस्त्रैः शत्रौ हते यया ।
सामोदया जयाशा तैर्गीर्वाणैर्गर्वतो जहे ॥ २१ ॥

ययायायाय्यया यूयं यो योऽयं येययैय याम् ।
ययुयायिययेयाय ययेऽयायाय यायतुक् ॥ २२ ॥

साऽव्याद्गौरी सदा युष्मान्सदायुष्मान्समृध्यति ।
शरणं यां नरो गच्छन्न रोगच्छन्दमेति च ॥ २३ ॥

कृतास्पदा यया सम्पदघानि सुरवैरिषु ।
हन्ति या वाङ्मयी दूरादघानि सुरवैरिषु ॥ २४ ॥

जितानया या नताजितारसाततसारता ।
न सावना नावसानयातनारिरिना तया ॥ २५ ॥

मनोभवारातिमनोभिरामया जरामयापाकरणैकदक्षया ।
मदक्षयान्निर्मलतां ददानया सदा नयास्था क्रियतां तवार्यया ॥ २६ ॥

समाययाविन्द्रहिताय या रणे समयया या न जितारिसेनया ।
स मा ययाचे हरमाश्रितः स्फुटं समा यया मुग्धतया मनोज्ञता ॥ २७ ॥

सा भावक्षालवर्या नुतविभवितनुर्या वलक्षावभासा ।
जानानस्याशयप्रा नवनलिनवनप्रायशस्याननाजा
सातं वर्माननस्था रहसि रसिहरस्थाननर्मावतंसा
पायादक्ता रणत्रा मतनमनतमत्राणरक्ता दयापा ॥ २८ ॥

उपासते क्लृप्तिकृतोदयां यां जना सदाराधनमीहमानाः ।
शम्भोः प्रसिद्धा तनुतां वहन्ती गौरी हितं सा भवतां विधेयात् ॥ २९ ॥
यां सद्य एव त्रिदशैः पुमान्सः समा नमस्यन्ति सदा नभोगाः ।
अघानि यस्याः प्रणता विपक्षैः समानमस्यन्ति सदानभोगाः ॥ ३० ॥

यस्याः प्रभावो द्युसदां विपक्षसेना वधानन्दयिताहरस्य ।
मनोम्बुजस्यावहतु श्रियं वः सेनावधानं दयिता हरस्य ॥ ३१ ॥
सुरा जिता भावितदेवराजद्विपक्षमा यात् रणादभीतम् ।
स्वापं न वो धाम हितं न नाम सदैवसेना भवतोहितानाम् ॥ ३२ ॥

सुराजिता भावितदेवराजद्विपक्षमाया तरणादभीतम् ।
स्वापन्नबोधामहितं ननाम सदैव ऽना भवतो हितानाम् ॥ ३३ ॥
सुरानिति द्वेषिजनैरभिद्गुतानुदाहरद्या स्वयमाहवोद्यता ।
शिवोऽद्य तापप्रशमस्तया तव प्रशूस्तया तत्त्वदृशा विधीयताम्॥ ३४ ॥

वक्रं बिभ्रत्युपहितचन्द्रायास या सम्मोहप्रशमनसूर्याकारा ।
करानीतामरमरिमाचिक्षेप क्षेपत्यक्ता रणभुवि सा वः पायात् ॥ ३५ ॥
हितेहितेऽस्तु ते स्तुते जिताजितामितामिता ।
जया जया जनोऽजनो यथा यथाबलं बलम् ॥ ३६ ॥

सक्ति वः सुकृतार्जने विदधती सत्रा यतां त्रायतां
दुर्गादुग्रं हृदूषितोद्धतधियामायासदा या सदा ।

साघूत्साहविधानसक्तमनसां मुख्या ततां ख्याततां
संस्मृत्येव (सदैव ?) मत्सरभरस्फीतापदां तापदाम् ॥ ३७ ॥

या मूर्ति किमपि स्मरारिवपुषा धत्ते समायोजितां
यां दृष्ट्वैव विनाशमाप सहसा शुम्भः समायोऽजिताम् ।
या नम्रैः सुरसिद्धकिन्नरनरैः खेदं विना शस्यते
सा हेतुर्भवतां त्रिलोचनवधूरश्रीविनाशस्य ते ॥ ३८ ॥

सायासायास्त्रिलोक्याः शरणमकरुणक्षुण्णदैत्यप्रवीरा
स्वैरं स्वैरंशसर्गैर्गहनतममहामोहहार्दं हरन्ती ।
शस्याशस्यादधाना सकलमभिहितं भक्तिभाजः स्मृतैव
स्तादस्तादभ्रदोषा द्विषदुपशमनी सर्वतः पार्वती वः ॥ ३९ ॥

सुरसुरचितचितनवनवभवभवनानादरादरायेये ।
लयलयचरणौ चरणौ न न मामि नतेन नमामि न ते ॥ ४० ॥

या विस्मयं स्मरभिदा चक्रेऽङ्कारोपिता नवं नारीणाम् ।
विदधे यच्चापस्य न च क्रेंकारोऽपि तानवं नारीणाम् ॥ ४१ ॥

या हन्तां च प्रयाता विहायसा कंसमाह तारातिबलेन ।
कृष्णस्तव परमाया विहाय साकं समाहतारातिबलेन ॥ ४२ ॥

तां नमत या च समरेष्वनेकशो भाति भद्रकाली नतया ।
ख्याति यया जनतोज्ज्वलविवेकशोभातिभद्रकालीनतया ॥ ४३ ॥

तां स्मरत या स्मृतैव हि मानवतामरसमानता राति; बलात् ।
यत्प्रणतं श्रीः श्रयते मानवतामरसमानताराति बलात् ॥ ४४ ॥

अनवरागसमुद्भवदेहतामुपगता ददृशे गिरिशेन या ।
अनवरागसमुद्भवदेह तामवनतोऽस्मि जगत्प्रियतां सतीम् ॥ ४५ ॥

मेने नूनमतेन माननमुमानाम्ना नु मेनोम्मना
नुन्नेनोनमने निमानममुना नो नाम नानानुमे ।
मौनेनाममममाननिम्नमननान्नानामिनानूनिमे-
मुन्मिन्ना ननमा नमी मुनिमनोमानाननोन्नामिनि ॥ ४६ ॥

तां वन्देऽहं नवं देहं ज्ञानरूपं विधाय या।
सुधीरस्यति धीरस्य महामोहमयीं त्वचम् ॥ ४७ ॥
यां नुत्वा यान्ति हृद्यार्थंसज्जायां गिरि शस्यताम्।
नौम्यहं भक्तिमास्थाय सज्जायां गिरिशस्य ताम् ॥ ४८ ॥

यदानतोऽयदानतो न यात्ययं नयात्ययम्।
शिवे हितां शिवेहितां स्मरामितां स्मरामि ताम् ॥ ४९ ॥

सर स्वतिप्रसादं मे स्थितिं चित्तसरस्वति।
सरस्वति कुरु क्षेत्रकुरुक्षेत्रसरस्वति ॥ ५० ॥
त्वद्भक्तिभावितधियो जगतामत्र ये त्रये।
जन्मवत्तामहं मन्ये तेषामेवानृणां नृणाम् ॥ ५१ ॥

जगतः सातिरेका त्वं गतिरस्य स्थिराधिका।
तरस्यत्रासतारारेः सास्यत्रासरसस्थिति ॥ ५२ ॥

त्वन्नामस्मरणादेव न लक्ष्मीश्चपलायते।
सर्वतः पार्वति क्षिप्रमलक्ष्मीश्च पलायते ॥ ५३ ॥
जयन्ति भक्ता वित्तेशसमरायस्तवाहवे।
तुभ्यं नमस्त्रिलोक्यर्थंसमरायस्तवाहवे ॥ ५४ ॥

सत्त्वं सम्यक्त्वमुन्मील्य हृदि भासि विराजसे।
द्विषामरीणां त्वं सेनां वाहिनीमुदकम्पयः ॥ ५५ ॥

दूरागतरसा धन्यः सेवते यस्तव स्तुतीः।
दूरागत रसाधन्यः कल्पन्ते तस्य सिद्धयः ॥ ५६ ॥

मोहं हत्वास्पदं यासि सात्त्वमम्बरबासिना।
या न संस्तूयसे केन सा त्वम्बरवासिना ॥ ५७ ॥

प्रकाश्य गृह्यपुंसस्यखेदच्छेदाम्बुदावली।
प्रज्ञात्मनेनविमला स्थिता दृश्यसि विद्वताम् ॥ ५८ ॥
भवानि ये निरन्तरं तव प्रणामलालसाः।
मनस्तमोमलालसा भवन्ति नैव तु कच्चित् ॥ ५९ ॥

विभावनाकुला त्वयि क्रमेण देवि भावना।
वपुष्पतिस्थिरेतरे नितान्तमेव पुष्यति ॥ ६० ॥
महोऽदयानामवधीरणेन महोदयानामवधीरणेन।
महोदयानामव धीरणेनमहोदयानामवधीरणेन ॥ ६१ ॥

न मज्जनेन तीर्थानां तदिह प्राप्यते शुभम्।
नमज्जनेन तीर्थानां सेवया यत्तवाम्बिके ॥ ६२ ॥
प्रयाति मोहे निःसारभारतीव्रतमेत्ययम्।
त्वत्प्रसादाज्जनः सारभारतीव्रतमेत्ययम् ॥ ६३ ॥

शास्त्रप्रभावहसिताः सतां या निर्मला गिरः।
शास्त्रप्रभावहसितास्त्वमम्ब तिमिरच्छिदः ॥ ६४ ॥
शमीह ते समानतो विभावितोऽत्रसन्न यः।
विभावितोऽत्र सन्नयः शमीहते स मानतः ॥ ६५ ॥

मातरं त्वा पदं सद्य आश्रितास्ते कथं जनाः।
मा तरन्त्वापदं सद्य आद्यं श्रेयः समाश्रिताः ॥ ६६ ॥
भाति त्वत्तनुसंश्लेषे सत्यम्ब वपुरनुत्तरम्।
संसाराब्धौ सदाहुस्ते सत्यं वपुरनुत्तरम् ॥ ६७ ॥

यच्छ मे नित्यसंसङ्गि यच्छमे तदिदं मनः।
स्वच्छलो भक्तियोगस्ते स्वच्छलोकविवेकसूः ॥ ६८ ॥

के वलन्ते वितन्वन्तक्रतस्त्वत्प्रगता भवे।
केवलं ते वितन्वन्त आसते विमलां धियम् ॥ ६९ ॥

देवि निर्दग्धकामस्य त्वं निरावरणात्मनः।
हरस्यशुभसन्तानं तेनासौ भ्राजते तथा ॥ ७० ॥

द्विषद्भिया सपदि विमुच्यते
यतस्तवानतो जननि जयाशया न कः।
स्तवानतो जननिजया शयानकः
करोति ते युधि मधुसूदनस्वसः ॥ ७१ ॥

ज्यायोनिष्ठारिवर्याधिनियमनवरस्वैरदत्तायताज्ञा
स्वाराधत्वासमध्यानियजनजननि ज्ञेयसुस्थावभासा ।
नानापुण्यागमस्था जननमनमयज्ञानन्द्या वरा र्घा-
र्याता नव्या विभुत्वं नुतसरलमनस्तामसस्यावहारये ॥ ७२ ॥

स्येहाव स्या समस्तानमलरसतनु त्वं भुवि व्यानतार्या
धीरा वन्द्या न न ज्ञा यमनमननजस्थामगण्था पुनाना ।
सा भावस्था सुयज्ञेऽनिनजनजयनि घ्यामसत्त्वाधरास्वा
ज्ञातायत्तादरस्वैरवनमर्निधिर्या वरिष्ठानियोज्या ॥ ७३ ॥

अलोलकमले चित्तललामकमलालये ।
पाहि चण्डि महामोहभङ्गभीमबलामले ॥ ७४ ॥

दुर्गापि मातः सुलभासि भक्त्या भावानुकूलापि भवं क्षिणोषि ।
अध्येयतां यासि सदैव देवि ध्येयासि चित्रं चरितं तवैतत् ॥ ७५ ॥

महदेसुरसंधम्मे तमवसमासङ्गमागमाहरणे ।
हरबहुसरण तं चित्तमोहमवसर उमे सहसा ॥ ७६ ॥

वन्द्या प्रभातसन्ध्येव सूर्यालोकप्रवर्तिनी ।
निवर्तयसि देवि त्वं महामोहमयीं निशाम् ॥ ७७ ॥
संवादिसारसम्पत्तीसदागोरिजयेसुदे ।
तवसत्तीरदे सन्तु संसारे सुसमानदे ॥ ७८ ॥

आगमर्मणसुदमहिमसमसम्मदक्कदपरजस्सु ।
किर सविभयवदितो समय उज्जलभावसहस्सु ॥ ७९ ॥
त्वं वादे शास्त्रसाङ्गन्यां भासि वाचि दिवौकसः ।
तवादेशास्त्रसंस्काराज्जयन्ति वरदे द्विषः ॥ ८० ॥
सदाव्याजवशिध्याताः सदात्तजपशिक्षिताः ।
ददास्यजस्त्रं शिवताः सूदात्ताजदिशि स्थिताः ॥ ८१ ॥
हरेः स्वसारं देवि त्वा जनताश्रित्य तत्त्वतः ।
वेत्ति स्वसारं देवित्वा योगेन क्षपिताशुभा ॥ ८२ ॥

सदाप्नोति यतिर्ज्योतिस्ताद्दशं त्वत्प्रभावतः ।
प्रभावतः समो येन कल्पते मोहनुत्तितः ॥ ८३ ॥

त्वं सद्गतिः सितापारा परा विद्योत्तितीर्षतः ।
संसारादत्र चाम्ब त्वं सत्त्वं पासि विपत्तितः ॥ ८४ ॥

परमा या तपोवृत्तिरार्यायास्तां स्मृतिं जनाः ।
परमायात पोषाय धियां शरणमादृताः ॥ ८५ ॥

प्रवादिमतभेदेषु दृश्यस्ते महिमाश्रयः ।
भान्ति त्वग्निशिखस्येव शिखानामसमाश्रयः ॥ ८६ ॥

यच्चेष्टश्चा तव स्फीतमुदारवसु धामतः ।
यच्चेतो यात्यवहितमुदा रवसुधामतः ॥ ८७ ॥

सुरदेशस्य ते कीर्ति मण्डनत्वं नयन्ति यैः ।
वरदे शस्यते धीरैर्भवती भुवि देवता ॥ ८८ ॥

तत्त्वं वीतावतततुत्तत्त्वं ततवन्ती ततः ।
वित्तं वित्तव वित्तत्वं वीतावीतवतां बत ॥ ८९ ॥

तारे शरणमुद्यन्ती सुरेशरणमुद्यमैः ।
त्वं दोषापासिनोदग्रस्वदोषा पासि नोदने ॥ ९० ॥

सुमातरक्षयालोक रक्षयात्तमहामनाः ।
त्वं धैर्यजननी पासि जननीतिगुणस्थितीः ॥ ९१ ॥

ख्यातिकल्पनदक्षैका त्वं सामर्थ्यजुषामितः ।
सदा सरक्षसांमुख्यदानवानामसुस्थितिः ॥ ९२ ॥

सिता संसत्सु सत्तास्ते स्तुतेस्ते सततं सतः ।
ततास्तितेति तस्तेति सूतिः सूतिस्त तोऽसि सा ॥ ९३ ॥

त्वदाज्ञया जगत्सर्वं भासितं मलनुद्यतः ।
सदा त्वया सगन्धर्वं समिद्धमरिनुत्तितः ॥ ९४ ॥

यतो याति ततोऽत्येति यया तां तायतां यतैः।
मातामितोत्तमतमा तमोतीतां मतिं मम ॥ ९५ ॥

महत्तां त्वं श्रिता दासजनं मोहच्छिदा वस।
यच्छुद्धत्वं गतः पापमन्यस्य प्रसभं जय ॥ ९६ ॥

त्वं साज्ञासु जगन्मातः स्पष्टं ज्ञाता सुवर्त्मसु।
प्रज्ञा मुख्या समुद्भासि तत्पृथुत्वं प्रदर्शय ॥ ९७ ॥

अज्ञासु जगन्मातः स्पष्टं ज्ञाता सुवर्त्मस प्रज्ञा।
भासि त्वं सा मुख्या समुत्पृथुत्वं प्रदर्शय तत् ॥ ९८ ॥

हृत्यो रुषः क्षमा एता सदक्षोभास्तमुन्नतः।
सतेहितः सेवते ताः सततं यः स ते हितः ॥ ९९ ॥

करोषि तास्त्वमुत्खातमोहस्थाने स्थिरा मतीः।
पदं यतिः सुतपसा लभतेऽतः सुशुविलम ॥ १०० ॥

देव्या स्वप्नोद्गमादिष्टदेवीशतकसंज्ञया।
देशितानुपमामाधादतो नोणसुतो नुतिम् ॥ १०१ ॥

हार्दध्वान्तनियन्तृभास्वरवपुः स्वर्वासिनां सर्वतो
दुर्वारारिपरिक्षयं विदधती ध्यातैव निर्वाणसूः।
देहार्धे निहिता भवेन भुवनत्राणैकतानात्मना
देवित्वं त्वमिवापरा जगति का सत्केसरीन्द्रस्थितिः ॥ १०२ ॥

क्लेशोन्माथकरी सतां भवहरानन्दैकहेतो गुरु-
र्मतात्वं जगतां भवन्ति विभवाः सर्वे तवानुग्रहात्।
दुर्गे न क्वचिदेव सीदति जनस्त्वद्भक्तिपूताशयः
स्तुत्या भर्तुरभिन्नयेति विबुधैस्त्वं स्तूयसे श्रीरिव ॥ १०३ ॥

येनानन्दकथायां त्रिदशानन्दे च ललिता वाणी।
तेन सुदुष्करमेतत्स्तोत्रं देव्याः कृतं भक्त्या ॥ १०४ ॥

॥ इति श्रीमदानन्दवर्धनाचार्यविरचितं देवीशतकं सम्पूर्णम् ॥

६२. संकष्टनाशनं संकटाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः परामबायै सकटायै नमः

नारद उवाच—

जैगीषव्य मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञ सुखदायक।
आख्यातानि सुपुण्यानि श्रुतानि त्वत्प्रसादतः॥ १॥

न तृप्तिमधिगच्छामि तव वागमृतेन च।
वदस्वैकं महाभाग संकटाख्यानमुत्तमम्॥ २॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा जैगीषव्योऽब्रवीत्ततः।
संकष्टनाशनं स्तोत्रं शृणु देवर्षिसत्तम॥ ३॥

द्वापरे तु पुरा वृत्ते भ्रष्टराज्यो युधिष्ठिरः।
भ्रातृभिः सहितो राज्यनिर्वेदं परमं गतः॥ ४॥

तदानीं तु ततः काशीं पुरीं यातो महामुनिः।
मार्कण्डेय इति ख्यातः सह शिष्यैर्महायशाः॥ ५॥

तं दृष्टवा स समुत्थाय प्रणिपत्य सुपूजितः।
किमर्थं म्लानवदन एतत्त्वं मां निवेदय॥ ६॥

युधिष्ठिर उवाच—

संकष्टं मे महत्प्राप्तमेतादृग्वदनं ततः।
एतन्निवारणोपायं किंचिद्ब्रूहि मुने मम॥ ७॥

मार्कण्डेय उवाच—

आनन्दकानने देवी संकटा नाम विश्रुता।
वीरेश्वरोत्तरे भागे पूर्वं चन्द्रेश्वरस्य च॥ ८॥

शृणु नामाष्टकं तस्याः सर्वसिद्धिकरं नृणाम्।
संकटा प्रथमं नाम द्वितीयं विजया तथा॥ ९॥

तृतीयं कामदा प्रोक्तं चतुर्थं दुःखहारिणी।
शर्वाणी पञ्चमं नाम षष्ठं कात्यायनी तथा॥ १०॥

सप्तमं भीमनयना सर्वरोगहराऽष्टमम् ।
नामाष्टकमिदं पुण्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥ ११ ॥
यः पठेत्पाठयेद्वापि नरो मुच्येत संकटात् ।
इत्युक्त्वा तु द्विजश्रेष्ठमृषिर्वाराणसीं ययौ ॥ १२ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदो हर्षनिर्भरः ।
ततः सम्पूजितां देवीं वीरेश्वरसमन्विताम् ॥ १३ ॥
भुजैस्तु दशभिर्युक्तां लोचनत्रयभूषिताम् ।
मालाकमण्डलुयुतां पद्मशङ्खगदायुताम् ॥ १४ ॥
त्रिशूलडमरुधरां खड्गचर्मविभूषिताम् ।
वरदाभयहस्तां तां प्रणम्य विधिनन्दनः ॥ १५ ॥
वारत्रयं गृहीत्वा तु ततो विष्णुपरं ययौ ।
एतत्स्तोत्रस्य पठनं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥ १६ ॥
संकष्टनाशनं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत् ॥ १७ ॥
॥ इति श्रीपद्मपुराणे संकष्टनाशनं संकटाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

६३. अथ श्रीविन्ध्यवासिनीकल्पद्रुमस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः नमश्चण्डिकायै

सच्चिद्रूपां हि केचित्प्रकृतिमथ परे चापरेऽणुस्वरूपां
प्राहुः कर्मेति केचित्क्वचिदपि च जगुर्नेति नेति स्वरूपाम् ।
यत्तत्त्वं योगिनोऽपि स्वयमिह न विदुस्तत्त्वमस्यादिवाक्यै-
स्तां वन्दे मोहकाशां त्रिभुवनजननीं विन्ध्यशैलेन्द्रवासाम् ॥ १ ॥
यस्याः कारुण्यपूर्णां दिनकरकिरणोत्फुल्लकह्लारदीर्घां
दृष्टिं सम्प्रार्थयन्ते सकलसुरगणा ब्रह्मविष्णुप्रधानाः

सैयं सर्वासुरेन्द्रप्रकरविदलनोद्दामगर्वादिखर्वा
सर्वाभीष्टप्रदात्री त्रिभुवनजननी विन्ध्यवासा शिवा स्तात् ॥ २ ॥

सिंहस्फालोग्रलीला नियमितहृदया निर्दया वैरिवर्गे
घण्टाचापासिशूलाद्यखिलभुजलसद्धेतिभिर्भासमाना ।
गर्ज्जज्जीमूतजालोद्भटविकटमहोदग्रचण्डाट्टहासा
नीलाम्बोदप्रकाशा प्रभवतु सततं शर्मणे विन्ध्यवासा ॥ ३ ॥

अष्टाभिर्दोर्भिरष्टायुधनिवहवहा सिंहपृष्ठे निषण्णा
सोल्लासैस्त्रासयन्ती रिपुगणमचिरात् काममट्टाट्टहासैः ।
नानालङ्कारपूर्णा मणिमयविलसत्कुण्डलोल्लासिकर्णा
नीलाम्भोदालिवर्णा प्रभवतु सततं शर्मणे काऽप्यपर्णा ॥ ४ ॥

यद्दोर्दण्डासिधारा गलदसुरवपुर्व्यूहरक्तप्रवाहै-
रभ्यक्ताङ्गी भुजङ्गी भ्रममिह सततं सर्वतः सन्तनोति ।
सत्कारुण्यावलोकैर्नयनविलसितैः कल्पितानेकसर्गा
शूलप्रोतारिवर्गा प्रभवतु सततं शर्मणे काऽपि दुर्गा ॥ ५ ॥

मातः श्रीविन्ध्यवासिन्यभिमतजलदश्यामलाङ्गस्त्वदङ्ग-
ध्यानासङ्गादनङ्गप्रतिनिधिरुदितः कामिनीनां मुकुन्दः ।
देवोऽसौ वामदेवस्त्रिजगति विदितः कालजित्को विधाता
तत्त्वां गूढात्मतत्त्वां त्रिनयनमहिलां शुद्धतत्त्वां नमामि ॥ ६ ॥

ब्रह्मा दस्थावरान्तं जगदिदमखिलं मोहपाशैस्त्वमेत-
न्मातः श्रीविन्ध्यवासिन्यभिमतफलदे कीलयन्ती विभासि ।
दुर्गे दुर्ज्ञेयरूपा त्वमिह यदबलाऽपि स्वयं विष्णुमूर्ते—
र्नेत्रद्वन्द्वेऽपि निद्रां वितरति सरसां त्वां ततो नौमि निद्राम् ॥ ७ ॥

देवीं त्वां देवदेवीं सकलदिविषदैः पूज्यपादारविन्दां
हित्वा ये त्वन्यदेवप्रकरमिह शिवे भावयन्तो भजन्ति ।
तेऽमी सर्वे पशुत्वं जननि जडधियः प्राप्य भूयोऽपि भूय—
स्त्वद्यागोद्यत्सपर्यास्वपि च कतिपये मोक्षचर्यां चरन्ति ॥ ८ ॥

अब्दे पक्षाब्धिशैलक्षितिभि-(१७४२) रनुपमे श्रावणे मासि रम्ये
पक्षे श्रीमद्वलक्षे शशिनि खलु तिथौ चापि चाद्येऽनवद्ये ।
रामानन्दैः प्रमोदान् "मधुकर"-तनयैः कामनाकल्पशाखी-
त्याख्यामाख्याय विन्ध्यक्षितिधरवसतेः स्तोत्रमेतद् व्यधायि ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमत्सरयूपारीणपण्डितधुरीणमहाकुलीनत्रिपाठिमधुकरशर्मात्मज-त्रिपाठि-रामानन्दशर्माविरचितं विन्ध्यवासिनीकल्पद्रुमस्तोत्रं समाप्तम् ॥

६४. अथ देवीस्तवराजः

श्रीगणेशाय नमः　　　　नमश्चण्डिकायै

हरिपृष्ठनिषण्णे हिमगिरिकन्ये जलधरवर्णे दत्तवरे
विविधायुधधारिणि दानवदारिणि भवभयहारिणि बुद्धिपरे ।
महिषासुरमर्द्दिनि सुघटकपर्द्दिनि सुखवर्द्धिनि वर्द्धय सुचिरं
खण्डितरिपुवर्गे विरचितसर्गे जय जय दुर्गे देवि चिरम् ॥ १ ॥

नवजलधरकल्पे विगतविकल्पे कृतसङ्कल्पे कल्पलते
तुहिनाचलनन्दिनि भवभयभञ्जिनि जनरञ्जिनि जगदीशनते ।
कामितफलसिद्धे परमविशुद्धे सुकृतसमृद्धे तव शरणं
दानवकुलनाशिनि गिरिशविलासिनि विन्ध्यनिवासिनि पाहिजनम् ॥२॥

धृतकरकरवाले हिमकरभाले हिमगिरिबाले वलयकरे
सिंहासनयाने जलदसमाने सुकृतनिदाने दुरितहरे ।
दानवकुलखण्डिनि त्रिभुवनमण्डिनि तव पदपङ्कजशरणगतं
विन्ध्याचलवासिनि गिरिशविलासिनि भयनाशिनि मामव सततम् ॥३॥

जगतामसि माता हरिहरधाता ज्ञाता नो परमप्रकृतेः
तव नयनविजृम्भणजनितविजृम्भणभुवनविजृम्भणकृतविकृतेः ।
वियदादिरनादिर्वियदि वसादिर्विषदादिव्यवहारपरे
दुर्गे श्रुतिगीते परमपुनीते पाहि वराभयजुष्टकरे ॥४॥

गुणजनितविकारे गुणगणपारे त्रिभुवनसारे सुकृतवशे
विदधिष्ठितसत्त्वे चेतनसत्त्वे चित्सत्त्वेन चिदेकरसे ।
पञ्चाननपृष्ठे सपदि निविष्टे त्रिदशवरिष्ठानतचरणे
दर्पितदुर्गा-सुरहृतबलदुर्गे कुरु दुर्गे दुर्गतिहरणम् ॥५॥

जगदादिकुमारी त्रिपुरविदारी वरनारीजनदत्तवरा
निष्कलपदबद्धा परमविशुद्धा सुमतिविशुद्धा बुद्धिपरा ।
विविधायुधहस्ता जलधरशस्ता शमितस्ता सस्मितवदना
प्रभवतु शुभकर्त्री किल्विषहर्त्री विन्ध्यमहीधरकृतसदना ॥६॥

अत्यरुणदुकूलावृतकटिमूला करधृतशूला हतमहिषा
अट्टाट्टविहासा जलदविकाशा दनुजविनाशानलविशिखा ।
केशर्य्युपरिष्टाद्भृशमुपविष्टा रणधृष्टा सुरकुलविकटा
पायादरिवर्गा क्षपितविसर्गा रणदुर्गा हतसमरभटा ॥७॥

जलदद्युतिविमला वरकरकमला विकसितकमलाननकमला
विधुखण्डविमण्डितपटुविधिपण्डितवरघटितालिकचन्द्रकला ।
भुजपरिघविलम्बितकनकमयाङ्गदघटितमणिप्रकरैर्वलिता
कलयतु मम भद्रं किमपि समिद्धं हरतु दरिद्रं हरवनिता ॥८॥

मणिपीठविचित्रे परमपवित्रे कनकविचित्रे मणिभवने
कृतनियतनिवासे जलधरकाशे कल्पद्रुमनिकरोपवने ।
सुरपतिमुखसुरवरसनकसनन्दनमुनिगणसेवितपदकमले
विन्ध्याचलवासिनि दनुजविनाशिनि जय जय मातर्भुवनतले ॥९॥

प्रणवस्त्वं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि वह्निवधूरसि मखनिखरे
तव जननि सुमन्त्रं जपति पवित्रं वितर विचित्रं किमपि परे ।
मधुकरसुतरामानन्दनिबद्धं तवगुणनद्धं हरकमले
पठतस्तवराजं कुरु कविराजं सम्राजं कुरु वशममले ॥१०॥

॥ इति श्रीत्रिपाठिरामानन्दशर्मविरचितो देवीस्तवराजः समाप्तः ॥

६५. श्रीकनक-- (लक्ष्मी--) धारास्तवः

श्रीगणेशाय नमः श्रीलक्ष्म्यै नमः

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम् ।
अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला मङ्गल्यदाऽस्तु मम मङ्गलदेवतायाः॥१॥

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि ।
माला दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या सा मे श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः॥२॥

आमीलितार्धमधिगम्य मुदा मुकुन्दमानन्दमन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम् ।
आकेकरस्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ॥३॥

बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या हारावली च हरिनीलमयी विभाति ।
कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥४॥

कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारेर्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव ।
मातुः समस्तजगतां महनीयमक्षि भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः ॥५॥

प्राप्तं पदं प्रथमतः खलु यत्प्रभावान्माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन ।
मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्धं मन्दानलाक्षि मकराकरकन्यकायाः ॥६॥

विश्वामरेन्द्रपदविभ्रमदानदक्षमानन्दहेतुरधिकं मधुविद्विषोऽपि
ईषन्निषीदतु । मयि क्षणमीक्षणार्धमिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ॥७॥

इष्टा विशिष्टमतयोऽपि नरा यया द्रागदृष्टास्त्रिविष्टपसदश्च पदं भजन्ते ।
दृष्टिः प्रहृष्टकमलोदरदीप्तिरिष्टां पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः ॥ ८ ॥

दद्याद्दयानुपवनो प्रविणाबुधारामस्मिन्नकिञ्चनविहङ्गशिशौ निषण्णे ।
दुष्कर्मधर्ममपनीय चिराय दूरान्नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः ॥ ९ ॥

धीर्देवतेति गरुडध्वजभामिनीति शाकम्भरीति शशिशेखरवल्लभेति ।
सृष्टिस्थितिप्रलयसिद्धिषु संस्थितायै तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै ॥१०॥

श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्मफलप्रसूत्यै रत्यै नमोऽस्तु रमणीयगुणाश्रयायै ।
शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तमवल्लभायै ॥११॥

नमोऽस्तु नालीकविभाननायै नमोऽस्तु दुग्धोदधिजन्मभूत्यै ।
नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै नमोऽस्तु नारायणवल्लभायै ॥ १२ ॥

नमोऽस्तु हेमाम्बुजपीठिकायै नमोऽस्तु भूमण्डलनायिकायै ।
नमोऽस्तु देवादिदयापरायै नमोऽस्तु शार्ङ्गायुधवल्लभायै ॥ १३ ॥

नमोऽस्तु देव्यै भृगुनन्दनायै नमोऽस्तु विष्णोरुरसि स्थितायै ।
नमोऽस्तु लक्ष्म्यै कमलालयायै नमोऽस्तु दामोदरवल्लभायै ॥ १४ ॥

नमोऽस्तु कान्त्यै कमलेक्षणायै नमोऽस्तु भूत्यै भुवनप्रसूत्यै ।
नमोऽस्तु देवादिभिरर्चितायै नमोऽस्तु नन्दात्मजवल्लभायै ॥ १५ ॥

स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम् ।
गुणाधिका गुरुधनभाग्यभागिनो भवन्ति ते भवमनु भाविताशयः ॥१६॥

॥ इति श्रीमद्भगवत्पादशङ्कराचार्यकृतः कनक-(लक्ष्मी-)
धारास्तवः सम्पूर्णः ॥

६६. देवकृतलक्ष्मीस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीलक्ष्म्यै नमः

क्षमस्व भगवत्यन्त्र क्षमाशीले परात्परे ।
शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिवर्जिते ॥ १ ॥
उपमे सर्वसाध्वीनां देवीनां देवपूजिते ।
त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यं च निष्फलम् ॥ २ ॥
सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी ।
रासेश्वर्यधिदेवी त्वं तत्कलाः सर्वयोषितः ॥ ३ ॥
कैलासे पार्वती त्वं च क्षीरोदे सिन्धुकन्यका ।
स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले ॥ ४ ॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती ।
गंगा च तुलसी त्वं च सावित्री ब्रह्मलोकतः ॥ ५ ॥

कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम् ।
रासे रासेश्वरी त्वं च वृन्दावनवने वने ॥ ६ ॥

कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने ।
विरजा चम्पकवने शतशृङ्गे च सुन्दरी ॥ ७ ॥

पद्मावती पद्मवने मालती मालतीवने ।
कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने ॥ ८ ॥

कदम्बमाला त्वं देवी कदम्बकाननेऽपि च ।
राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीगृहे गृहे ॥ ९ ॥

इत्युक्त्वा देवताः सर्वा मुनयो मनवस्तथा ।
रुरुदुर्नम्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥ १० ॥

इति लक्ष्मीस्तवं पुण्यं सर्वदेवैः कृतं शुभम् ।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय स वै सर्वं लभेद्ध्रुवम् ॥ ११ ॥

अभार्यो लभते भार्यां विनीतां सुसुतां सतीम् ।
सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिसुप्रियवादिनीम् ॥ १२ ॥

पुत्रपौत्रवतीं शुद्धां कुलजां कोमलां वराम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीविनम् ॥ १३ ॥

परमैश्वर्ययुक्तं च विद्यावन्तं यशस्विनम् ।
भ्रष्टराज्यो लभेद्राज्यं भ्रष्टश्रीर्लभते श्रियम् ॥ १४ ॥

हतबन्धुर्लभेद्बन्धुं धनभ्रष्टो धनं लभेत् ।
कीर्तिहीनो लभेत्कीर्तिं प्रतिष्ठां च लभेद्ध्रुवम् ॥ १५ ॥

सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोकसन्तापनाशनम् ।
हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्ममोक्षसुहृत्प्रदम् ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीदेवकृतं लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

६७. त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः त्रिपुरसुन्दर्यै नमः

कदम्बवनचारिणीं मुनिकदम्बकादम्बिनीं
नितम्बजितभूधरां सुरनितम्बिनीसेविताम् ।
नवाम्बुरुहलोचनामभिनवाम्बुदश्यामलां
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥ १ ॥

कदम्बवनवासिनीं कनकवल्लकीधारिणीं
महार्हमणिहारिणीं मुखसमुल्लसद्वारुणीम् ।
दयाविभवकारिणीं विशदलोचनीं चारिणीं
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥ २ ॥

कदम्बवनशालया कुचभरोल्लसन्मालया
कुचोपमितशैलया गुरुकृपालसद्वेलया ।
मदारुणकपोलया मधुरगीतवाचालया
कयापि घननीलया कवचिता वयं लीलया ॥ ३ ॥

कदम्बवनमध्यगां कनकमण्डलोपस्थितां
षडम्बुरुहवासिनीं सततसिद्धसौदामिनीम् ।
विडम्बितजपारुचिं विकचचन्द्रचूडामणिं
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥ ४ ॥

कुचाञ्चितविपञ्चिकां कुटिलकुन्तलालङ्कृतां
कुशेशयनिवासिनीं कुटिलचित्तविद्वेषिणीम् ।
मदारुणविलोचनां मनसिजारिसम्मोहिनीं
मतङ्गमुनिकन्यकां मधुरभाषिणीमाश्रये ॥ ५ ॥

स्मरेत्प्रथमपुष्पिणीं रुधिरबिन्दुनीलाम्बरां
गृहीतमधुपात्रिकां मधुविघूर्णनेत्राञ्चलाम् ।
घनस्तनभरोन्नतां गलितचूलिकां श्यामलां
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥ ६ ॥

सकुङ्कुमविलेपनामलकचुम्बिकस्तूरिकां
समन्दहसितेक्षणां सशरचापपाशाङ्कुशाम् ।
अशेषजनमोहिनीमरुणमाल्यभूषाम्बरां
जपाकुसुमभासुरां जपविधौ स्मराम्यम्बिकाम् ॥ ७ ॥

पुरन्दरपुरन्ध्रिकाचिकुरबन्धसैरन्ध्रिकां
पितामहपतिव्रतां पटुपटीरचर्चारताम् ।
मुकुन्दरमणीं मणीलसदलंक्रियाकारिणीं
भजामि भुवनाम्बिकां सुरवधूटिकाचेटिकाम् ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

६८. मीनाक्षीस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीविद्ये शिववामभागनिलये श्रीराजराजार्चिते
श्रीनाथादिगुरुस्वरूपविभवे चिन्तामणीपीठिके ।
श्रीवाणीगिरिजानुताङ्घ्रिकमले श्रीशाम्भवि श्रीशिवे
मध्याह्ने मलयध्वजाधिपसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥ १ ॥

चक्रस्थेऽचपले चराचरजगन्नाथे जगत्पूजिते
आर्तालीवरदे नताभयकरे वक्षोजभारान्विते ।
विद्ये वेदकलापमौलिविदिते विद्युल्लताविग्रहे
मातः पूर्णसुधारसार्द्रहृदये मां पाहि मीनाम्बिके ॥ २ ॥

कोटीराङ्गदरत्नकुण्डलधरे कोदण्डबाणाञ्चिते
कोकाकारकुचद्वयोपरिलसत्प्रालम्बहाराञ्चिते ।
शिञ्जन्नूपुरपादसारसमणीश्रीपादुकालङ्कृते
मद्दारिद्र्यभुजङ्गगारुडखगे मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ३ ॥

ब्रह्मेशाच्युतगीयमानचरिते प्रेतासनान्तःस्थिते
पाशोदङ्कुशचापबाणकलिते बालेन्दुचूडाञ्चिते ।
बाले बालकुरङ्गलोलनयने बालार्ककोट्युज्ज्वले
मुद्राराधितदैवते मुनिसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ४ ॥

गन्धर्वामरयक्षपन्नगसुते गङ्गाधरालिङ्गिते
गायत्रीगरुडासने कमलजे सुश्यामले सुस्थिते ।
खातीते खलदारुपावकशिखे खद्योतकोट्युज्ज्वले
मन्त्राराधितदैवते मुनिसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ५ ॥

नादे नारदतुम्बुराद्यविनुते नादान्तनादात्मिके
नित्ये नीललतात्मिके निरुपमे नीवारशूकोपमे ।
कान्ते कामकले कदम्बनिलये कामेश्वराङ्कस्थिते
मद्विद्ये मदभीष्टकल्पलतिके मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ६ ॥

वीणानादनिमीलितार्धनयने विस्रस्तचूलीभरे
ताम्बूलारुणपल्लवाधरयुते ताटङ्कहारान्विते ।
श्यामे चन्द्रकलावतंसकलिते कस्तूरिकाफालिके
पूर्णे पूर्णकलाभिरामवदने मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ७ ॥

शब्दब्रह्ममयी चराचरमयी ज्योतिर्मयी वाङ्मयी
नित्यानन्दमयी निरञ्जनमयी तत्त्वंमयी चिन्मयी ।
तत्त्वातीतमयी परात्परमयी मायामयी श्रीमयी
सर्वैश्वर्यमयी सदाशिवमयी मां पाहि मीनाम्बिके ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य
श्रीमच्छङ्करभगवतः कृतौ मीनाक्षीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

६९. सरस्वतीस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीसरस्वत्यै नमः

बृहस्पतिरुवाच—

सरस्वति नमस्यामि चेतनां हृदि संस्थिताम् ।
कण्ठस्थां पद्मयोनिं त्वां ह्रीङ्कारां सुप्रियां सदा ॥ १ ॥
मतिदां वरदां चैव सर्वकामफलप्रदाम् ।
केशवस्य प्रियां देवीं वीणाहस्तां वरप्रदाम् ॥ २ ॥
मन्त्रप्रियां सदा हृद्यां कुमतिध्वंसकारिणीम् ।
स्वप्रकाशां निरालम्बामज्ञानतिमिरापहाम् ॥ ३ ॥
मोक्षप्रियां शुभां नित्यां सुभगां शोभनप्रियाम् ।
पद्मोपविष्टां कुण्डलिनीं शुक्लवस्त्रां मनोहराम् ॥ ४ ॥
आदित्यमण्डले लीनां प्रणमामि जनप्रियाम् ।
ज्ञानाकारां जगद्दीपां भक्तविघ्नविनाशिनीम् ॥ ५ ॥
इति सत्यं स्तुता देवी वागीशेन महात्मना ।
आत्मानं दर्शयामास शरदिन्दुसमप्रभाम् ॥ ६ ॥

श्रीसरस्वत्युवाच—

वरं वृणीष्व भद्रं त्वं यत्ते मनसि वर्तते ।

बृहस्पतिरुवाच—

प्रसन्ना यदि मे देवि परं ज्ञानं प्रयच्छ मे ॥ ७ ॥

श्रीसरस्वत्युवाच—

दत्तं ते निर्मलं ज्ञानं कुमतिध्वंसकारकम् ।
स्तोत्रेणानेन मां भक्त्या ये स्तुवन्ति सदा नराः ॥ ८ ॥
लभन्ते परमं ज्ञानं मम तुल्यपराक्रमाः ।
कवित्वं मत्प्रसादेन प्राप्नुवन्ति मनोगतम् ॥ ९ ॥
त्रिसन्ध्यं प्रयतो भूत्वा यस्त्विमं पठते नरः ।
तस्य कण्ठे सदा वासं करिष्यामि न संशयः ॥ १० ॥

॥ इति श्रीरुद्रयामले श्रीबृहस्पतिविरचितं सरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

७०. लक्ष्मीस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीलक्ष्म्यै नमः

अगस्त्य उवाच—

पद्मे पद्मपलाशाक्षि जय त्वं श्रीपतिप्रिये ।
जगन्मातर्महालक्ष्मीः संसारार्णवतारिणि ॥ १ ॥
महालक्ष्मि नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं सुरेश्वरि ।
हरिप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं दयानिधे ॥ २ ॥
पद्मालये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं शिवप्रिये ।
सर्वभूतहितार्थाय वसुवृष्टिं सदा कुरु ॥ ३ ॥
जगन्मातर्नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं कृपावति ।
दयावति नमस्तुभ्यं विश्वेश्वरि नमो नमः ॥ ४ ॥
नमः क्षीराब्धितनये नमस्त्रैलोक्यधारिणि ।
शशिवक्त्रे नमस्तुभ्यं रक्ष मां शरणागतम् ॥ ५ ॥
रक्ष त्वं देवि देवेशि देवदेवेशवल्लभे ।
दारिद्र्यात्त्राहि मां लक्ष्मि कृपां कुरु ममोपरि ॥ ६ ॥
नमस्त्रैलोक्यजननि नमस्त्रैलोक्यपावनि ।
ब्रह्मादयो नमन्ति त्वां जगदानन्ददायिनि ॥ ७ ॥
विष्णुप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं जगद्धिते ।
आर्तिहन्त्रि नमस्तुभ्यं समृद्धिं कुरु मे रमे ॥ ८ ॥
पद्मवासे नमस्तुभ्यं चपलायै नमो नमः ।
चञ्चलायै नमस्तुभ्यं ललितायै नमो नमः ॥ ९ ॥
नमः प्रद्युम्नमातस्ते पाहि मां त्वां नमाम्यहम् ।
परिपालय मां मातः सर्वथा शरणागतम् ॥ १० ॥
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि कमले कमलानने ।
त्राहि त्राहि महालक्ष्मि परित्राणपरायणे ॥ ११ ॥

पाण्डित्यं शोभते नैव न शोभन्ते गुणा नरे।
शीलं चापि न शोभेत महालक्ष्मि त्वया विना ॥ १२ ॥
तावद्विराजते रूपं तावच्छीलं विराजते।
तावद्गुणा नराणां च यावल्लक्ष्मीः प्रसीदति ॥ १३ ॥

लक्ष्मि त्वयालंकृतमानवा ये पापैर्विमुक्ता नृपलोकमान्याः।
गुणैर्विहीना गुणिनो भवन्ति विशीलिनः शीलवतां वरिष्ठाः ॥ १४ ॥

लक्ष्मीर्भूषयते रूपं लक्ष्मीर्भूषयते कुलम्।
लक्ष्मीर्भूषयते विद्यां सर्वा ल्लक्ष्मीर्विशिष्यते ॥ १५ ॥

लक्ष्मि त्वग्दुणकीर्तने कमलभूर्यायादलं जिह्मतां
रुद्राद्या रविचन्द्रदेवपतयो वक्तुं च नैव क्षमाः।
अस्माभिस्तव रूपलक्षणगुणा वक्तुं कथं पार्यते
मातर्मा परिपाहि विश्वजननि कृत्वा ममेष्टं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

दीनार्तिभीतं क्षुधया प्रपीडितं
वसोविहीनं तव पार्श्वमागतम्।
कृपां विधत्से मम लक्ष्मि सत्वरं
धनप्रदे मां धननायकं कुरु ॥ १७ ॥

मां विलोक्य जननी हरिप्रिये निर्धनं तव समीपमागतम्।
देहि मे झटिति लक्ष्मि कराग्रं वस्त्रकाञ्चनवरान्नमद्भुतम् ॥ १८ ॥

त्वमेव जननी लक्ष्मीः पिता लक्ष्मीस्त्वमेव च।
भ्राता त्वं च सखा लक्ष्मीर्विद्या लक्ष्मीस्त्वमेव च ॥ १९ ॥
त्राहि त्राहि महालक्ष्मि त्राहि त्राहि सुरेश्वरि।
त्राहि त्राहि जगन्मातर्दारिद्र्यात्त्राहि वेगतः ॥ २० ॥
नमस्तुभ्यं जगद्धात्रि विधात्र्यै ते नमो नमः।
धर्मध्वजे नमस्तुभ्यं नमः सम्पत्तिदायिनि ॥ २१ ॥
दारिद्र्यार्णवमग्नोऽहं निमग्नोऽहं रसातले।
मज्जमानं करं धृत्वाऽभ्युद्धर त्वं रमे द्रुतम् ॥ २२ ॥

किं लक्ष्मि बहुनोक्तेन जल्पितं च पुनः पुनः ।
अन्यन्मे शरणं नास्ति सत्यं सत्यं हरिप्रिये ॥ २३ ॥
एतच्छ्रुत्वाऽगस्त्यवाक्यं हर्षपूर्णा हरिप्रिया ।
उवाच मधुरां वाणीं तुष्टाऽहं तव सुव्रत ॥ २४ ॥

श्रीरुवाच—

यत्त्वयोक्तमिदं स्तोत्रं ये पठिष्यन्ति मानवाः ।
ये च शृण्वन्ति भक्त्याऽहं तेषां वशवर्तिनी ॥ २५ ॥
नित्यं पठन्ति ये भक्त्या तेषां दैन्यं विनश्यति ।
ऋणं नश्यति शीघ्रं च वियोगो नैव जायते ॥ २६ ॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
गृहे तस्य सदा तिष्ठेन्नित्यं श्रीः पतिना सह ॥ २७ ॥
सुखसौभाग्यसम्पन्नो मनुष्यो बुद्धिमान्भवेत् ।
पुत्रवान् पशुमान् श्रेष्ठो भुक्त्वा भोगांश्च मानवः ॥ २८ ॥
कीर्तिमांश्च महाभाग्यो नारायणपदं लभेत् ।
अपुत्राः पुत्रिणः सन्ति पुत्रिणः सन्ति पौत्रिणः ॥ २९ ॥
निर्धनाः सधनाः सन्ति जीवन्ति शरदां शतम् ।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं महालक्ष्म्याः प्रकीर्तितम् ।
विष्णुप्रसादजननं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ३० ॥
राजद्वारे जयश्चैव शत्रोश्चैव पराजयः ।
भूतप्रेतपिशाचानां व्याघ्राणां न भयं तथा ॥ ३१ ॥
न शास्त्रानलतोयौघाद्भयं तस्य प्रजायते ।
दुर्वृत्तानां च पापानां बहुहानिकरं परम् ॥ ३२ ॥
मन्दुराकरिशालासु गवां गोष्ठे समाहितः ।
पठेत्तद्दोषशान्त्यर्थं महापातकनाशनम् ॥ ३३ ॥
सर्वसौख्यकरं नृणामायुरारोग्यप्रदं तथा ।
अगस्त्यमुनिना प्रोक्तं प्रजानां हितकाम्यया ॥ ३४ ॥

॥ इत्यगस्त्यमुनिविरचितं लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

७१. शीतलाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीशीतलायै नमः

अस्य श्रीशीतलाष्टकस्तोत्रस्य महादेव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, शीतला देवता, लक्ष्मीर्बीजम्, भवानी शक्तिः, सर्वविस्फोटकनिवृत्तये जपे विनियोगः।

ईश्वर उवाच—

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालङ्कृतमस्तकाम् ॥ १ ॥

वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगभयापहाम्।
यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥ २ ॥

शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः।
विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ ३ ॥

यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा पूजयते नरः।
विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते ॥ ४ ॥

शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धयुतस्य च।
प्रनष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् ॥ ५ ॥

शीतले तनुजान्रोगान्नृणां हरसि दुस्त्यजान्।
विस्फोटकविदीर्णानां त्वमेकामृतवर्षिणी ॥ ६ ॥

गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम्।
त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति संक्षयम् ॥ ७ ॥

न मन्त्रो नौषधं तस्य पापरोगस्य विद्यते।
त्वामेकां शीतले धात्रीं नान्यां पश्यामि देवताम् ॥ ८ ॥

मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम्।
यस्त्वां सञ्चिन्तयेद्देवि तस्य मृत्युर्न जायते ॥ ९ ॥

अष्टकं शीतलादेव्या यो नरः प्रपठेत्सदा।
विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते ॥ १० ॥

श्रोतव्यं पठितव्यं च श्रद्धाभक्तिसमन्वितैः।
उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ ११ ॥

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता।
शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमो नमः ॥ १२ ॥

रासभो गर्दभश्चैव खरो वैशाखनन्दनः।
शीतलावाहनश्चैव दूर्वाकन्दनिकृन्तनः ॥ १३ ॥

एतानि खरनामानि शीतलाग्रे तु यः पठेत्।
तस्य गेहे शिशूनां च शीतलारुङ् न जायते ॥ १४ ॥

शीतलाष्टकमेवेदं न देयं यस्य कस्यचित्।
दातव्यं च सदा तस्मै श्रद्धाभक्तियुताय वै ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे शीतलाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥



सूर्यस्तोत्राणि

७२. सूर्यप्रातःस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीसूर्याय नमः

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं
रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं
ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥ १ ॥

प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिर्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्नुतमर्चितं च ।
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभूतं त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥ २ ॥

प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥ ३ ॥

श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातः प्रातः पठेत यः ।
स सर्वव्याधिनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

॥ इति सूर्यप्रातःस्मरणम् ॥

७३. सूर्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीसूर्याय नमः

वैशम्पायन उवाच—

शृणुष्वावहितो राजन् शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
क्षणं च कुरु राजेन्द्र गुह्यं वक्ष्यामि ते हितम् ॥ १ ॥
धौम्येन तु यथा प्रोक्तं पार्थाय सुमहात्मने ।
नाम्नामष्टोत्तरं पुण्यं शतं तच्छृणु भूपते ॥ २ ॥

सूर्योऽर्यमा भगस्त्वष्टा पूषार्कः सविता रविः ।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥ ३ ॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् ।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥ ४ ॥

इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥ ५ ॥
वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसाम्पतिः ।
धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥ ६ ॥

कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः ।
कला काष्ठा मुहूर्तश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः ॥ ७ ॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः ।
पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥ ८ ॥

कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः ।
वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥ ९ ॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्रष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥ १० ॥

अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः ।
जयो विशालो वरदः सर्वधातुनिषेचिता ॥ ११ ॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः ।
धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥ १२ ॥

द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥ १३ ॥
देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेण वपुषान्वितः ॥ १४ ॥

एतद्वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः ।
नाम्नामष्टशतं पुण्यं प्रोक्तमेतत्स्वयम्भुवा ॥ १५ ॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम् ।
वरकनकहुताशनप्रभं प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥ १६ ॥

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत्स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान् ।
लभेत जातिस्मरतां नरः सदा धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ॥१७॥

इमं स्तवं देववरस्य यो नरः प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः ।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत कामान्मनसा यथेप्सितान् ॥१८॥

॥ इति श्रीमहाभारते सूर्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

७४. युधिष्ठिरकृतं सूर्यस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीसूर्याय नमः

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम् ।
त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम् ॥ १ ॥

त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम् ।
अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम् ॥ २ ॥

त्वया सन्धार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते ।
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया ॥ ३ ॥
त्वामुपस्थाय काले तु ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
स्वशाखाविहितैर्मन्त्रैरर्चन्त्यृषिगणार्चिताः ॥ ४ ॥
तव दिव्यं रथं यान्तमनुयान्ति वरार्थिनः ।
सिद्धचारणगन्धर्वा यक्षगुह्यकपन्नगाः ॥ ५ ॥

त्रयस्त्रिंशच्च वै देवास्तथा वैमानिका गणाः ।
सोपेन्द्राः समहेन्द्राश्च त्वामिष्ट्वा सिद्धिमागताः ॥ ६ ॥
उपयान्त्यर्चयित्वा तु त्वां वै प्राप्तमनोरथाः ।
दिव्यमन्दारमालाभिस्तूर्णं विद्याधरोत्तमाः ॥ ७ ॥

गुह्याः पितृगणाः सप्त ये दिव्या ये च मानुषाः ।
ते पूजयित्वा त्वामेव गच्छन्त्याशु प्रधानताम् ॥ ८ ॥
वसवो मरुतो रुद्रा ये च साध्या मरीचिपाः ।
बालखिल्यादयः सिद्धाः श्रेष्ठत्वं प्राणिनां गताः ॥ ९ ॥

सब्रह्मकेषु लोकेषु सप्तस्वप्यखिलेषु च ।
न तद्भूतमहं मन्ये यदर्कादतिरिच्यते ॥ १० ॥
सन्ति चान्यानि सत्त्वानि वीर्यवन्ति महान्ति च ।
न तु तेषां तथा दीप्तिः प्रभवो वा यथा तव ॥ ११ ॥

ज्योतींषि त्वयि सर्वाणि त्वं सर्वज्योतिषां पतिः ।
त्वयि सत्यं च सत्त्वं च सर्वे भावाश्च सात्त्विकाः ॥ १२ ॥

त्वत्तेजसा कृतं चक्रं सुनाभं विश्वकर्मणा ।
देवारीणां मदो येन नाशितः शार्ङ्गधन्वना ॥ १३ ॥

त्वमादायांशुभिस्तेजो निदाघे सर्वदेहिनाम् ।
सर्वौषधिरसानां च पुनर्वर्षासु मुञ्चसि ॥ १४ ॥

तपन्त्यन्ये दहन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये यथा घनाः ।
विद्योतन्ते प्रवर्षन्ति तव प्रावृषि रश्मयः ॥ १५ ॥
न तथा सुखयत्यग्निर्न प्रावारा न कम्बलाः ।
शीतवातार्दितं लोकं यथा तव मरीचयः ॥ १६ ॥

त्रयोदशद्वीपवतीं गोभिर्भासयसे महीम् ।
त्रयाणामपि लोकानां हितायैकः प्रवर्तसे ॥ १७ ॥
तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत् ।
न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेरन्मनीषिणः ॥ १८ ॥

आधानपशुबन्धेष्टिमन्त्रयज्ञतपःक्रियाः ।
त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मक्षत्रविशां गणैः ॥ १९ ॥
यदहर्ब्रह्मणः प्रोक्तं सहस्रयुगसम्मितम् ।
तस्य त्वमादिरन्तश्च कालज्ञैः परिकीर्तितः ॥ २० ॥

मनूनां मनुपुत्राणां जगतोऽमानवस्य च।
मन्वन्तराणां सर्वेषामीश्वराणां त्वमीश्वरः ॥ २१ ॥
संहारकाले सम्प्राप्ते तव क्रोधविनिःसृतः।
संवर्तकाग्निस्त्रैलोक्यं भस्मीकृत्यावतिष्ठते ॥ २२ ॥

त्वद्दीधितिसमुत्पन्ना नानावर्णा महाघनाः।
सैरावताः साशनयः कुर्वन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥ २३ ॥
कृत्वा द्वादशधात्मानं द्वादशादित्यतां गतः।
संहृत्यैकार्णवं सर्वं त्वं शोषयसि रश्मिभिः ॥ २४ ॥

त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २५ ॥
त्वं हंसः सविता भानुरंशुमाली वृषाकपिः।
विवस्वान्मिहिरः पूषा मित्रो घर्मस्तथैव च ॥ २६ ॥

सहस्ररश्मिरादित्यस्तपनस्त्वं गवां पतिः।
मार्तण्डोऽर्को रविः सूर्यः शरण्यो दिनकृत्तथा ॥ २७ ॥
दिवाकरः सप्तसप्तिर्धामकेशी विरोचनः।
आशुगामी तमोघ्नश्च हरिताश्वश्च कीर्त्यसे ॥ २८ ॥

सप्तम्यामथवा षष्ठ्यां भक्त्या पूजां करोति यः।
अनिर्विण्णोऽनहंकारी तं लक्ष्मीर्भजते नरम् ॥ २९ ॥
न तेषामापदः सन्ति नाधयो व्याधयस्तथा।
ये तवानन्यमनसा कुर्वन्त्यर्चनवन्दनम् ॥ ३० ॥

सर्वरोगैर्विरहिताः सर्वपापविवर्जिताः।
त्वद्भावभक्ताः सुखिनो भवन्ति चिरजीविनः ॥ ३१ ॥
त्वं ममापन्नकामस्य सर्वातिथ्यं चिकीर्षतः।
अन्नमन्नपते दातुमभितः श्रद्धयार्हसि ॥ ३२ ॥

ये च तेऽनुचराः सर्वे पादोपान्तं समाश्रिताः।
माठरारुणदण्डाद्यास्तान्स्तान्वन्देऽशनिक्षुभान् ॥ ३३ ॥

क्षुभया सहितो मैत्री याश्चान्या भूतमातरः।
ताश्च सर्वा नमस्यामि पान्तु मां शरणागतम् ॥ ३४ ॥
एवं स्तुतो महाराज भास्करो लोकभावनः।
ततो दिवाकरः प्रीतो दर्शयामास पाण्डवम् ॥ ३५ ॥
दीप्यमानः स्ववपुषा ज्वलन्निव हुताशनः।

विवस्वानुवाच—

यत्तेऽभिलषितं किञ्चित्तत्त्वं सर्वमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः।
गृह्णीष्व पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप ॥ ३७ ॥
यावद्वर्त्स्यति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत।
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे ॥ ३८ ॥
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति।
इतश्चतुर्दशे वर्षे भूयो राज्यमवाप्स्यसि।

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तु भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९ ॥
इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन्।
तत्तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं तदाप्नुयाद्यद्यपि तत्सुदुर्लभम् ॥४०॥
यश्चेदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥ ४१ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां पुरुषोऽप्यथ वा स्त्रियः।
उभे सन्ध्ये जपेन्नित्यं नारी वा पुरुषो यदि।
आपदं प्राप्ये मुच्यते बद्धो मुच्यते बन्धनात् ॥ ४२ ॥
॥ इति श्रीमहाभारतोक्तं युधिष्ठिरविरचितं सूर्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

७५. सूर्यशतकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीसूर्याय नमः

जम्भारातीभकुम्भोद्भवमिव दधतः सान्द्रसिन्दूररेणुं
रक्ताः सिक्ता इवौघैरुदयगिरितटीधातुधाराद्रवस्य ।
आयान्त्या तुल्यकालं कमलवनरुचेवारुणा वो विभूत्यै
भूयासुर्भासयन्तो भुवनमभिनवा भानवो भानवीयाः ॥ १ ॥

भक्तिप्रह्वाय दातुं मुकुलपुटकुटीकोटरक्रोडलीनां
लक्ष्मीमाक्रष्टुकामा इव कमलवनोद्घाटनं कुर्वते ये ।
कालकारान्धकारानन‌पतितजगत्साध्वसध्वंसकल्याः
कल्याणं वः क्रियासुः किसलयरुचयस्ते करा भास्करस्य ॥ २ ॥

गर्भेष्वम्भोरुहाणां शिखरिषु च शिताग्रेषु तुल्यंपतन्तः
प्रारम्भे वासरस्य व्युपरतिसमये चैकरूपास्तथैव ।
निष्पर्यायं प्रवृत्तास्त्रिभुवनभवनप्राङ्गणे पान्तु यूष्मा-
नूष्माणं सन्तताध्वश्रमजमिव भृशं बिभ्रतो ब्रध्नपादाः ॥ ३ ॥

प्रभ्रश्यत्युत्तरीयत्विषि तमसि समुद्वीक्ष्य वीतावृतीप्राग्-
जन्तूंस्तन्तून्यथायानतनु वितनुते तिग्मरोचिर्मरीचीन् ।
ते सान्द्रीभूय सद्यः क्रमविशददशाशादशालीविशालं
शश्वत्संपादयन्तोऽम्बरममलमलं मङ्गलं वो दिशन्तु ॥ ४ ॥

न्यक्कुर्वन्नोषधीशे मुषितरुचि शुचेवौषधीः प्रोषिताभा
भास्वद्ग्रावोद्गतेन प्रथममिव कृताभ्युद्गतिः पावकेन ।
पक्षच्छिद्व्रणासृक्स्रुत इव दृषदो दर्शयन्प्रातरद्रे-
राताम्रस्तीवभानोरनभिमतनुदे स्ताद्गभस्त्युद्गमो वः ॥ ५ ॥

शीर्णघ्राणाङ्घ्रिपाणीन्व्रणिभिरपघनैर्घर्घराव्यक्तघोषान्-
दीर्घाघ्रातानघौघैः पुनरपि घटयत्येक उल्लङ्घयन्यः ।

घर्मांशोस्तस्य वोऽन्तर्द्विगुणघनघृणानिघ्ननिर्विघ्नवृत्ते-
दंत्तार्घाः सिद्धसंघैर्विदधतु घृणयः शीघ्रमंहोविघातम् ॥ ६ ॥

बिभ्राणा वामनत्वं प्रथममथ तथैवांशवः प्रांशवो वः
क्रान्ताकाशान्तरालास्तदनु दश दिशः पूरयन्तस्ततोऽपि ।
ध्वान्तादाच्छिद्य देवद्विष इव बलितो विश्वमाश्वश्नुवाना
कृच्छ्राण्युच्छ्रायहेलोपहसितहरयो हारिदश्वा हरन्तु ॥ ७ ॥

उद्गाढेनारुणिम्ना विदधति बहुलं येऽरुणस्यारुणत्वं
मूर्धोद्धूतौ खलीनक्षतरुधिररुचो ये रथाश्वाननेषु ।
शैलानां शेखरत्वं श्रितशिखरिशिखास्तन्वते ये दिशन्तु
प्रेङ्खन्तः खे खरांशोः खचितदिनमुखास्ते मयूखाः सुखं वः ॥८॥

दत्तानन्दाः प्रजानां समुचितसमयाकृष्टसृष्टैः पयोभिः
पूर्वाह्णे विप्रकीर्णा दिशि दिशि विरमत्यह्नि संहारभाजः ।
दीप्तांशोर्दीर्घदुःखप्रभवभवभयोदन्वदुत्तारनावो
गावो वः पावनानां परमपरिमितां प्रीतिमुत्पादयन्तु ॥ ९ ॥

बन्धध्वंसैकहेतुं शिरसि नतिरसाबद्धसन्ध्याञ्जलीनां
लोकानां ये प्रबोधं विदधति विपुलाम्भोजखण्डाशयेव ।
युष्माकं ते स्वचित्तप्रथितपृथुतरप्रार्थनाकल्पवृक्षाः
कल्पन्तां निर्विकल्पं दिनकरकिरणाः केतवः कल्मषस्य ॥ १० ॥

धारा रायो धनायापदि सपदि करालम्बभूताः प्रपाते
तत्त्वालोकैकदीपास्त्रिदशपतिपुरप्रस्थितौ वीथ्य एव ।
निर्वाणोद्योगियोगिप्रगमनिजतनुद्वारि वेत्रायमाणास्त्रायन्तां
तीव्रभानोर्दिवसमुखसुखा रश्मयः कल्मषाद्वः ॥ ११ ॥

प्राचि प्रागाचरन्त्योऽनतिचिरमचले चारुचूडामणित्वं
मुञ्चन्त्यो रोचनाम्भः प्रचुरमिव दिशामुच्चकैश्चर्चनाय ।
चाटूत्कैश्चक्रनाम्नां चतुरमविचलैर्लोचनैरर्च्यमाना-
श्चेष्टन्तां चिन्तितानामुचितमचरमाश्चण्डरोचीरुचो वः ॥ १२ ॥

एकं ज्योतिर्दृशौ द्वे त्रिजगति गदितान्यब्जजास्यैश्चतुर्भि-
भूतानां पञ्चमं यान्यलमृतुषु तथा षट्सु नानाविधानि ।
युष्माकं तानि सप्तत्रिदशमुनिनुतान्यष्टदिग्भाञ्जि भानो-
र्यान्तिप्राह्णे नवत्वं दश दधतु शिवं दीधितीनां शतानि ॥१३॥

आवृत्तिभ्रान्तविश्वाः श्रममिव दधतः शोषिणः स्वोष्मणेव
ग्रीष्मे दावाग्नितप्ता इव रसमसकृद्ये धरित्र्या धयन्ति ।
ते प्रावृष्यात्तपानातिशयरुज इवोद्वान्ततोया हिमर्त्तौ
मार्तण्डस्याप्रचण्डाश्चिरमशुभभिदेऽभीशवो वो भवन्तु ॥ १४ ॥

तन्वाना दिग्वधूनां समधिकमधुरालोकरम्यामवस्था-
मारूढप्रौढिलेशोत्कलितकपिलिमालंकृतिः केवलंव ।
उज्जृम्भाम्भोजनेत्रद्युतिनि दिनमुखे किंचिदुद्भिद्यमाना
श्मश्रुश्रेणीव भासां दिशतु दशशती शर्म घर्मत्विषो वः ॥ १५ ॥

मौलीन्दोर्मैष मोषीद्द्युतिमिति वृषभाङ्केन यः शङ्किनेव
प्रत्यग्रोद्घाटिताम्भोरुहकुहरगुहासुस्थितेनेव धात्रा ।
कृष्णेन ध्वान्तकृष्णस्वतनुपरि भवत्रस्तुनेव स्तुतोऽलं
त्राणाय स्तात्तनीयानपि तिमिररिपोः स त्विषामुद्गमो वः ॥१६॥

विस्तीर्णं व्योम दीर्घाः सपदि दश दिशो व्यस्तवेलाम्भसो
ऽब्धीन्कुर्वद्भिर्दृश्यनानानगननरनगाभोगपृथ्वीं च पृथ्वीम् ।
पद्मिन्युच्छ्वास्यते यैरुषसि जगदपि ध्वंसयित्वा तमिस्रा-
मुस्रा विस्रंसयन्तु द्रुतमनभिमतं ते सहस्रत्विषो वः ॥ १७ ॥

अस्तव्यस्तत्वशून्यो निजरुचिरनिशानश्वरः कर्तुमीशो विश्वं
वेश्मेव दीपः प्रतिहततिमिरं यः प्रदेशस्थितोऽपि ।
दिक्कालापेक्षयासौ त्रिभुवनमटतस्तिग्मभानोर्नवाख्यां यातः
शातक्रतव्यां दिशि दिशतु शिवं सोऽर्चिषामुद्गमो वः ॥ १८ ॥

मा गान्म्लानिं मृणालीमृदुरिति दययेवाप्रविष्टोऽहिलोकं
लोकालोकस्य पार्श्वं प्रतपति न परं यस्तदाख्यार्थमेव ।

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डस्फुटनभयपरित्यक्तदैर्घ्यो द्युसीम्नि
स्वेच्छावश्यावकाशावधिरवतु स वस्तापनो रोचिरोघः ॥ १९ ॥

अश्यामः काल एको न भवति भुवनान्तोऽपि वीतेऽन्धकारे
सद्यः प्रालेयपादो न विलयमचलश्चन्द्रमा अप्युपैति ।
बन्धः सिद्धाञ्जलीनां न हि कुमुदवनस्यापि यत्रोज्जिहाने
तत्प्रात प्रेक्षणीयं दिशतु दिनपतेर्धाम कामाधिकं वः ॥ २० ॥

यत्कान्ति पङ्कजानां न हरति कुरुते प्रत्युताधिक्यरम्यां
नोधत्ते तारकाभां तिरयति नितरामाशु यन्नित्यमेव ।
कर्तुं नालं निमेषं दिवसमपि परं यत्तदेकं त्रिलोक्या-
श्चक्षुःसामान्यचक्षुर्विसदृशमघभिद्भास्वतस्तान्महो वः ॥ २१ ॥

क्ष्मां क्षेपीयः क्षमाम्भः शिशिरतरजलस्पर्शतर्षाद्दृतेव
द्रागाशा नेतुमाशाद्विरदकरसरःपुष्कराणीव बोधम् ।
प्रातः प्रोल्लङ्घ्य विष्णोः पदमपि घृणयेवातिवेगाद्दवीय-
स्युद्दामं द्योतमाना द.तु दिनपतेर्दुर्निमित्तं द्युतिर्वः ॥ २२ ॥

नो कल्पापायवायोरदयरयदलत्क्ष्माधरस्यापि] गम्या
गाढोद्गीर्णोज्ज्वलश्रीरहनि न रहिता नो तमःकज्जलेन ।
प्राप्तोत्पत्तिः पतङ्गान्न पुनरुपगता मोषमुष्णत्विषो वो
वर्तिः सैवान्यरूपा सुखयतु निखिलद्वीपदीपस्य दीप्तिः ॥ २३ ॥

निःशेषाशावपूरप्रवणगुरुगुणश्लाघनीयस्वरूपा
पर्याप्तं नोदयादौ दिनगमसमयोपप्लवेऽप्युन्नतैव ।
अत्यन्तं यानभिज्ञा क्षणमपि तमसा साकमेकत्र वस्तुं
ब्रध्नस्येद्धा रुचिर्वो रुचिरिव रुचितस्याप्तये वस्तुनोऽस्तु ॥ २४ ॥

बिभ्राणः शक्तिमाशु प्रशमितबलवत्तारकौर्जित्यगुर्वीं
कुर्वाणो लीलयाधः शिखिनमपि लसच्चन्द्रकान्तावभासम् ।
आदध्यादन्धकारे रतिमतिशयिनीमावहन्वीक्षणानां
बालो लक्ष्मीमपारामपर इव गुहोऽहर्पतेरातपो वः ॥ २५ ॥

ज्योत्स्नांशाकर्षपाण्डुद्युति तिमिरमषीशेषकल्माषमीषज्-
जृम्भोद्भूतेन पिङ्गं सरसिजरजसा सन्ध्यया शोणशोचिः ।
प्रातः प्रारम्भकाले सकलमपि जगच्चित्रमुन्मीलयन्ती
कान्तिस्तीक्ष्णत्विषोऽक्ष्णां मुदमुपनयतात्तूलिकेवातुलां वः ।।२६॥

आयान्ती किं सुमेरोः सरणिररुणिता पाद्मरागैः परागै-
राहोस्वित्स्वस्य माहारजनविरचिता वैजयन्ती रथस्य ।
माञ्जिष्ठी प्रष्ठवाहावलिविधुतशिरश्चामराली नु लोकै-
राशङ्कयालोकितैवं सवितुरघनुदे स्तात्प्रभातप्रभावः ॥ २७ ॥

ध्वान्तध्वंसं विधत्ते न तपति रुचिमान्नातिरूपं व्यनक्ति
न्यक्त्वं नीत्वापि नक्तं न वितरतितरां तावदह्नस्त्विषं यः ।
स प्रातर्मा विरंसीदसकलपटिमा पूरयन्युष्मदाशा-
माशाकाशावकाशावतरणतरुणप्रक्रमोऽर्कप्रकाशः ॥ २८ ॥

तीव्रं निर्वाणहेतुर्यदपि च विपुलं यत्प्रकर्षेण चाणु-
प्रत्यक्षं यत्परोक्षं यदिह यदपरं नश्वरं शाश्वतं च ।
यत्सर्वस्य प्रसिद्धं जगति कतिपये योगिनो यद्विदन्ति
ज्योतिस्तद्द्विप्रकारं सवितुरवतु वो बाह्यमाभ्यन्तरं च ॥ २९ ॥

रत्नानां मण्डनाय प्रभवति नियतोद्देशलब्धावकाशं
वह्नेर्दार्वादि दग्धुं निजजडिमतया कर्तुमानन्दमिन्दोः ।
यच्च त्रैलोक्यभूषाविधिरघदहनं ह्लादि वृष्ट्याशु तद्वो
बाहुल्योत्पाद्यकार्याधिकतरमवतादेकमेवार्कतेजः ॥ ३० ॥

मीलच्चक्षुर्विजिह्मश्रुति जडरसनं निघ्नितघ्राणवृत्ति
स्वव्यापाराक्षमत्वक्परिमुषितमनः श्वासमात्रावशेषम् ।
विस्रस्ताङ्गं पतित्वा स्वपदपदरतादश्रियं वोऽर्कजन्मा
कालव्यालावलीढं जगदगद इवोत्थापयन्प्राक्प्रतापः ॥ ३१ ॥

निःशेषं नैशमम्भः प्रसभमपनुदन्नश्रुलेशानुकारि-
स्तोकस्तोकापनीतारुणरुचिरचिरादस्तदोषानुषङ्गः ।

धाता दृष्टि प्रसन्नां त्रिभुवननयनस्याशु युष्मद्विरुद्धं
वध्याद्व्रध्नस्य सिद्धाञ्जनविधिरपरः प्राक्तनोऽर्चिःप्रचारः॥३२॥

भूत्वा जम्भस्य भेत्तुः ककुभि परिभवारम्भभूः शुभ्रभानो-
र्बिभ्राणा बभ्रुभावं प्रसभमभिनवाम्भोजजृम्भाप्रगल्भा।
भूषा भूयिष्ठशोभा त्रिभुवनभवनस्यास्य वैभाकरी प्राग्-
विभ्रान्ति भ्राजमाना विभवतु विभवोद्भूतये सा विभा वः॥३३॥

संसक्तं सिक्तमूलादभिनवभुवनोद्यानकौतूहलिन्या
यामिन्या कन्ययेवामृतकरकलशावर्जितेनामृतेन।
अर्कालोकः क्रियाद्वो मुदमुदयशिरश्चक्रवालालवाला-
दुद्यन् बालप्रवालप्रतिमरुचिरहः पादपप्राक्प्ररोहः॥ ३४॥

भिन्नं भासारुणस्य क्वचिदभिनवया विद्रुमाणां त्विषेव
त्वङ्गन्नक्षत्ररत्नद्युतिनिकरकरालान्तरालं क्वचिच्च।
नान्तर्निःशेषकृष्णश्रियमुदधिमिव ध्वान्तराशिं पिबन्स्ता-
दौर्वः पूर्वोऽप्यपूर्वोऽग्निरिव भवदघप्लुष्टयेऽर्कावभासः॥ ३५॥

गन्धर्वैर्गद्यपद्यव्यतिकरितवचोहृद्यमातोद्यवाद्यै-
राद्यैर्यो नरदाद्यैर्मुनिभिरभिनुतो वेदवेद्यैर्विभिद्य।
आसाद्यापद्यते यं पुनरपि च जगद्यौवनं सद्य उद्यन्-
नुद्द्योतो द्योतितद्यौर्द्यतु दिवसकृतोऽसाववद्यानि वोऽद्य॥३६॥

आधानैश्चन्द्रकान्तैश्च्युततिमिरतया तानवत्तारकाणा-
मेणाङ्कालोकलोपादुपहतमहसामोषधीनां लयेन।
आरादुत्प्रेक्ष्यमाणा क्षणमुदयतटान्तर्हितस्याहिमांशो-
राभा प्राभातिकी वोऽवतु न तु नितरां तावदाविर्भवन्ती॥ ३७॥

सानौ सा नौदये नारुणितदलपुनर्यौवनानां वनाना-
मालीमालीढपूर्वा परिहृतकुहरोपान्तनिम्ना तनिम्ना।
आ वोऽभावोपशान्ति दिशतु दिनपतेर्भासमाना समाना
राजी राजीवरेणोः समसमयमुदेतीव यस्या वयस्या॥ ३८॥

उज्जृम्भाम्भोरुहाणां प्रभवति पयसां या श्रिये नोष्णतायै
पुष्णात्यालोकमात्रं न तु दिशति दृशां दृश्यमाना विघातम् ।
पूर्वाद्रेरेव पूर्वं दिवमनु च पुनः पावनी दिङ्मुखाना-
मेनांस्यैनी विभासौ नुदतु नुतिपदैकास्पदं प्राक्तनी वः ॥ ३९ ॥

वाचां वाचस्पतेरप्यवलभिदुचिताचार्यकाणां प्रपञ्चै-
र्वैरञ्चानां तथोच्चारितचतुरऋचां चाननानां चतुर्णाम् ।
उच्येतार्चासु वाच्यच्युतिशुचि चरितं तस्य नोच्चैर्विविच्य
प्राच्यं वर्चश्चकासच्चिरमुपचिनुतात्तस्य चण्डार्चिषो वः ॥ ४० ॥

मूर्ध्न्यद्रेर्धातुरागस्तरुषु किसलयो विद्रुमौघः समुद्रे
दिङ्मातङ्गोत्तमाङ्गेष्वभिनवविहितः सान्द्रसिन्दूररेणुः ।
सीम्नि व्योम्नश्च हेम्नः सुरशिखरिभुवो जायते यः प्रकाशः
शोणिम्नासौ खरांशोरुषसि दिशतु वः शर्म शोभैकदेशः ॥ ४१ ॥

अस्ताद्रीशोत्तमाङ्गे श्रितशशिनि तमःकालकूटे निपीते
याति व्यक्तिं पुरस्तादरुणकिसलये प्रत्युषःपारिजाते ।
उद्यन्त्यारक्तपीताम्बरविशदतरोद्वीक्षिता तीक्ष्णभानो-
र्लक्ष्मीर्लक्ष्मीरिवास्तु स्फुटकमलपुटापाश्रया श्रेयसे वः ॥ ४२ ॥

नोदन्वाञ्जन्मभूमिर्न तदुदरभुवो बान्धवाः कौस्तुभाद्या
यस्याः पद्मं न पाणौ न च नरकरिपूरःस्थली वासवेश्म ।
तेजोरूपापरैव त्रिषु भुवनतलेष्वादधाना व्यवस्थां
सा श्रीः श्रेयांसि दिश्यादशिशिरमहसो मण्डलाग्रोद्गता वः ॥ ४३ ॥

रक्षन्त्वक्षुण्णहेमोपलपटलमलं लाघवादुत्पतन्तः
पातङ्गाः पङ्गुववज्ञाजितपवनजवा वाजिनस्ते जगन्ति ।
येषां वीतान्यचिह्नोन्नयमपि वहतां मार्गमाख्याति मेरा-
वुद्यन्नुद्दामदीप्तिर्द्युमणिमणिशिलावेदिकाजातवेदाः ॥ ४४ ॥

प्लुष्टाः पृष्ठेंऽशुपातैरतिनिकटतया दत्तदाहातिरेकै-
रेकाह्नाक्रान्तकृत्स्नत्रिदिवपथपृथुश्वासशोषाः श्रमेण ।

तीव्रोदन्यास्त्वरन्तामहितविहतये सप्तयः सप्तसप्ते-
रभ्राशाकाशगङ्गाजलसरलगलावाङ्मताग्रानना वः ॥ ४५ ॥

मत्वान्य.न्पाश्र्वंतोऽश्वान्स्फटिकतटदृषद्दृष्टदेहाद्रवन्ती
व्यस्तेऽह्न्यस्तसन्ध्येर्यमिति मृदुपदा पद्मरागोपलेषु ।
सादृश्यादृश्यमूर्तिर्मरकतकटके क्लिष्टसूता समेरो-
र्मूर्धन्यावृत्तिलब्धध्रुवगतिरवतु ब्रध्नवाहावलिर्वः ॥ ४६ ॥

हेलालोलं वहन्ती विषधरदमनस्याग्रजेनावकृष्टा
स्वर्वाहिन्याः सुदूरं जनितजवजया स्पन्दनस्य स्यदेन ।
निर्व्याजं तायमाने हरितिमनि निजे स्फीतफेनाहितश्री-
रश्रेयांस्यश्वपङ्क्तिः शमयतु यमुनेवापरा तापनी वः ॥ ४७ ॥

मार्गोपान्ते सुमेरोर्नुवति कृतनतौ नाकधाम्नां निकाये
वीक्ष्य व्रीडानतानां प्रतिकुहरमुखं किन्नरीणां मुखानि ।
सूतेऽसूयत्यपीषज्जडगति वहतां कन्धरार्धैर्वलद्भि-
र्वाहानां व्यस्यताद्वः सममसमहरेर्हेषितं कल्मषाणि ॥ ४८ ॥

धुन्वन्तो नोरदालीर्निजरुचिहरिताः पार्श्वयोः पक्षतुल्या-
स्तालूत्तानैः खलीनैः खचितमुखरुचश्च्योतता लोहितेन ।
उड्डीयेव व्रजन्तो वियति गतिवशादर्कवाहाः क्रियासुः
क्षेमं हेमाद्रिहृद्यद्रुशिखरशिरःश्रेणिशाखाशुका वः ॥ ४९ ॥

प्रातःशैलाग्ररङ्गे रजनिजवनिकापायसंलक्ष्यलक्ष्मी-
र्विक्षिप्याग्रापूर्वपुष्पाञ्जलिमुडुनिकरं सूत्रधारायमाणः ।
यामेष्वङ्केष्विवाह्नः कृतरुचिषु चतुर्ष्वेव जातप्रतिष्ठा-
मव्यात्प्रस्तावयन्वो जगदटनमहानाटिकां सूर्यसूतः ॥ ५० ॥

आक्रान्त्या वाह्यमानं पशुमिव हरिणा वाहकोऽग्रचो हरीण-
भ्राम्यन्तं पक्षपाताज्जगति समरुचिः सर्वकर्मैकसाक्षी ।
शत्रुं नेत्रश्रुतीनामवजयति वयोज्येष्ठभावे समेऽपि
स्थात्मा धाम्नां निधिर्यः स भवदघनुदे नूतनः स्तादनूरुः ॥ ५१ ॥

दत्ताघद्रू रनम्रैर्वियति विनयतो वीक्षितः सिद्धसार्थैः
सानाथ्यं सारथिर्वः स दशशतरुचेः सातिरेकं करोतु ।
आपीय प्रातरेव प्रततहिमपयःस्यन्दिनीरिन्दुभासो
यः काष्ठादीपनोऽग्रे जडित इव भृशं सेवते पृष्ठतोऽर्कम् ॥ ५२ ॥

मुञ्चन्रश्मीन्दिनादौ दिनगमसमये संहरंश्च स्वतन्त्र-
स्तोत्र प्रख्यातवीर्योऽविरतहरिपदाक्रान्तिबद्धाभियोगः ।
कालोत्कर्षाल्लघुत्वं प्रसभमधिपतौ योजयन्यो द्विजानां
सेवाप्रीतेन पूष्णात्मसम इव कृतस्त्रायतां सोऽरुणो वः ॥ ५३ ॥

शातः श्यामालतायाः परशुरिव तमोऽरण्यवह्नेरिवार्चिः
प्राच्येवाग्रे ग्रहीतुं ग्रहकुमुदवनं प्रागुदस्तोऽग्रहस्तः ।
ऐक्यं भिन्दन्द्युभूम्योरवधिरिव विधातेव विश्वप्रबोधं
वाहानां वो विनेता व्यपनयतु विपन्नाम धामाधिपस्य ॥ ५४ ॥

पौरस्त्यस्तोयदर्तोः पवन इव पतत्पावकस्येव धूमो
विश्वस्येवादिसर्गः प्रणव इव परं पावनो वेदराशेः ।
संध्यानृत्योत्सवेच्छोरिव मदनरिपोर्नन्दिनान्दीनिनादः
सौरस्याग्रे सुखं वो वितरतु विनतानन्दनः स्यन्दनस्य ॥ ५५ ॥

पर्याप्तं तप्तचामीकरकटकतटे श्लिष्टशीतेतरांशा-
वासीदत्स्यन्दनाश्वानुकृतिमरकते पद्मरागायमाणः ।
यः सोत्कर्षां विभूषां कुरुत इव कुलक्ष्माभृदीशस्य मेरो-
रेनांस्यह्नाय दूरं गमयतु स गुरुः काद्रवेयद्विषो वः ॥ ५६ ॥

नीत्वाऽश्वान्सप्त कक्षा इव नियमवशं वेत्रकल्पप्रतोद-
स्तूर्णध्वान्तस्य राशावितरजन इवोत्सारिते दूरभाजि ।
पूर्वं प्रष्ठो रथस्य क्षितिभृदधिपतीन्दर्शयंस्त्रायतां व-
स्त्रैलोक्यास्थानदानोद्यतदिवसपतेः प्राक्प्रतीहारपालः ॥ ५७ ॥

वध्निञ्जातं विकासीक्षणकमलवनं भासि नाभासि वह्ने
तातं नत्वाश्वपार्श्वान्नियम महिषं राक्षसा वीक्षिताःस्थ ।

सप्तीन्सिञ्च प्रचेतः पवन भज जवं वित्तमावेदितस्त्वं
वन्दे शर्वेति जल्पन्प्रतिदिशमधिपान्पातु पूष्णोऽग्रणीर्वः ॥ ५८ ॥

पाशानाशान्तपालादरुण वरुणतो मा ग्रहीः प्रग्रहार्थं
तृष्णां कृष्णस्य चक्रे जहिहि नहि रथो याति मे नैकचक्रः ।
योक्तुं युग्यं किमुच्चैःश्रवसमभिलषस्यष्टमं वृत्रशत्रो-
स्त्यक्तान्यापेक्षविश्वोपकृतिरिति रविः शास्ति यं सोऽवताद्वः ॥५९॥

नो मूर्च्छाछिन्नवाञ्छः श्रमविवशवपुर्नैव नाप्यास्यशोषी
पान्थः पथ्येतराणि क्षपयतु भवतां भास्वतोऽग्रेसरः सः ।
यः संश्रित्य त्रिलोकीमटति पटुतरैस्ताप्यमानो मयूखै-
राराादारामलेखामिव हरितमणिश्यामलामश्वपङ्क्तिम् ॥ ६० ॥

सीदन्तोऽन्तर्निमज्जज्जडखुरमुसलाः सैकते नाकनद्याः
स्कन्दन्तः कन्दरालीः कनकशिखरिणो मेखलासु स्खलन्तः ।
दूरं दूर्वास्थलोत्का मरकतदृषदि स्थास्नवो यन्न याताः
पूष्णोऽश्वाः पूरयंस्तैस्तदवतु जवनैर्हुंकृतेनाग्रगो वः ॥ ६१ ॥

पीनोरःप्रेरिताभ्रैश्चरमखुरपुटाग्रस्थितैः प्रातरद्रा-
वादीर्घाङ्गैरुदस्तो हरिभिरपगतासङ्गनिःशब्दचक्रः ।
उत्तानानूरुमूर्धावनतिहठभवद्विप्रतीपप्रणामः
प्राह्णे श्रेयो विधत्तां सवितुरवतरन्व्योमवीथीं रथो वः ॥ ६२ ॥

ध्वान्तौघध्वंसदीक्षाविधिपटु वहता प्राक्सहस्रं कराणा-
मर्यम्णा यो गरिम्णः पदमतुलमुपानीयताध्यासनेन ।
स श्रान्तानां नितान्तं भरमिव मरुतामक्षमाणां विसोढुं
स्कन्धात्स्कन्धं व्रजन्वो वृजिनविजितये भास्वतः स्यन्दनोऽस्तु ॥६३॥

योक्त्रीभूतान्युगस्य ग्रसितुमिव पुरो दन्दशूकान्दधानो
द्वेधाव्यस्ताम्बुवाहावलिविहितबृहत्पक्षविक्षेपशोभः ।
सावित्रः स्यन्दनोऽसौ निरतिशयरयप्रीणितानूरुरेनः
क्षेपीयो वो गरुत्मानिव हरतु हरीच्छाविधेयप्रचारः ॥ ६४ ॥

एकाह्नेनैव दीर्घां त्रिभुवनपदवीं लङ्घयन् यो लघिष्ठः
पृष्ठे मेरोर्गरीयान्दलितमणिदृषत्त्विषि पिंषन् शिरांसि ।
सर्वस्यैवोपरिष्टादथ च पुनरधस्तादिवास्ताद्रिमूर्ध्नि
ब्रध्नस्याव्यात्स एवं दुरधिगमपरिस्पन्दनः स्यन्दनो वः ॥ ६५ ॥

धूर्ध्वंस्ताग्र्यग्रहाणि ध्वजपटपवनान्दोलितेन्दूनि दूरं
राहौ ग्रासाभिलाषादनुसरति पुनर्दत्तचक्रव्यथानि ।
श्रान्ताश्वश्वासहेलाधुतविबुधधुनीनिर्झराम्भांसि भद्रं
देयासुर्वो दवीयो दिवि दिवसपतेः स्यन्दनप्रस्थितानि ॥ ६६ ॥

अक्षे रक्षां निबध्य प्रतिसरवलयैर्योजयन्त्यो युगाग्रं
धूःस्तम्भे दग्धधूपाः प्रहितसुमनसो गोचरे कूबरस्य ।
चर्चाश्चक्रे चरन्त्यो मलयजपयसा सिद्धवध्वस्त्रिसंध्यं
वन्दन्ते यं द्युमार्गे स नुदतु दुरितान्यंशुमत्स्यन्दनो वः । ६७ ॥

उत्कीर्णस्वर्णरेणुद्रुतखुरदलिता पार्श्वयोः शश्वदश्वै-
रश्रान्तभ्रान्तचक्रक्रमनिखिलमिलन्नेमिनिम्ना भरेण ।
मेरोर्मूर्धन्यघं वो विघटयतु रवेरेकवीथी रथस्य
स्वोष्मोदत्ताम्बुरिक्तप्रकटितपुलिनोद्धूसरा स्वर्धुनीव ॥ ६८ ॥

नन्तुं नाकालयानामनिशमनुयतां पद्धतिः पङ्क्तिरेव
क्षोदो नक्षत्रराशेरुदयरयमिलच्चक्रपिष्टस्य धूलिः ।
ह्रेषाह्लादो हरीणां सुरशिखरिदरीः पूरयन्नेमिनादो
यस्याव्यात्तीव्रभानोः स दिवि भुवि यथा व्यक्तचिह्नोरथो वः ॥६९॥

निःस्पन्दानां विमानावलिविततदिवां देववृन्दारकाणां
वृन्दैरानन्दसान्द्रोद्यममपि वहतां विन्दतां वन्दितुं नो ।
मन्दाकिन्याममन्दः पुलिनभृति मृदुर्मन्दरे मन्दिराभे
मन्दारैर्मण्डितारं दधदरि दिनकृत्स्यन्दनः स्तान्मुदे वः ॥ ७० ॥

चक्री चक्रारपङ्क्तिं हरिरपि च हरीन् धूर्जटिर्धूर्ध्वजान्ता-
नक्षं नक्षत्रनाथोऽरुणमपि वरुणः कूबराग्रं कुबेरः ।

रंहः संघः सुराणां जगदुपकृतये नित्ययुक्तस्य यस्य
स्तौतिप्रीतिप्रसन्नोऽन्वहमहिमरुचेः सोऽवतात्स्यन्दनो वः ॥ ७१॥

नेत्राहीनेन मूले विहितपरिकरः सिद्धसाध्यैर्मरुद्भिः
पादोपान्ते स्तुतोऽलं बलिहरिरभसा कर्षणाबद्धवेगः ।
भ्राम्यन्व्योमाम्बुराशावशिशिरकिरणस्यन्दनः सन्ततं वो
दिश्याल्लक्ष्मीमपारामतुलितमहिमेवापरो मन्दराद्रिः ॥ ७२ ॥

यज्ज्यायो बीजमह्नामपहततिमिरं चक्षुषामञ्जनं यद्
द्वारं यन्मुक्तिभाजां यदखिलभुवनज्योतिषामेकमोकः ।
यद्वृष्टयम्भोनिधानं धरणिरससुधापानपात्रं महद्यद्
दिश्यादीशस्य भासां तदविकलमलं मङ्गलं मण्डलं वः ॥ ७३ ॥

वेलावर्धिष्णु सिन्धोः पय इव खमिवार्घोद्गताग्र्यग्रहोडु-
स्तोकोद्भिन्नस्य चिह्नप्रसवमिव मधोरास्यमस्यन्मनांसि ।
प्रातः पूष्णोऽशुभानि प्रशमयतु शिरःशेखरीभूतमद्रेः
पौरस्त्यस्योद्गभस्तिस्तिमिततमतमःखण्डनं मण्डलं वः ॥ ७४ ॥

प्रत्युप्तस्तप्तहेमोज्ज्वलरुचिरचलः पद्मरागेण येन
ज्यायः किञ्जल्कपुञ्जो यदलिकुलशितेरम्बरेन्दीवरस्य ।
कालव्यालस्य चिह्नं महिततममहोमूर्ध्नि रत्नं महद्यद्-
दीप्तांशोः प्रातरव्यात्तदविकलजगन्मण्डनं मण्डलं वः ॥ ७५ ॥

कस्त्राता तारकाणां पतति तनुरवश्यायबिन्दुर्यथेन्दु-
र्विद्राणादृक्स्मरारेरुरसि मुररिपोः कौस्तुभो नोद्गभस्तिः ।
वह्नेः सापह्नवेव द्युतिरुदयगते यत्र तन्मण्डलं वो
मार्तण्डीयं पुनीतार्द्दिवि भुवि च तमांसीव मुष्णन्महांसि ॥ ७६ ॥

यत्प्राच्यां प्राक्चकास्ति प्रभवति च यतः प्राच्यसावुज्जिहाना-
दिद्धं मध्ये यदह्नो भवति ततरुचा येन चोत्पाद्यतेऽहः ।
यत्पर्यायेण लोकानवति च जगतां जीवितं यच्च तद्वो
विश्वानुग्राहि विश्वं सृजदपि च रवेर्मण्डलं मुक्तयेऽस्तु ॥ ७७ ॥

शुष्यन्त्यूढानुकारा मकरवसतयो मारवीणां स्थलीनां
येनोत्तप्ताः स्फुटन्तस्तडिति तिलतुलां यान्त्यगेन्द्रा युगान्ते ।
तच्चण्डांशोरकाण्डत्रिभुवनदहनाशङ्कया धाम कृच्छ्रात्
संहृत्यालोकमात्रं प्रलघु विदधतः स्तान्मुदे मण्डलं वः ॥ ७८ ॥

उद्यद्‌द्युद्यानवाप्यां बहुलतमतमःपङ्कपूरं विदार्य
प्रोद्भिन्नं पत्रपार्श्वेष्वविरलमरुणच्छायया विस्फुरन्त्या ।
कल्याणानि क्रियाद्वः कमलमिव महन्मण्डलं चण्डभानो-
रन्वीतं तृप्तिहेतोरसकृदलिकुलाकारिणा राहुणा यत् ॥ ७९ ॥

चक्षुर्दक्षद्विषो यन्न तु दहति पुरः पूरयत्येव कामं
नास्तं जुष्टं मरुद्भिर्यदिह नियमिनां यानपात्रं भवाब्धौ ।
यद्वीतश्रान्ति शश्वद्भ्रमदपि जगतां भ्रान्तिमभ्रान्तिबध्न-
स्याव्यारुद्धक्रियमथ च हिताधायि तन्मण्डलं वः ॥ ८० ॥

सिद्धैः सिद्धान्तमिश्रं श्रितविधि विबुधैश्चारणैश्चाटुगर्भं-
गीत्या गन्धर्वमुख्यैर्मुहुरहिपतिभिर्यातुधानैर्यतात्म ।
सार्धं साध्यैर्मुनीन्द्रैर्मुदिततममनो मोक्षिभिः पक्षपाता-
त्प्रातःप्रारभ्यमाणस्तुतिरवतु रविर्विश्ववन्द्योदयो वः ॥ ८१ ॥

भासामासन्नभावादधिकतरपटोश्चक्रवालस्य तापा-
च्छेदादच्छिन्नगच्छत्तुरगखुरपुटन्यासनिशङ्कटङ्कैः ।
निःसङ्गस्यन्दनाङ्गभ्रमणनिकषणात्पातु वस्त्रिप्रकारं
तप्तांशुस्तत्परीक्षापर इव परितः पर्यटन्हाटकाद्रिम् ॥ ८२ ॥

नो शुष्कं नाकनद्या विकसितकनकाम्भोजया भ्राजितं तु
प्लुष्टा नैवोपभोग्या भवति भृशतरं नन्दनोद्यानलक्ष्मीः ।
नो शृङ्गाणि द्रुतानि द्रुतममरगिरेः कालधौतानि धौता-
नीद्धं धाम द्युमार्गे श्रदयति दयया यत्र सोऽर्कोऽवताद्वः ॥८३ ॥

ध्वान्तस्यैवान्तहेतुर्न भवति मलिनैकात्मनः पाप्मनोऽपि
प्राक्पादोपान्तभाजां जनयति न परं पङ्कजानां प्रबोधम् ।

कर्ता निःश्रेयसानामपि न तु खलु यः केवलं वासराणां
सोऽव्यादेकोद्यमेच्छाविहितबहुबृहद्विश्वकार्योऽर्यमा वः ॥ ८४ ॥

लोटँल्लोष्टाविचेष्टः श्रितशयनतलो निःसहीभूतदेहः
संदेही प्राणितव्ये सपदि दश दिशः प्रेक्षमाणोऽन्धकाराः।
निःश्वासायास नष्टः परमपरवशो जायते जीवलोकः
शोकेनेवान्यलोकानुदयकृति गते यत्र सोऽर्कोऽवताद्वः ॥ ८५ ॥

क्रामँल्लोलोऽपि लोकाँस्तदुपकृतिकृतावाश्रितः स्थैर्यकोटिं
नृणां दृष्टिं विजिह्मा विदधदपि करोत्यन्तरत्यन्तभद्राम्।
यस्तापस्यापि हेतुर्भवति नियमिनामेकनिर्वाणदायी
भूयात्स प्रागवस्थाधिकतरपरिणामोदयोऽर्कः श्रिये वः ॥ ८६ ॥

व्यापन्नर्तुर्न कालो व्यभिचरति फलं नौषधीर्वृष्टिरिष्टा
नेष्टैस्तृप्यन्ति देवा नहि वहति मरुन्निर्मलाभानि भानि।
आशाः शान्ता न भिन्दत्यवधिमुदधयो बिभ्रति क्ष्माभृतः क्ष्मां
यस्मिस्त्रैलोक्यमेवं न चलति तपति स्तात्स सूर्यः श्रिये वः ॥ ८७ ॥

कैलासे कृत्तिवासा विहरति विरहत्रासदेहोढकान्तः
श्रान्तः शेते महाह्रावधिजलधि विना छद्मना पद्मनाभः।
योगोद्योगैकतानो गमयति सकलं वासरं स्वं स्वयंभू-
र्भूरित्रैलोक्यचिन्ताभृति भुवनविभौ यत्र भास्वान्स वोऽव्यात् ॥ ८८ ॥

एतद्यन्मण्डलं खे तपति दिनकृतस्ता ऋचोऽर्चींषि यानि
द्योतन्ते तानि सामान्ययमपि पुरुषो मण्डलेऽणुर्यजूंषि।
एवं यं वेद वेदत्रितयमयमयं वेदवेदी समग्रो
वर्गः स्वर्गापवर्गप्रकृतिरधिकृतिः सोऽस्तु सूर्यः श्रिये वः। ८९ ॥

नाकौकः प्रत्यनीकक्षतिपटुमहसां वासवाग्रेसराणां
सर्वेषां साधु पातां जगदिदमदितेरात्मजत्वे समेऽपि।
येनादित्याभिधानं निरतिशयगुणैरात्मनि न्यस्तमस्तु
स्तुत्यस्त्रैलोक्यवन्द्यैस्त्रिदशमुनिगणैः सोंऽशुमान् श्रेयसे वः ॥ ९० ॥

भूमिं धाम्नोऽभिवृष्ट्या जगति जलमयीं पावनीं संस्मृताव-
प्याग्नेयीं दाहशक्त्या मुहुरपि यजमानां यथाप्रार्थितार्थैः।
लीनामाकाश एवामृतकरघटिता ध्वान्तपक्षस्य पर्व-
ण्येवं सूर्योऽष्टभेदां भव इव भवतः पातु बिभ्रत्स्वमूर्तिम् ॥ ९१ ॥

प्राक्कालोन्निद्रपद्माकरपरिमलनाविर्भवत्पादशोभो
भक्त्यात्यक्तोरुखेदोद्गति दिवि विनतासूनुना नीयमानः।
सप्ताश्वाप्तापरान्तान्यधिकमधरयन् यो जगन्ति स्तुतोऽलं
देवैर्देवः स पायादपर इव मुरारादिरह्नां पतिर्वः ॥ ९२ ॥

यः स्रष्टाऽपां पुरस्तादचलवरसमभ्युन्नतेर्हेतुरेको
लोकानां यस्त्रयाणां स्थित उपरि परं दुर्विलङ्घ्येन धाम्ना।
सद्यःसिद्ध्यै प्रसन्नद्युतिशुभचतुराशामुखः स्ताद्विभक्तो
द्वेधा वेधा तवाविष्कृतकमलरुचिः सोऽर्चिषामाकरो वः ॥ ९३ ॥

साद्रिद्यूर्वीनदीशा दिशति दश दिशो दर्शयन्प्राग्दृशो यः
सादृश्यं दृश्यते नो सदशशतदृशि त्रैदशे यस्य देशे।
दीप्तांशुर्वः स दिश्यादशिवयुगदशादर्शितद्वादशात्मा
संशास्त्यश्वांश्च यस्याशयविदतिशयाद्दन्दशूकाशनाद्यः ॥ ९४ ॥

तीर्थानि व्यर्थकानि ह्रदनदसरसीनिर्झराम्भोजिनीनां
नोदन्वन्तो नुदन्ति प्रतिभयमशुभं श्वभ्रपातानुबन्धि।
आपो नाकापगाया अपि कलुषमुषो मज्जतां नैव यत्र
त्रातुं यातेऽन्यलोकान्स दिशतु दिवसस्यैकहेतुर्हितं वः ॥ ९५ ॥

एतत्पातालपङ्कप्लुतमिव तमसैवैकमुद्गाढमासी-
दप्रज्ञाताप्रतर्क्यं निरवगति तथाऽलक्षणं सुप्तमन्तः।
यादृक्सृष्टेः पुरस्तान्निशि निशि सकलं जायते तादृगेव
त्रैलोक्यं यद्वियोगादवतु रविरसौ सर्गतुल्योदयो वः ॥ ९६ ॥

द्वीपे योऽस्ताचलोऽस्मिन्भवति खलु स एवापरत्रोदयाद्रि-
र्या यामिन्युज्ज्वलेन्दुद्युतिरिह दिवसोऽन्यत्र तीव्रातपः सः।

यद्वश्यौ देशकालाविति नियमयतो नो तु यं देशकाला-
वध्यात्स स्वप्रभुत्वाहितभुवनहितो हेतुरह्नामिनो वा ॥ ९७ ॥

व्यग्रैरग्र्यग्रहेन्दुग्रसनगुरुभरैर्नो समग्रैरुदग्रै-
प्रैत्यग्रैरीषदुग्रैरुदयगिरिगतो गोगणैर्गैरयन्गाम् ।
उद्गाढार्चिर्विलीनाममरनगरनगग्रावगर्भामिवाह्ना-
मग्रे श्रेयो विधत्ते ग्लपयतु गहनं स ग्रहग्रामणीर्वः ॥ ९८ ॥

योनिः साम्नां विधाता मधुरिपुरजितो धूर्जटिः शङ्करोऽसौ
मृत्युः कालोऽलकायाः पतिरपि धनदः पावको जातवेदाः ।
इत्थं संज्ञा डवित्थादिवदमृतभुजां या यदृच्छाप्रवृत्ता-
स्तासामेकोऽभिधेयस्तदनुगुणगुणैर्यः स सूर्योऽवताद्वः ॥ ९९ ॥

देवः किं बान्धवः स्यात्प्रियसुहृदथवाचार्य आहोस्विदर्यो
रक्षा चक्षुर्नु दीपो गुरुरुत जनको जीवितं बीजमोजः ।
एवं निर्णीयते यः क इव न जगतां सर्वथा सर्वदाऽसौ
सर्वाकारोपकारी दिशतु दशशताभीषुरभ्यर्थितं वः ॥ १०० ॥

श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति रचिताः श्रीमयूरेण भक्त्या
युक्तश्चैतान् पठेद्यः सकृदपि पुरुषः सर्वपापैर्विमुक्तः ।
आरोग्यं सत्कवित्वं मतिमतुलबलं कान्तिमायुः प्रकर्षं
विद्यामैश्वर्यमर्थं सुतमपि लभते सोऽत्र सूर्यप्रसादात् ॥ १०१ ॥

॥ इति श्रीमयूरकविरचितं सूर्यशतकं सम्पूर्णम् ॥

७६. सूर्याष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

साम्ब उवाच—

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर ।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥

लोहितं रथमारूढं सर्वलोकपितामहम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥

त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्माविष्णुमहेश्वरम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥

बृंहितं तेजःपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च ।
प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥

बन्धूकपुष्पसंकाशं हारकुण्डलभूषितम् ।
एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥

तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेजःप्रदीपनम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ७ ॥

तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञानविज्ञानमोक्षदम् ।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥ ८ ॥

सूर्याष्टकं पठेन्नित्यं ग्रहपीडाप्रणाशनम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान्भवेत् ॥ ९ ॥

आमिषं मधुपानं च यः करोति रवेर्दिने ।
सप्तजन्म भवेद्रोगी प्रतिजन्म दरिद्रता ॥ १० ॥

स्त्रीतैलमधुमांसानि यस्त्यजेत्तु रवेर्दिने ।
न व्याधिः शोकदारिद्र्यं सूर्यलोकं स गच्छति ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीसूर्याष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

७७. त्रैलोक्यमङ्गलं सूर्यकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीसूर्य उवाच—

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु मे कवचं शुभम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥
यज्ज्ञात्वा मन्त्रवित्सम्यक् फलं प्राप्नोति निश्चितम् ।
यद्धृत्वा च महादेवो गणानामधिपोऽभवत् ॥ २ ॥
पठनाद्धारणाद्विष्णुः सर्वेषां पालकः सदा ।
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥ ३ ॥
कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतः ।
श्रीसूर्यो देवता चात्र सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ४ ॥
यशआरोग्यमोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
प्रणवो मे शिरः पातु घृणिर्मे पातु भालकम् ॥ ५ ॥
सूर्योऽव्यान्नयनद्वन्द्वमादित्यः कर्णयुग्मकम् ।
अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ ६ ॥
ह्रीं बीजं मे मुखं पातु हृदयं भुवनेश्वरी ।
चन्द्रबिम्बं विंशदाद्यं पातु मे गुह्यदेशकम् ॥ ७ ॥
अक्षरोऽसौ महामन्त्रः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ।
शिवो वह्निसमायुक्तो वामाक्षीबिन्दुभूषितः ।
एकाक्षरो महामन्त्रः श्रीसूर्यस्य प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥
गुह्याद्गुह्यतरो मन्त्रो वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः ।
शीर्षादिपादपर्यन्तं सदा पातु मनूत्तमः ॥ ९ ॥
इति ते कथितं दिव्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
श्रीप्रद कान्तिदं नित्यं धनारोग्यविवर्धनम् ॥ १० ॥
कुष्ठादिरोगशमनं महाव्याधिविनाशनम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान्भवेत् ॥ ११ ॥

बहुना किमिहोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ।
तत्तत्सर्वं भवेत्तस्य कवचस्य च धारणात् ॥ १२ ॥

भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेताला न द्रष्टुमपि तं क्षमाः ॥ १३ ॥

दूरादेव पलायन्ते तस्य संकीर्तनादपि ॥ १४ ॥

भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागरुकुङ्कुमैः ।
रविवारे च संक्रान्त्यां सप्तम्यां च विशेषतः ।
धारयेत्साधकश्रेष्ठः स परो मे प्रियो भवेत् ॥ १५ ॥

त्रिलोहमध्यगं कृत्वा धारयेद्दक्षिणे करे ।
शिखायामथवा कण्ठे सोऽपि सूर्यो न संशयः ॥ १६ ॥

इति ते कथितं साम्ब त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ।
कवचं दुर्लभम् लोके तव स्नेहात्प्रकाशितम् ॥ १७ ॥

अज्ञात्वा कवचं दिव्यं यो जपेत्सूर्यमुत्तमम् ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीब्रह्मयामले त्रैलोक्यमङ्गलं नाम सूर्यकवचं सम्पूर्णम् ॥

७८. आदित्यहृदयम्

श्रीगणेशाय नमः

शतानीक उवाच—

कथमादित्यमुद्यन्तमुपतिष्ठेद्द्विजोत्तम ।
एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र प्रपद्ये शरणं तव ॥ १ ॥

सुमन्तुरुवाच—

इदमेव पुरा पृष्टं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
प्रणम्य शिरसा देवमर्जुनेन महात्मना ॥ २ ॥

कुरुक्षेत्रे महाराज प्रवृत्ते भारते रणे।
कृष्णनाथं समासाद्य प्रार्थयित्वाऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच—

ज्ञानं च धर्मशास्त्राणां गुह्याद्गुह्यतरं तथा।
मया कृष्ण परिज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम् ॥ ४ ॥
सूर्यस्तुतिमयं न्यासं वक्तुमर्हसि माधव।
भक्त्या पृच्छामि देवेश कथयस्व प्रसादतः ॥ ५ ॥
सूर्यभक्तिं करिष्यामि कथं सूर्यं प्रपूजयेत्।
तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्प्रसादेन यादव ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच—

रुद्रादिदैवतैः सर्वैः पृष्टेन कथितं मया।
वक्ष्येऽहं सूर्यविन्यासं शृणु पाण्डव यत्नतः ॥ ७ ॥
अस्माकं यत्त्वया पृष्टमेकचित्तो भवार्जुन।
तदहं संप्रवक्ष्यामि आदिमध्यावसानकम् ॥ ८ ॥

अर्जुन उवाच—

नारायण सुरश्रेष्ठ पृच्छामि त्वां महायशाः।
कथमादित्यमुद्यन्तमुपतिष्ठेत् सनातनम् ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

साधु पार्थ महाबाहो बुद्धिमानसि पाण्डव।
यन्मां पृच्छस्युपस्थानं तत्पवित्रं विभावसोः ॥ १० ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं (मङ्गल्यम्) सर्वपापप्रणाशनम्।
सर्वरोगप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥ ११ ॥
अमित्रदमनं पार्थ संग्रामे जयवर्धनम्।
वर्धनं धनपुत्राणामादित्यहृदयं शृणु ॥ १२ ॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं निःश्रेयसकरं परम् ॥ १३ ॥

देवदेवं नमस्कृत्य प्रातरुत्थाय चार्जुन ।
विघ्नान्यनेकरूपाणि नश्यन्ति स्मरणादपि ॥ १४ ॥

तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन सूर्यमावाहयेत्सदा ।
आदित्यहृदयं नित्यं जाप्यं तच्छृणु पाण्डव ॥ १५ ॥

यज्जपान्मुच्यते जन्तुर्दारिद्र्याद्याशु दुस्तरात् ।
लभते च महासिद्धि कुष्ठव्याधिविनाशिनीम् ॥ १६ ॥

अस्मिन्मन्त्रे ऋषिश्छन्दो देवता शक्तिरेव च ।
सर्वमेव महाबाहो कथयामि तवाग्रतः ॥ १७ ॥

मया ते गोपितं न्यासं सर्वशास्त्रप्रबोधितम् ।
अथ ते कथयिष्यामि उत्तमं मन्त्रमेव च ॥ १८ ॥

ॐ अस्य श्रीआदित्यहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीकृष्ण ऋषिः, श्रीसूर्यात्मा त्रिभुवनेश्वरो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, हरितहयरथं दिवाकरं घृणिरिति बीजम्, ॐ नमो भगवते जितवैश्वानरजातवेदस इति शक्तिः, ॐ नमो भगवते आदित्याय नमः इति कीलकम्, ॐ अग्निगर्भदेवता इति मन्त्रः, ॐ नमो भगवते तुभ्यमादित्याय नमो नमः । श्रीसूर्यनारायणप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः । अथ न्यासः ॥ ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ ह्रूं शिखायै वषट् । ॐ ह्रैं कवचाय हुम् । ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्रः अस्त्राय फट् । ॐ ह्रांह्रींह्रूंह्रैं ह्रौंह्रः इति दिग्बन्धः ॥ अथ ध्यानम् ॥

भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः ।
विश्वाकाशावकाशग्रहपतिशिखरे भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः ॥ १ ॥

पूर्वमष्टदलं पद्मं प्रणवादिप्रतिष्ठितम् ।
मायाबीजं दलाष्टाग्रे यन्त्रमुद्धारयेदिति ॥ २ ॥

आदित्यं भास्करं भानुं रविं सूर्यं दिवाकरम् ।
मार्तण्ड तपनं चेति दलेष्वष्टसु योजयेत् ॥ ३ ॥

दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा ।
अमोघा विद्युता चेति मध्ये श्रीः सर्वतोमुखी ॥ ४ ॥

सर्वज्ञः सर्वगश्चैव सर्वकारणदेवता ।
सर्वेशं सर्वहृदयं नमामि सर्वसाक्षिणम् ॥ ५ ॥

सर्वात्मा सर्वकर्ता च सृष्टिजीवनपालकः ।
हितः स्वर्गापवर्गस्य भास्करेश नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

॥ इति प्रार्थना ॥

नमो नमस्तेऽस्तु सदा विभावसो सर्वात्मने सप्तहयाय भानवे ।
अनन्तशक्तिर्मणिभूषणेन ददस्व भुक्तिं मम मुक्तिमव्ययाम् ॥ ७ ॥

अर्कं तु मूर्ध्नि विन्यस्य ललाटे च रविं न्यसेत् ।
विन्यसेन्नेत्रयोः सूर्यं कर्णयोश्च दिवाकरम् ॥ ८ ॥

नासिकायां न्यसेद्भानुं मुखे वै भास्करं न्यसेत् ।
पर्जन्यमोष्ठयोश्चैव तीक्ष्णं जिह्वान्तरे न्यसेत् ॥ ९ ॥

सुवर्णरेतसं कण्ठे स्कन्धयोस्तिग्मतेजसम् ।

बाह्वोस्तु पूषणं चैव मित्रं वै पृष्ठतो न्यसेत् ॥ १० ॥
वरुणं दक्षिणे हस्ते त्वष्टारं वामतः करे ।
हस्तावुष्णकरः पातु हृदयं पातु भानुमान् ॥ ११ ॥

उदरे तु यमं विद्यादादित्यं नाभिमण्डले ।
कट्यां तु विन्यसेद्धंसं रुद्रमूर्वोस्तु विन्यसेत् ॥ १२ ॥
जान्वोस्तु गोपतिं न्यस्य सवितारं तु जङ्घयोः
पादयोश्च विवस्वंतं गुल्फयोश्च दिवाकरम् ॥ १३ ॥

वाह्यतस्तु तमोध्वंसं भगमभ्यन्तरे न्यसेत् ।
सर्वाङ्गेषु सहस्रांशुं दिग्विदिक्षु भगं न्यसेत् ॥ १४ ॥

॥ इति दिग्बन्धः ॥

एष आदित्यविन्यासो देवानामपि दुर्लभः ।
इमं भक्त्या न्यसेत्पार्थ स याति परमां गतिम् ॥ १५ ॥

कामक्रोधकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।
सर्पादपि भयं नैव संग्रामेषु पथेष्वपि ॥ १६ ॥

रिपुसंघट्टकालेषु तथा चोरसमागमे ।
त्रिसन्ध्यं जपतो न्यासं महापातकनाशनम् ॥ १७ ॥

विस्फोटकसमुत्पन्नं तीव्रज्वरसमुद्भवम् ।
शिरोरोगं नेत्ररोगं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १८ ॥

कुष्ठव्याधिस्तथा दद्रूरोगाश्च विविधाश्च ये ।
जपमानस्य नश्यन्ति शृणु भक्त्या तदर्जुन ॥ १९ ॥

आदित्यो मन्त्रसंयुक्त आदित्यो भुवनेश्वरः ।
आदित्यान्नापरो देवो ह्यादित्यः परमेश्वरः ॥ २० ॥

आदित्यमर्चयेद्ब्रह्मा शिव आदित्यमर्चयेत् ।
यदादित्यमयं तेजा मम तेजस्तदर्जुन ॥ २१ ॥

आदित्यं मन्त्रसंयुक्तमादित्यं भुवनेश्वरम् ।
आदित्यं ये प्रपश्यन्ति मां पश्यन्ति न संशयः ॥ २२ ॥

त्रिसन्ध्यमर्चयेत्सूर्यं स्मरेद्भक्त्या तु यो नरः ।
न स पश्यति दारिद्र्यं जन्मजन्मनि चार्जुन ॥ २३ ॥

एतत्ते कथितं पार्थ आदित्यहृदयं मया ।
शृण्वन्मुक्तश्च पापेभ्यः सूर्यलोके महीयते ॥ २४ ॥

नमो भगवते तुभ्यमादित्याय नमो नमः ।
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ॥२५॥

सुवर्णः स्फटिको भानुः स्फुरितो विश्वतापनः ।
रविर्विश्वो महातेजाः सुवर्णः सुप्रबोधकः ॥ २६ ॥
हिरण्यगर्भस्त्रिशिरास्तपनोः भास्करो रविः ।
मार्तण्डो गोपतिः श्रीमान् कृतज्ञश्च प्रतापवान् ॥ २७ ॥

तमिस्रहा भगो हंसो नासत्यश्च तमोनुदः ।
शुद्धो विरोचनः केशी सहस्रांशुर्महाप्रभुः ॥ २८ ॥
विवस्वान् पूषणो मृत्युर्मिहिरो जामदग्न्यजित् ।
धर्मरश्मिः पतङ्गश्च शरण्योऽमित्रहा तपः ॥ २९ ॥

दुर्विज्ञेयगतिः शूरस्तेजोराशिर्महायशाः ।
शम्भुश्चित्राङ्गदः सौम्यो हव्यकव्यप्रदायकः ॥ ३० ॥
अंशुमानुत्तमो देव ऋग्यजुः साम एव च ।
हरिदश्वस्तमोदारः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ॥ ३१ ॥

अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शम्भुस्तिमिरनाशनः ।
पूषा विश्वम्भरो मित्रः सुवर्णः सुप्रतापवान् ॥ ३२ ॥
आतपी मण्डली भास्वाँस्तपनः सर्वतापनः ।
कृतविश्वो महातेजाः सर्वरत्नमयोद्भवः ॥ ३३ ॥

अक्षरश्च क्षरश्चैव प्रभाकरविभाकरौ ।
चन्द्रचन्द्राङ्गदः सौम्यो हव्यकव्यप्रदायकः ॥ ३४ ॥
अङ्गारको गदोऽगस्ती रक्ताङ्गश्चाङ्गवर्धनः ।
बुधो बुद्धासनो बुद्धिर्बुद्धात्मा बुद्धिवर्धनः ॥ ३५ ॥

बृहद्भानुर्बृहद्भासी बृहद्धामाः बृहस्पतिः ।
शुक्लस्तवं शुक्लरेतास्त्वं शुक्लाङ्गः शुक्लभूषणः ॥ ३६ ॥

शनिमान् शनिरूपस्त्वं शनैर्गच्छसि सर्वदा ।
अनादिरादिरादित्यस्तेजोराशिर्महातपाः ॥ ३७ ॥

अनादिरादिरूपस्त्वमादित्यो दिक्पतिर्यमः ।
भानुमान् भानुरूपस्त्वं स्वर्भानुर्भानुदीप्तिमान् ॥ ३८ ॥

धूमकेतुर्महाकेतुः सर्वकेतुरनुत्तमः ।
तिमिरावरणः शम्भुः स्रष्टा मार्तण्ड एव च ॥ ३९ ॥
नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमाय नमो नमः ।
नमोत्तराय गिरये दक्षिणाय नमो नमः ॥ ४० ॥

नमो नमः सहस्रांशो ह्यादित्याय नमो नमः ।
नमः पद्मप्रबोधाय नमस्ते द्वादशात्मने ॥ ४१ ॥
नमो विश्वप्रबोधाय नमो भ्राजिष्णुजिष्णवे ।
ज्योतिषे च नमस्तुभ्यं ज्ञानार्काय नमो नमः ॥ ४२ ॥

प्रदीप्ताय प्रगल्भाय युगान्ताय नमो नमः ।
नमस्ते होतृपतये पृथिवीपतये नमः ॥ ४३ ॥

नमोङ्कार वषट्कार सर्वयज्ञ नमोऽस्तु ते ।
ऋग्वेदाय यजुर्वेद सामवेद नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥
नमो हाटकवर्णाय भास्कराय नमो नमः ।
जयाय जयभद्राय हरिदश्वाय ते नमः ॥ ४५ ॥
दिव्याय दिव्यरूपाय ग्रहाणां पतये नमः ।
नमस्ते शुचये नित्यं नमः कुरुकुलात्मने ॥ ४६ ॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतानां पतये नमः ।
नमः कैवल्यनाथाय नमस्ते दिव्यचक्षुषे ॥ ४७ ॥

त्वं ज्योतिस्त्वं द्युतिर्ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।
त्वमेव रुद्रो रुद्रात्मा वायुरग्निस्त्वमेव च ॥ ४८ ॥
योजनानां सहस्रे द्वे शते द्वे द्वे च योजने ।
एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते ॥ ४९ ॥

नवयोजनलक्षाणि सहस्रत्रिशतानि च ।
यावद्घटीप्रमाणेन क्रममाण नमोऽस्तु ते ॥ ५० ॥
अग्रतश्च नमस्तुभ्यं पृष्ठतश्च सदा नमः ।
पार्श्वतश्च नमस्तुभ्यं नमस्ते चास्तु सर्वदा ॥ ५१ ॥

नमः सुरारिहन्त्रे च सोमसूर्याग्निचक्षुषे ।
नमो दिव्याय व्योमाय सर्वतन्त्रमयाय च ॥ ५२ ॥
नमो वेदान्तवेद्याय सर्वकर्मादिसाक्षिणे ।
नमो हरितवर्णाय सुवर्णाय नमो नमः ॥ ५३ ॥

अरुणो माघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा ।
चैत्रमासे तु वेदाङ्गो भानुर्वैशाखतापनः ॥ ५४ ॥

ज्येष्ठमासे तपेदिन्द्र आषाढे तपते रविः ।
गभस्तिः श्रावणे मासि यमो भाद्रपदे तथा ॥ ५५ ॥

इषे सुवर्णरेताश्च कार्तिके च दिवाकरः ।
मार्गशीर्षे तपेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः ॥ ५६ ॥

पुरुषस्त्वधिके मासे मासाधिक्ये तु कल्पयेत् ।
इत्येते द्वादशादित्याः काश्यपेयाः प्रकीर्तिताः ॥ ५७ ॥
उग्ररूपा महात्मानस्तपन्ते विश्वरूपिणः ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रस्फुटा हेतवो नृप ॥ ५८ ॥
सर्वपापहरं चैवमादित्यं सम्प्रपूजयेत् ।
एकधा दशधा चैव शतधा च सहस्रधा ॥ ५९ ॥

तपन्ते विश्वरूपेण सृजन्ति संहरन्ति च ।
एष विष्णुः शिवश्चैव ब्रह्मा चैव प्रजापतिः ॥ ६० ॥
महेन्द्रश्चैव कालश्च यमो वरुण एव च ।
नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वतापनः ॥ ६१ ॥

वायुरग्निर्धनाध्यक्षो भूतकर्ता स्वयं प्रभुः ।
एष देवो हि देवानां सर्वमाप्यायते जगत् ॥ ६२ ॥
एष कर्ता हि भूतानां संहर्ता रक्षकस्तथा ।
एष लोकानुलोकाश्च सप्तद्वीपाश्च सागराः ॥ ६३ ॥

एष पातालसप्तस्था दैत्यदानवराक्षसाः ।
एष धाता विधाता च बीजं क्षेत्रं प्रजापतिः ॥ ६४ ॥

एक एव प्रजा नित्यं संवर्धयति रश्मिभिः ।
एष यज्ञः स्वधा स्वाहा ह्रीः श्रीश्च पुरुषोत्तमः॥ ६५ ॥

एष भूतात्मको देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
ईश्वरः सर्वभूतानां परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ६६ ॥

कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः।
जन्ममृत्युजराव्याधिसंसारभयनाशनः ॥ ६७ ॥

दारिद्र्यव्यसनध्वंसी श्रीमान्देवो दिवाकरः ।
कीर्तनीयो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः ॥ ६८ ॥

लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ।
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा ॥ ६९ ॥

तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः ।
गभस्तिहस्तो ब्रह्मण्यः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ७० ॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं नरा नार्यश्च मन्दिरे ।
यस्य प्रसादात्सन्तुष्टिरादित्यहृदयं जपेत् ॥ ७१ ॥

इत्येतैर्नामभिः पार्थ आदित्यं स्तौति नित्यशः।
प्रातरुत्थाय कौंतेय तस्य रोगभयं नहि ॥ ७२ ॥

पातकान्मुच्यते पार्थ व्याधिभ्यश्च न संशयः ।
एकसन्ध्यं द्विसन्ध्यं वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७३ ॥

त्रिसन्ध्यं जपमानस्तु पश्येच्च परमं पदम् ।
यदह्ना कुरुते पापं तदह्ना प्रतिमुच्यते ॥ ७४ ॥

यद्रात्र्या कुरुते पापं तद्रात्र्या प्रतिमुच्यते ।
दद्रुस्फोटककुष्ठानि मण्डलानि विपूचिका ॥ ७५ ॥

सर्वव्याधिमहारोगभूतबाधास्तथैव च ।
डाकिनी शाकिनी चैव महारोगभयं कुतः ॥ ७६ ॥

ये चान्ये दुष्टरोगाश्च ज्वरातीसारकादयः ।
जपमानस्य नश्यन्ति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ७७ ॥

अशीर्षां पश्यति च्छायामहोरात्रं धनञ्जय ।
संवत्सरेण मरणं तदा तस्य ध्रुवं भवेत् ।
तथापि पठनादस्य मृतिभीर्न हि जायते ॥ ७८ ॥

यस्त्विदं पठते भक्त्या भानोर्वारे महात्मनः ।
प्रातःस्नाने कृते पार्थ ! एकाग्रकृतमानसः ॥ ७९ ॥
सुवर्णचक्षुर्भवति न चान्धस्तु प्रजायते ।
पुत्रवान् धनसम्पन्नो जायते चारुजः सुखी ॥ ८० ॥

सर्वसिद्धिमवाप्नोति सर्वत्र विजयी भवेत् ।
आदित्यहृदयं पुण्यं सूर्यनामविभूषितम् ॥ ८१ ॥

श्रुत्वा च निखिलं पार्थ सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अतः परतरं नास्ति सिद्धिकामस्य पाण्डव ॥ ८२ ॥

एतज्जपस्य कौन्तेय येन श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ।
आदित्यहृदयं नित्यं यः पठेत्सुसमाहितः ॥ ८३ ॥

भ्रूणहा मुच्यते पापात्कृतघ्नो ब्रह्मघातकः ।
गोघ्नः सुरापो दुर्भोजी दुष्प्रतिग्रहकारकः ॥ ८४ ॥

पातकानि च सर्वाणि दहत्येव न संशयः ।
य इदं शृणुयान्नित्यं जपेद्वापि समाहितः ॥ ८५ ॥
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते ।
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनमाप्नुयात् ॥ ८६ ॥

कुरोगी मुच्यते रोगाद्भक्त्या यः पठते सदा ।
यस्त्वादित्यदिने पार्थ नाभिमात्रजले स्थितः ॥ ८७ ॥

उदयाचलमारूढं भास्करं प्रणतः स्थितः ।
जपते मानवो भक्त्या शृणुयाद्वापि भक्तितः ॥ ८८ ॥

स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ।
अमित्रदमनं पार्थ यदा कर्तुं समारभेत् ॥ ८९ ॥

तदा प्रतिकृतिं कृत्वा शत्रोश्चरणपांसुभिः।
आक्रम्य वामपादेन ह्यादित्यहृदयं जपेत् ॥ ९० ॥

एतन्मन्त्रं समाहूय सर्वसिद्धिकरं परम्।
ॐ ह्रीं हिमालीढं स्वाहा। ॐ ह्रीं निलीढं
स्वाहा। ॐ ह्रोमालीढं स्वाहा। इति मन्त्रः ॥

त्रिभिश्च रोगी भवति ज्वरी भवति पञ्चभिः।
जपैस्तु सप्तभिः पार्थ राक्षसीं तनुमाविशेत् ॥ ९१ ॥

राक्षसेनाभिभूतस्य विकारान् शृणु पाण्डव।
गीयते नृत्यते नग्न आस्फोटयति धावति ॥ ९२ ॥

शिवारुतं च कुरुते हसते क्रन्दते पुनः।
एवं सम्पीड्यते पार्थ यद्यपि स्यान्महेश्वरः ॥ ९३ ॥

किं पुनर्मानुषः कश्चिच्छौचाचारविवर्जितः।
पीडितस्य न सन्देहो ज्वरो भवति दारुणः ॥ ९४ ॥

यदा चानुग्रहं तस्य कर्तुमिच्छेच्छुभंकरम्।
तदा सलिलमादाय जपेन्मन्त्रमिमं बुधः ॥ ९५ ॥

नमो भगवते तुभ्यमादित्याय नमो नमः।
जयाय जयभद्राय हरिदश्वाय ते नमः ॥ ९६ ॥

स्नापयेत्तेन मन्त्रेण शुभं भवति नान्यथा।
अन्यथा च भवेद्दोषो नश्यते नात्र संशयः ॥ ९७ ॥

अतस्ते निखिलः प्रोक्तः पूजां चैव निबोध मे।
उपलिप्ते शुचौ देशे नियतो वाग्यतः शुचिः ॥ ९८ ॥

वृत्तं वा चतुरस्रं वा लिप्तभूमौ लिखेच्छुचि।
त्रिधा तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ९९ ॥

अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं लिप्तगोमयमण्डले।
पूर्वपत्रे लिखेत् सूर्यमाग्नेय्यां तु रविं न्यसेत् ॥ १०० ॥

यास्यायां च विवस्वन्तं नैर्ऋत्यां तु भगं न्यसेत् ।
प्रतीच्यां वरुण विद्याद्वायव्यां मित्रमेव च ॥ १०१ ॥
आदित्यमुत्तरे पत्रे ईशान्यां मित्रमेव च ।
मध्ये तु भास्करं विद्यात्क्रमेणैवं समर्चयेत् ॥ १०२ ॥

अतः परतरं नास्ति सिद्धिकामस्य पाण्डव ।
महातेजः समुद्यन्तं प्रणमेत्स कृताञ्जलिः ॥ १०३ ॥
सकेसराणि पद्मानि करवीराणि चार्जुन ।
तिलतण्डुलयुक्तानि कुशगन्धोदकानि च ॥ १०४ ॥
रक्तचन्दनमिश्राणि कृत्वा वै ताम्रभाजने ।
धृत्वा शिरसि तत्पात्रं जानुभ्यां धरणीं स्पृशेत् ॥ १०५ ॥

मन्त्रपूतं गुडाकेश चार्घ्यं दद्याद्गभस्तये ।
सायुधं सरथं चैव सूर्यमावाहयाम्यहम् ॥ १०६ ॥

स्वागतो भव । सुप्रतिष्ठितो भव । सन्निधो भव ।
संनिहितो भव । सम्मुखो भव । इति पञ्चमुद्राः ॥
स्फुटयित्वाऽर्हयेत्सूर्यं भुक्ति मुक्ति लभेन्नरः ॥ १०७ ॥

ॐ श्रीं विद्याकिलिकीलिकटकेष्टसर्वार्थसाधनाय स्वाहा ।
ॐ श्रीं ह्रीं ह्रूं हंसः सूर्याय नमः स्वाहा ।
ॐ श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः सूर्यमूर्तये स्वाहा ।
ॐ श्रीं ह्रीं खं खः लोकाय सर्वमूर्तये स्वाहा ।
ॐ ह्रूं मार्तण्डाय स्वाहा ।

नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रभानवे नमोऽस्तु वैश्वानरजातवेदसे ।
त्वमेव चार्घ्यं प्रतिगृह्ण देव देवाधिदेवाय नमो नमस्ते ॥ १०८ ॥

नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे ।
दत्तमर्घ्यं मया भानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते ॥ १०९ ॥
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्पय मां देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ११० ॥

नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे ।
ममेदमर्घ्यं गृह्ण त्वं देवदेव नमोऽस्तु ते ॥ १११ ॥

सर्वदेवाधिदेवाय आधिव्याधिविनाशिने ।
इदं गृहाण मे देव सर्वव्याधिर्विनश्यतु ॥ ११२ ॥

नमः सूर्याय शान्ताय सर्वरोगविनाशिने ।
ममेप्सितं फलं दत्त्वा प्रसीद परमेश्वर ॥ ११३ ॥

ॐ नमो भगवते सूर्याय स्वाहा । ॐ शिवाय स्वाहा ।
ॐ सर्वात्मने सूर्याय नमः स्वाहा । ॐ अक्षय्यतेजसे नमः स्वाहा ।

सर्वसङ्कटदारिद्र्यं शत्रुं नाशय नाशय ।
सर्वलोकेषु विश्वात्मन्सर्वात्मन् सर्वदर्शक ॥ ११४ ॥

नमो भगवते सूर्य कुष्ठरोगान्विखण्डय ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देव नमोऽस्तु ते ॥ ११५ ॥

नमो भगवते तुभ्यमादित्याय नमो नमः ।
ॐ अक्षय्यतेजसे नमः । ॐ सूर्याय नमः ।
ॐ विश्वमूर्तये नमः ।
आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम् ।
उभयोरन्तरं नास्ति आदित्यस्य शिवस्य च ॥ ११६ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पुरुषो वै दिवाकरः ।
उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः ॥ ११७ ॥

अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः ।
नमो भगवते तुभ्यं विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ ११८ ॥

ममेदमर्घ्यं प्रतिगृह्ण देव देवाधिदेवाय नमो नमस्ते ।
श्रीसूर्यनारायणाय साङ्गाय सपरिवाराय इदमर्घ्यं समर्पयामि ॥११९॥

हिमघ्नाय तमोघ्नाय रक्षोघ्नाय च ते नमः ।
कृतघ्नघ्नाय सत्याय तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥ १२० ॥

जयोऽजयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः ।
मनाजवो जितक्रोधो वाजिनः सप्त कीर्तिताः ॥ १२१ ॥

हरितहयरथं दिवाकरं कनकमयाम्बुजरेपिंजरम् ।
प्रतिदिनमुदये नवं नवं शरणमुपैमि हिरण्यरेतसम् ॥ १२२ ॥

न तं व्यालाः प्रबाधन्ते न व्याधिभ्यो भयं भवेत् ।
न नागेभ्यो भयं चैव न च भूतभयं क्वचित् ॥ १२३ ॥

अग्निशत्रुभयं नास्ति पार्थिवेभ्यस्तथैव च ।
दुर्गति तरते घोरां प्रजां च लभते पशून् ॥ १२४ ॥

सिद्धिकामो लभेत्सिद्धिं कन्याकामस्तु कन्यकाम् ।
एतत्पठेत्स कौन्तेय भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ १२५ ॥

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ।
कन्याकोटिसहस्रस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ॥ १२६ ॥

इदमादित्यहृदयं योऽधीते सततं नरः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते ॥ १२७ ॥

नास्त्यादित्यसमो देवो नास्त्यादित्यसमा गतिः ।
प्रत्यक्षो भगवान्विष्णुर्येन विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १२८ ॥

नवतिर्योजनं लक्षं सहस्राणि शतानि ।
यावद्घटीप्रमाणेन तावच्चरति भास्करः ॥ १२९ ॥

गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ।
तत्फलं लभते विद्वान् शांतात्मा स्तौति यो रविम् ॥ १३० ॥

योऽधीते सूर्यहृदयं सकलं सफलं भवेत् ।
अष्टानां ब्राह्मणानां च लेखयित्वा समर्पयेत् ॥ १३१ ॥

ब्रह्मलोके ऋषीणां च जायते मानुषोऽपि वा ।
जातिस्मरत्वमाप्नोति शुद्धात्मा नात्र संशयः ॥ १३२ ॥

अजाय लोकत्रयपावनाय भूतात्मने गोवृतये पषाय ।
सूर्याय सर्वप्रलयांतकाय नमो महाकारुणिकोत्तमाय ॥ १३३ ॥

विवस्वते ज्ञानभृदन्तरात्मने जगत्प्रदीपाय जगद्धितैषिणे ।
स्वयंभुवे दीप्तसहस्रचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥ १३४ ॥
सुरैरनेकैः परिसेविताय हिरण्यगर्भाय हिरण्मयाय ।
महात्मने मोक्षप्रदाय नित्यं नमोऽस्तु ते वासरकारणाय ॥ १३५ ॥

आदित्यश्चार्चितो देव आदित्यः परमं पदम् ।
आदित्यो मातृको भूत्वा आदित्यो वाङ्मयं जगत् ॥ १३६ ॥
आदित्यं पश्यतेऽभक्त्या मां पश्यति ध्रुवं नरः ।
आदित्यं पश्यते भक्त्या न स पश्यति मां नरः ॥ १३७ ॥

त्रिगुणं च त्रितत्त्वं च त्रयो देवास्त्रयोऽग्नयः ।
त्रयाणां च त्रिमूर्तिस्त्वं तुरीयस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥ १३८ ॥

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरिंचिनारायणशङ्करात्मने ॥ १३९ ॥
यस्योदयेनेह जगत्प्रबुध्यते प्रवर्तते चखिलकर्मसिद्धये ।
ब्रह्मेन्द्रनारायणरुद्रवन्दितः स नः सदा यच्छतु मङ्गलं रविः ॥ १४० ॥
नमोऽस्तु सूर्याय सहस्ररश्मये सहस्रशाखान्वितसंभवात्मने ।
सहस्रयोगोद्भवभावभागिने सहस्रसंख्यायुगधारिणे नमः ॥ १४१ ॥

यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम् ।
दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४२ ॥
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः स्तुतं भावनमुक्तिकोविदम् ।
तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४३ ॥
यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम् ।
समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४४ ॥
यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम् ।
यत्सर्वपापक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४५ ॥
यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्यजुःसामसु संप्रगीतम् ।
प्रकाशितं येन च भूर्भुवःस्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४६ ॥

यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः ।
यद्योगिनो योगजुषां च संघाः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४७ ॥
यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके ।
यत्कालकालादिमनादिरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४८ ॥
यन्मण्डलं विष्णुचतुर्मुखाख्यं यदक्षरं पापहरं जनानाम् ।
यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १४९ ॥
यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धमुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम् ।
यस्मिञ्जगत्संहरतेऽखिलं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १५० ॥
यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम् ।
सूक्ष्मांतरैर्योगपथानुगम्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १५१ ॥
यन्मण्डलं ब्रह्मविदो विदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः ।
यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १५२ ॥
यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपथानुगम्यम् ।
तत्सर्ववेदं प्रणयामि सूर्यं पुनात मां 'तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥ १५३ ॥
मण्डलाष्टमिदं पुण्यं यः पठेत्सततं नरः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते ॥ १५४ ॥
ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥१५५॥
सशङ्खचक्रं रविमण्डले स्थितं कुशेशयाक्रांतमनंतमच्युतम् ।
भजामि बुद्धया तपनीयमूर्ति चित्रविभूषणोज्ज्वलम् ॥ १५६ ॥

एवं ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः ।
कीर्तयंति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं विभुम् ॥ १५७ ॥
वेदवेदांगशरीरं दिव्यदीप्तिकरं परम् ।
रक्षोघ्नं रक्तवर्णं च सृष्टिसंहारकारकम ॥ १५८ ॥
एकचक्रो रथो यस्य दिव्यः कनकभूषितः ।
स मे भवतु सुप्रीतः पद्महस्तो दिवाकरः ॥ १५९ ॥

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः ।
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः ॥ १६० ॥
पञ्चमं तु सहस्रांशुः षष्ठं चैव त्रिलोचनः ।
सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं तु विभावसुः ॥ १६१ ॥
नवमं दिनकृत्प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मकम् ।
एकादशं त्रयीमूर्तिर्द्वादशं सूर्य एव च ॥ १६२ ॥
द्वादशादित्यनामानि प्रातःकाले पठेन्नरः ।
दुःखप्रणाशनं चैव सर्वदुःखं च नश्यति ॥ १६३ ॥
दद्रूकुष्ठहरं चैव दारिद्र्यं हरते ध्रुवम् ।
सर्वतीर्थप्रदं चैव सर्वकामप्रवर्धनम् ॥ १६४ ॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय भक्त्या दित्यमिदं नरः ।
सौख्यमायुस्तथाऽऽरोग्यं लभते मोक्षमेव च ॥ १६५ ॥
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषेत्वोर्जेस्वरूपिणे ।
अग्न आयाहि वीतस्त्वं नमस्ते ज्योतिषां पते ॥ १६६ ॥
शं नो देवी नमस्तुभ्यं जगच्चक्षुर्नमोऽस्तु ते :
पञ्चमायोपवेदाय नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥ १६७ ॥
पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।
सप्ताश्वरथसंयुक्तो द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥ १६८ ॥
आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
जन्मांतरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥ १६९ ॥
उदयगिरिमुपेतं भास्करं पद्महस्तं निखिलभुवननेत्रं रत्नरत्नोपमेयम् ।
तिमिरकरिमृगेंद्रं बोधकं पद्मिनीनां सुरवरमभिवन्दे सुन्दरंविश्वन्द्यम् ॥१७०॥

॥ इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
आदित्यहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

७९. सूर्याघ्यार्थं सप्ततिनामावली

श्रीगणेशाय नमः श्रीसूर्याय नमः

अथ प्रातः स्नानं कृत्वा बहिरेव पवित्रे स्थले गोमयेनोपलिप्ते रक्तचन्दन-मिश्रिताक्षतदूर्वाङ्कुर-करवीरादिकुसुमान्यादाय कुशत्रयतिलजलानि च गृहीत्वा सङ्कल्पं कुर्यात् । तत्र अग्रे अमुकक्षेत्रे अमुकनामसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकदिवसे अमुकगोत्रस्य अमुकनाम्नो मम वर्तमाने शरीरे ऐहिक-जन्मान्तरार्जित- कायिक-वाचिक - मानसिक-सांसर्गिक-ज्ञाताज्ञात - पाप - सर्वपापजन्य - रोग - दारिद्र्यादिप्रशमनपूर्वकं सकलरुग्भ्रष्टितशमनाय विनावैद्य - विनाचिकित्सा - विनौषधि - पूर्णस्वास्थ्यलाभाय दारिद्र्यदिनाशदुखाभावन्तकालिक-सूर्यलोकेमहितवकामा अहं हंसादि-सप्ततिनामभिः सूर्याय अर्घ्यसमर्पणंकरिष्ये ।

१. ॐ हंसाय नमः ।
२. ॐ भानवे नमः ।
३. ॐ सहस्रांशवे नमः ।
४. ॐ तपनाय नमः ।
५. ॐ तापनाय नमः ।
६. ॐ रवये नमः ।
७. ॐ विकर्तनाय नमः ।
८. ॐ विवस्वते नमः ।
९. ॐ विश्वकर्मणे नमः ।
१०. ॐ विभावसे नमः ।
११. ॐ विश्वरूपाय नमः ।
१२. ॐ विश्वकर्त्रे नमः ।
१३. ॐ मार्तण्डाय नमः ।
१४. ॐ मिहिराय नमः ।
१५. ॐ अंशुमते नमः ।
१६. ॐ आदित्याय नमः ।
१७. ॐ उष्णगवे नमः ।
१८. ॐ सूर्याय नमः ।
१९. ॐ अर्यम्णे नमः ।
२०. ॐ ब्रध्नाय नमः ।
२१. ॐ दिवाकराय नमः ।
२२. ॐ द्वादशात्मने नमः ।
२३. ॐ सप्तहयाय नमः ।
२४. ॐ भास्कराय नमः ।
२५. ॐ अहस्कराय नमः ।
२६. ॐ खगाय नमः ।
२७. ॐ सूराय नमः ।
२८. ॐ प्रभाकराय नमः ।

२९. ॐ श्रीमते नमः ।
३०. ॐ लोकचक्षुषे नमः ।
३१. ॐ ग्रहेश्वराय नमः ।
३२. ॐ त्रिलोकेशाय नमः ।
३३. ॐ लोकसाक्षिणे नमः ।
३४. ॐ तमोऽरये नमः ।
३५. ॐ शाश्वताय नमः ।
३६. ॐ शुचये नमः ।
३७. ॐ गभस्तिहस्ताय नमः ।
३८. ॐ तीव्रांशवे नमः ।
३९. ॐ तरणये नमः ।
(सुमहसे नमः) ।
४०. ॐ सुमहोरणये नमः ।
(अरणये नमः) ।
४१. ॐ द्युमणये नमः ।
४२. ॐ हरिदश्वाय नमः ।
४३. ॐ अर्काय नमः ।
४४. ॐ भानुमते नमः ।
४५. ॐ भयनाशनाय नमः ।
४६. ॐ छन्दों (छन्दो) श्वाय नमः ।
४७. ॐ वेदवेद्याय नमः ।
४८. ॐ भास्वते नमः ।
४९. ॐ पूष्णे नमः ।
५०. ॐ वृषाकपये नमः ।
५१. ॐ एकचक्ररथाय नमः ।
५२. ॐ मित्राय नमः ।
५३. ॐ मन्देहारये नमः ।
५४. ॐ तमिस्रघ्ने नमः ।
५५. ॐ दैत्यघ्ने (घ्नाय) नमः ।
५६. ॐ पापहर्त्रे नमः ।
५७. ॐ घ (घ)र्माय नमः ।
५८. ॐ घ (घ)र्मप्रकाशकाय नमः ।
५९. ॐ हेलिकाय नमः ।
६०. ॐ चित्रभानवे नमः ।
६१. ॐ कलिघ्नाय नमः ।
६२. ॐ ताक्ष्यंबहनाय नमः ।
६३. ॐ दिक्पतये नमः ।
६४. ॐ पद्मिनीनाथाय नमः ।
६५. ॐ कुशेशयकराय नमः ।
६६. ॐ हरये नमः ।
६७. ॐ घर्मरश्मये नमः ।
६८. ॐ दुर्निरीक्ष्याय नमः ।
६९. ॐ चण्डांशवे नमः ।
७०. ॐ कश्यपात्मजाय नमः ।

ॐ नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।
जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मसाक्षिणे ॥ १ ॥
जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥ २ ॥

इति शुभम्

हंसो भानुः सहस्रांशुस्तपनस्तापनो रविः ।
विकर्तनो विवस्वांश्च विश्वकर्मा विभावसुः ॥ ३ ॥
विश्वरूपो विश्वकर्ता मार्तण्डो मिहिरोंऽशुमान् ।
आदित्यश्चोष्णगुः सूर्योऽर्यमा ब्रध्नो दिवाकरः ॥ ४ ॥
द्वादशात्मा सप्तहयो भास्करोऽहस्करः खगः ।
सूरः प्रभाकरः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥ ५ ॥
त्रिलोकेशो लोकसाक्षी तमोरिः शाश्वतः शुचिः ।
गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्तरणिः सुमहोरणिः ॥ ६ ॥
द्युमणिर्हरिदश्वोऽर्को भानुमान्भयनाशनः ।
छन्दोश्वो (छन्दांशुः) वेदवेद्यश्च भास्वान्पूषा वृषाकपिः ॥ ७ ॥
एकचक्ररथो मित्रो मन्देहारिस्तमिस्रहा ।
दैत्यहा पापहर्ता च धर्मो धर्मप्रकाशकः ॥ ८ ॥
हेलिकश्चित्रभानुश्च कलिघ्नस्तार्क्ष्यवाहनः ।
दिक्पतिः पद्मिनीनाथः कुशेशयकरो हरिः ॥ ९ ॥
घर्मरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डांशुः कश्यपात्मजः ।
एभिः सप्ततिसंख्याकैः पुण्यैः सूर्यस्य नामभिः ॥ १० ॥
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमस्कारसमन्वितैः ।
प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वा दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥ ११ ॥
विगृह्य पाणियुग्मेन ताम्रपात्रं सुनिर्मलम् ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा परिपूर्य जलेन च ॥ १२ ॥
करवीरादिकुसुमै रक्तचन्दनमिश्रितैः ।
दुर्वाङ्कुरैरक्षतैश्च निक्षिप्तैः पात्रमध्यतः ॥ १३ ॥

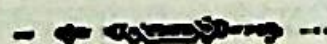
दद्यादर्घ्यमनर्घ्याय सवित्रे ध्यानपूर्वकम् ।
उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्यदृङ्मनाः ।। १४ ।।

प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्यादुदयास्तमये रविम् ।
अनया नामसप्तत्या महामन्त्ररहस्यया ॥ १५ ॥

एवं कुर्वन्नरो जातु न दरिद्रो न दुःखभाक् ।
व्याधिभिर्मुच्यते घोरैरपि जन्मान्तरार्जितैः ॥ १६ ॥

विनौषधैर्विनावैद्यैर्विना पथ्यपरिग्रहैः ।
कालेन निधनं प्राप्तः सूर्यलोके महीयते ॥ १६ ॥

॥ इति काशीखण्डान्तर्गत-विनावैद्य-विनापथ्यपरिग्रह-विनाचिकित्सा-त्वरितसर्वरोगविनाशपूर्व-कदारिद्रयानाशकं सद्यःफलदायकं सप्ततिसंख्यकनामात्मकं सूर्यायार्घ्यदानमन्त्रात्मकं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥



ग्रहस्तोत्राणि

८०. चन्द्रकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

अस्य श्रीचन्द्रकवचस्तोत्रमन्त्रस्य गौतम ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीचन्द्रो देवता, चन्द्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥

समं चतुर्भुजं वन्दे केयूरमुकुटोज्ज्वलम् ।
वासुदेवस्य नयनं शङ्करस्य च भूषणम् ॥ १ ॥

एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं शशिनः कवचं शुभम् ।
शशी पातु शिरोदेशं भालं पातु कलानिधिः ॥ २ ॥

चक्षुषी चन्द्रमाः पातु श्रुती पातु निशापतिः ।
प्राणं क्षपाकरः पातु मुखं कुमुदबान्धवः ॥ ३ ॥

पातु कण्ठं च मे सोमः स्कन्धे जैवातृकस्तथा ।
करौ सुधाकरः पातु वक्षः पातु निशाकरः ॥ ४ ॥

हृदयं पातु मे चन्द्रो नाभिं शङ्करभूषणः ।
मध्यं पातु सुरश्रेष्ठः कटिं पातु सुधाकरः ॥ ५ ॥

ऊरू तारापतिः पातु मृगाङ्को जानुनी सदा ।
अब्धिजः पातु मे जङ्घे पातु पादौ विधुः सदा ॥ ६ ॥

सर्वाण्यन्यानि चाङ्गानि पातु चन्द्रोऽखिलं वपुः ।
एतद्धि कवचं दिव्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीचन्द्रकवचं सम्पूर्णम् ॥

८१. अङ्गारकस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

अस्य श्रीअङ्गारकस्तोत्रस्य विरूपाङ्गिरस ऋषिः, अग्निर्देवता, गायत्री छन्दः, भौमप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

अङ्गारकः शक्तिधरो लोहिताङ्गो धरासुतः।
कुमारो मङ्गलो भौमो महाकायो धनप्रदः॥ १॥
ऋणहर्ता दृष्टिकर्ता रोगकृद्रोगनाशनः।
विद्युत्प्रभो व्रणकरः कामदो धनहृत् कुजः॥ २॥
सामगानप्रियो रक्तवस्त्रो रक्तायतेक्षणः।
लोहितो रक्तवर्णश्च सर्वकर्मावबोधकः॥ ३॥
रक्तमाल्यधरो हेमकुण्डली ग्रहनायकः।
नामन्येतानि भौमस्य यः पठेत्सततं नरः॥ ४॥
ऋणं तस्य च दौर्भाग्यं दारिद्र्यं च विनश्यति।
धनं प्राप्नोति विपुलं स्त्रियं चैव मनोरमाम्॥ ५॥
वंशोद्द्योतकरं पुत्रं लभते नात्र संशयः।
योऽर्चयेदह्नि भौमस्य मङ्गलं बहुपुष्पकैः॥ ६॥
सर्वा नश्यति पीडा च तस्य ग्रहकृता ध्रुवम्॥ ७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे अङ्गारकस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

८२. मङ्गलकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

अस्य श्रीअङ्गारककवचस्तोत्रमन्त्रस्य कश्यप ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, अङ्गारको देवता, भौमप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

रक्ताम्बरो रक्तवपुः किरीटी चतुर्भुजो मेषगमो गदाभृत्।
धरासुतः शक्तिधरश्च शूली सदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः॥ १॥

अङ्गारकः शिरो रक्षेन्मुखं वै धरणीसुतः ।
श्रवौ रक्ताम्बरः पातु नेत्रे मे रक्तलोचनः ॥ २ ॥

नासां शक्तिधरः पातु मुखं मे रक्तलोचनः ।
भुजौ मे रक्तमाली च हस्तौ शक्तिधरस्तथा ॥ ३ ॥

वक्षः पातु वरांगश्च हृदयं पातु रोहितः ।
कटिं मे ग्रहराजश्च मुखं चैव धरासुतः ॥ ४ ॥

जानुजङ्घे कुजः पातु पादौ भक्तप्रियः सदा ।
सर्वाण्यन्यानि चाङ्गानि रक्षेन्मे मेषवाहनः ॥ ५ ॥

य इदं कवचं दिव्यं सर्वशत्रुनिवारणम् ।
भूतप्रेतपिशाचानां नाशनं सर्वसिद्धिदम् ॥ ६ ॥

सर्वरोगहरं चैव सर्वसम्पत्प्रदं शुभम् ।
भक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वसौभाग्यवर्धनम् ।
रोगबन्धविमोक्षं च सत्यमेतन्न संशयः ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मङ्गलकवचं सम्पूर्णम् ॥

८३. बुधकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

अस्य श्रीबुधकवचस्तोत्रमन्त्रस्य कश्यप ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः, बुधो देवता, बुधप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥

बुधस्तु पुस्तकधरः कुङ्कुमस्य समद्युतिः ।
पीताम्बरधरः पातु पीतमाल्यानुलेपनः ॥ १ ॥

कटिं च पातु मे सौम्यः शिरोदेशं बुधस्तथा ।
नेत्रे ज्ञानमयः पातु श्रोत्रे पातु निशाप्रियः ॥ २ ॥

घ्राणं गन्धप्रियः पातु जिह्वां विद्याप्रदो मम ।
कण्ठं पातु विधोः पुत्रो भुजौ पुस्तकभूषणः ॥ ३ ॥
वक्षः पातु वराङ्गश्च हृदयं रोहिणीसुतः ।
नाभिं पातु सुराराध्यो मध्यं पातु खगेश्वरः ॥ ४ ॥
जानुनी रौहिणेयश्च पातु जङ्घेऽखिलप्रदः ।
पादौ मे बोधनः पातु पातु सौम्योऽखिलं वपुः ॥ ५ ॥
एतद्धि कवचं दिव्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
सर्वरोगप्रशमनं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ ६ ॥
आयुरारोग्यशुभदं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे बुधकवचं सम्पूर्णम् ॥

८४. बृहस्पतिस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

अस्य श्रीबृहस्पतिस्तोत्रस्य गृत्समद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, बृहस्पतिर्देवता, बृहस्पतिप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥

गुरुर्बृहस्पतिर्जीवः सुराचार्यो विदांवरः ।
वागीशो धिषणो दीर्घश्मश्रुः पीताम्बरो युवा ॥ १ ॥
सुधादृष्टिर्ग्रहाधीशो ग्रहपीडापहारकः ।
दयाकरः सौम्यमूर्तिः सुरार्च्यः कुङ्मलद्युतिः ॥ २ ॥
लोकपूज्यो लोकगुरुर्नीतिज्ञो नीतिकारकः ।
तारापतिश्चाङ्गिरसो वेदवैद्यपितामहः ॥ ३ ॥
भक्त्या बृहस्पतिं स्मृत्वा नामान्येतानि यः पठेत् ।
अरोगी बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् स भवेन्नरः ॥ ४ ॥

जीवेद्वर्षशतं मर्त्यो पापं नश्यति नश्यति ।
यः पूजयेद्गुरुदिने पीतगन्धाक्षताम्बरैः ॥ ५ ॥

पुष्पदीपोपहारैश्च पूजयित्वा बृहस्पतिम् ।
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च पीडाशान्तिर्भवेद्गुरोः ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे बृहस्पतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

८५. बृहस्पतिकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

अस्य श्रीबृहस्पतिकवचस्तोत्रमन्त्रस्य ईश्वर ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, गुरुर्देवता, गं बीजं, श्रींशक्तिः, क्लीं कीलकं, गुरुप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥

अभीष्टफलदं देवं सर्वज्ञं सुरपूजितम् ।
अक्षमालाधरं शान्तं प्रणमामि बृहस्पतिम् ॥ १ ॥
बृहस्पतिः शिरः पातु ललाटं पातु मे गुरुः ।
कर्णौ सुरगुरुः पातु नेत्रे मेऽभीष्टदायकः ॥ २ ॥

जिह्वां पातु सुराचार्यो नासां मे वेदपारगः ।
मुखं मे पातु सर्वज्ञो कण्ठं मे देवतागुरुः ॥ ३ ॥
भुजावाङ्गिरसः पातु करौ पातु शुभप्रदः ।
स्तनौ मे पातु वागीशः कुक्षिं मे शुभलक्षणः ॥ ४ ॥

नाभिं देवगुरुः पातु मध्यं पातु सुखप्रदः ।
कटिं पातु जगद्वन्द्य ऊरू मे पातु वाक्पतिः ॥ ५ ॥
जानुजङ्घे सुराचार्यो पादौ विश्वात्मकस्तथा ।
अन्यानि यानि चाङ्गानि रक्षेन्मे सर्वतो गुरुः ॥ ६ ॥

इत्येतत्कवचं दिव्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीब्रह्मयामलोक्तं बृहस्पतिकवचं सम्पूर्णम् ॥

८६. शुक्रकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

मृणालकुन्देन्दुपयोजसुप्रभं पीताम्बरं प्रसृतमक्षमालिनम् ।
समस्तशास्त्रार्थविधिं महान्तं ध्यायेत्कविं वाञ्छितमर्थसिद्धये ॥१॥

ॐ शिरो मे भार्गवः पातु भालं पातु ग्रहाधिपः ।
नेत्रे दैत्यगुरुः पातु श्रोत्रे मे चन्दनद्युतिः ॥ २ ॥

पातु मे नासिकां काव्यो वदनं दैत्यवन्दितः ।
वचनं चोशनाः पातु कण्ठं श्रीकण्ठभक्तिमान् ॥ ३ ॥

भुजौ तेजोनिधिः पातु कुक्षिं पातु मनोव्रजः ।
नाभिं भृगुसुतः पातु मध्यं पातु महीप्रियः ॥ ४ ॥

कटिं मे पातु विश्वात्मा ऊरू मे सुरपूजितः ।
जानुं जाड्यहरः पातु जङ्घे ज्ञानवतां वरः ॥ ५ ॥

गुल्फौ गुणनिधिः पातु पातु पादौ वरांबरः ।
सर्वाण्यङ्गानि मे पातु स्वर्णमालापरिष्कृतः ॥ ६ ॥

य इदं कवचं दिव्यं पठति श्रद्धयान्वितः ।
न तस्य जायते पीडा भार्गवस्य प्रसादतः ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे शुक्रकवचं सम्पूर्णम् ॥

८७. शनैश्चरस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

दशरथ उवाच—

कोणोऽन्तको रौद्रयमोऽथ बभ्रुः कृष्णः शनिः पिङ्गलमन्दसौरिः ।
नित्यं स्मृतो यो हरते च पीडां तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥ १ ॥

सुरासुराः किंपुरुषोरगेन्द्रा गन्धर्वविद्याधरपन्नगाश्च ।
पीड्यन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥ २ ॥

नरा नरेन्द्राः पशवो मृगेन्द्रा वन्याश्च ये कीटपतङ्गभृङ्गाः ।
पीड्यन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥ ३ ॥

देशाश्च दुर्गाणि वनानि यत्र सेनानिवेशाः पुरपत्तनानि ।
पीड्यन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥ ४ ॥

तिलैर्यवैर्माषगुडान्नदानैर्लोहेन नीलाम्बरदानतो वा ।
प्रीणाति मन्त्रैर्निजवासरे च तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥ ५ ॥

प्रयागकूले यमुनातटे च सरस्वतीपुण्यजले गुहायाम् ।
यो योगिनां ध्यानगतोऽपि सूक्ष्मस्तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥ ६ ॥

अन्यप्रदेशात्स्वगृहं प्रविष्टस्तदीयवारे स नरः सुखी स्यात् ।
गृहाद्गतो यो न पुनः प्रयाति तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥ ७ ॥

स्रष्टा स्वयंभूर्भुवनत्रयस्य त्राता हरीशो हरते पिनाकी ।
एकस्त्रिधा ऋग्यजुःसाममूर्तिस्तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥ ८ ॥

शन्यष्टकं यः प्रयतः प्रभाते नित्यं सुपुत्रैः पशुबान्धवैश्च ।
पठेत्तु सौख्यं भुवि भोगयुक्तः प्राप्नोति निर्वाणपदं तदन्ते ॥ ९ ॥

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः ।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः ॥ १० ॥

एतानि दश नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
शनैश्चरकृता पीडा न कदाचिद्भविष्यति ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे श्रीशनैश्चरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

८८. शनिवज्रपञ्जरकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

नीलाम्बरो नीलवपुः किरीटी गृध्रस्थितस्त्रासकरो धनुष्मान् ।
चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रसन्नः सदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः ॥ १ ॥

ब्रह्मा उवाच—

शृणुध्वमृषयः सर्वे शनिपीडाहरं महत् ।
कवचं शनिराजस्य सौरेरिदमनुत्तमम् ॥ २ ॥

कवचं देवतावासं वज्रपञ्जरसंज्ञकम् ।
शनैश्चरप्रीतिकरं सर्वसौभाग्यदायकम् ॥ ३ ॥

ॐ श्रीशनैश्चरः पातु भालं मे सूर्यनन्दनः ।
नेत्रे छायात्मजः पातु पातु कर्णौ यमानुजः ॥ ४ ॥

नासां वैवस्वतः पातु मुखं मे भास्करः सदा ।
स्निग्धकण्ठश्च मे कण्ठं भुजौ पातु महाभुजः ॥ ५ ॥

स्कन्धौ पातु शनिश्चैव करौ पातु शुभप्रदः ।
वक्षः पातु यमभ्राता कुक्षिं पात्वसितस्तथा ॥ ६ ॥

नाभिं ग्रहपतिः पातु मन्दः पातु कटिं तथा ।
ऊरू यमान्तकः पातु यमो जानुयुगं तथा ॥ ७ ॥

पादौ मन्दगतिः पातु सर्वाङ्गं पातु पिप्पलः ।
अङ्गोपाङ्गानि सर्वाणि रक्षेन् मे सूर्यनन्दनः ॥ ८ ॥

इत्येतत्कवचं दिव्यं पठेत्सूर्यसुतस्य यः ।
न तस्य जायते पीडा प्रीतो भवति सूर्यजः ॥ ९ ॥

व्ययजन्मद्वितीयस्थो मृत्युस्थागनतोऽपि वा ।
कलत्रस्थो गतो वापि सुप्रीतस्स्यात् सदा शनिः ॥ १० ॥

अष्टमस्थे सूर्यसुते व्यये जन्मद्वितीयगे ।
कवचं पठते नित्यं न पीडा जायते क्वचित् ॥ ११ ॥

इत्येतत्कवचं दिव्यं सौरेर्यन्निर्मितं पुरा ।
द्वादशाष्टमजन्मस्थदोषान्नाशयते सदा ।
जन्मलग्नस्थितान् दोषान् सर्वान्नाशयते प्रभुः ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे
शनिवज्रपञ्जरकवचं सम्पूर्णम् ॥

८९. राहुकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

प्रणमामि सदा राहुं शूर्पाकारं किरीटिनम् ।
सैंहिकेयं करालास्यं लोकानामभयप्रदम् ॥ १ ॥

नीलाम्बरः शिरः पातु ललाटं लोकवन्दितः ।
चक्षुषी पातु मे राहुः श्रोत्रे त्वर्धशरीरवान् ॥ २ ॥

नासिकां मे धूम्रवर्णः शूलपाणिर्मुखं मम ।
जिह्वां मे सिंहिकासूनुः कण्ठं मे कठिनाङ्घ्रिकः ॥ ३ ॥

भुजंगेशो भुजौ पातु नीलमाल्याम्बरः करौ ।
पातु वक्षःस्थलं मन्त्री पातु कुक्षिं विधुंतुदः ॥ ४ ॥

कटिं मे विकटः पातु ऊरू मे सुरपूजितः ।
स्वर्भानुर्जानुनी पातु जङ्घे मे पातु जाड्यहा ॥ ५ ॥

गुल्फौ ग्रहपतिः पातु पादौ मे भीषणाकृतिः ।
सर्वाण्यङ्गानि मे पातु नीलचन्दनभूषणः ॥ ६ ॥

राहोरिदं कवचमृद्धिदवस्तुदं यो
भक्त्या पठत्यनुदिनं नियतः शुचिः सन् ।
प्राप्नोति कीर्तिमतुलां श्रियमृद्धिमायु-
रारोग्यमात्मविजयं च हि तत्प्रसादात् ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते धृतराष्ट्रसंजयसंवादे द्रोणपर्वणि राहुकवचं सम्पूर्णम् ॥

९०. केतुकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

केतुं करालवदनं चित्रवर्णं किरीटिनम् ।
प्रणमामि सदा केतुं ध्वजाकारं ग्रहेश्वरम् ॥ १ ॥
चित्रवर्णः शिरः पातु भालं धूम्रसमद्युतिः ।
पातु नेत्रे पिंगलाक्षः श्रुती मे रक्तलोचनः ॥ २ ॥
घ्राणं पातु सुवर्णाभश्चिबुकं सिंहिकासुतः ।
कण्ठं पातु च मे केतुः स्कन्धौ पातु ग्रहाधिपः ॥ ३ ॥
हस्तौ पातु सुरश्रेष्ठः कुक्षिं पातु महाग्रहः ।
सिंहासनः कटिं पातु मध्यं पातु महासुरः ॥ ४ ॥
ऊरू पातु महाशीर्षो जानुनी मेऽतिकोपनः ।
पातु पादौ च मे क्रूरः सर्वाङ्गं नरपिङ्गलः ॥ ५ ॥
य इदं कवचं दिव्यं सर्वरोगविनाशनम् ।
सर्वशत्रुविनाशं च धारणाद्विजयी भवेत् ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे केतुकवचं सम्पूर्णम् ॥

॥ इति ग्रहस्तोत्राणि ॥



अवतारस्तोत्राणि

६१. मत्स्यस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः ।
अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥ १ ॥

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ।
भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २ ॥

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥ ३ ॥

न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।
यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवतपुराणान्तर्गतं मत्स्यस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥

६२. कूर्मस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

देवा ऊचुः—

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरुसंसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥ १ ॥

धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।
आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥ २ ॥

मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छन्दः सुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥ ३ ॥
यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥ ४ ॥
विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥
यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥ ६ ॥
तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥ ७ ॥
पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाञ्जसाऽन्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥ ८ ॥
तथापरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥ ९ ॥
तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाद्य त्वयानुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ।
सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥ १० ॥
यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र ।
यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥ ११ ॥
त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।
त्वं देवशक्त्या गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥ १२ ॥
ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन्करवाम किं ते ।
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देवक्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवतपुराणान्तर्गतंकूर्मस्तोत्रं समाप्तम् ॥

९३. वराहस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ऋषय ऊचुः—

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावना त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ १ ॥

रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हि रोमस्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥२॥

स्रुक् तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३ ॥

दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥४॥

सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिसंस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ५ ॥

नमो नमस्तेऽखिलयन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ६ ॥

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः समूधरा ।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ७ ॥

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डले नाथ दतः धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ८ ॥

संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥९॥

कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥१०॥

विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनो जयम् ।
सटाशिखोद्भूतशिवाम्बुविन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥११॥
स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥ १२ ॥
॥ इति श्रीमद्भागवतपुराणान्तर्गतं वाराहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

६४. नृसिंहस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ब्रह्मोवाच—

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलया सन्दधतेऽव्ययात्मने ॥ १ ॥

श्रीरुद्र उवाच—

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ।
तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ २ ॥

इन्द्र उवाच—

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा
दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां
ते मुक्तिस्तेषां नहि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः—

त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ।
तद्विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥ ४ ॥

पितर ऊचुः—

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजै-
दंत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ।
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छं-
त्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ५ ॥

सिद्धा ऊचुः—

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन ।
नानादर्पं तं नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ ६ ॥

विद्याधरा ऊचुः—

विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।
स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ७ ॥

नागा ऊचुः—

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ।
तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥

मनव ऊचुः—

मनवो वयं तव निदेशकारिणो
दितिजेन देव परिभूतसेतवः ।
भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो
करवाम ते किमनुशाधि किंकरान् ॥ ९ ॥

प्रजापतय ऊचुः—

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा
न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
स एष त्वया भिन्नवक्षानुशेते
जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥ १० ॥

गन्धर्वा ऊचुः—

वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः ।
स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥ ११ ॥

चारणा ऊचुः—

हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ।
यदेव साधु हृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥ १२ ॥

यक्षा ऊचुः—

वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै-
स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंशः ॥ १३ ॥

किंपुरुषा ऊचुः—

वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वर ।
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥ १४ ॥

वैतालिका ऊचुः—

सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ।
यस्तां व्यनैषीद्भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथामयः ॥ १५ ॥

किन्नरा ऊचुः—

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥१६॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः—

अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥१७॥

॥ इति श्रीमद्भागवतपुराणान्तर्गतं नृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमत्पयोनिधिनिकेतन चक्रपाणे
भोगीन्द्रभोगमणिरञ्जितपुण्यमूर्ते ।
योगीश शाश्वत शरण्य भवाब्धिपोत
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ १ ॥

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुदर्ककिरीटकोटि-
सङ्घट्टिताङ्घ्रिकमलामलकान्तिकान्त ।
लक्ष्मीलसत्कुचसरोरुहराजहंस
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ २ ॥

संसारघोरगहने चरतो मुरारे
मारोग्रभीकरमृगप्रवरार्दितस्य ।
आर्तस्य मत्सरनिदाघनिपीडितस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ ३ ॥

संसारकूपमतिघोरमगाधमूलं
संप्राप्य दुःखशतसर्पसमाकुलस्य ।
दीनस्य देव कृपणापदमागतस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ ४ ॥

संसारसागरविशालकरालकाल-
नक्रग्रहग्रसननिग्रहविग्रहस्य ।
व्यग्रस्य रागरसनोर्मिनिपीडितस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ ५ ॥

संसारवृक्षभवबीजमनन्तकर्म-
शाखाशतं करणपत्रमनङ्गपुष्पम् ।

आरुह्य दुःखफलितं पततो दयालो
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ ६ ॥

संसारसर्पघनवक्त्रभयोग्रतीव्र-
दंष्ट्राकरालविषदग्धविनष्टमूर्ते ।
नागारिवाहन सुधाब्धिनिवास शौरे
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ ७ ॥

संहारदावदहनातुरभीकरोरु-
ज्वालावलीभिरतिदग्धतनूरुहस्य ।
त्वत्पादपद्मसरसीशरणागतस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ ८ ॥

संसारजालपतितस्य जगन्निवास
सर्वेन्द्रियार्थबडिशार्थझषोपमस्य ।
प्रोत्खण्डितप्रचुरतालुकमस्तकस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ ९ ॥

संसारभीकरकरीन्द्रकलाभिघात-
निष्पिष्टमर्मवपुषः सकलार्तिनाश ।
प्राणप्रयाणभवभीतिसमाकुलस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ १० ॥

अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य
चौरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयैः ।
मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य
लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥ ११ ॥

लक्ष्मीपते कमलनाभ सुरेश विष्णो
वैकुण्ठ कृष्ण मधुसूदन पुष्कराक्ष ।

ब्रह्मण्य केशव जनार्दन वासुदेव
देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम् ॥ १२ ॥

यन्माययोर्जितवपुःप्रचुरप्रवाह-
मग्नार्थमत्र निबहोरुकरावलम्बम ।
लक्ष्मीनृसिंहचरणाब्जमधुव्रतेन
स्तोत्रं कृतं सुखकरं भुवि शङ्करेण ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं
सङ्कष्टनाशनं लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

९६. वामनस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

अदितिरुवाच—

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य
शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ १ ॥

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय
स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध-
व्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ २ ॥

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्य-
लक्ष्मीर्द्यौर्भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टा-
स्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवतपुराणान्तर्गतं वामनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

९७. वामनस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

अदितिरुवाच—

नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापिन् जनार्दन ।
सत्त्वादिगुणभेदेन लोकव्यापारकारिणे ॥ १ ॥

नमस्ते बहुरूपाय ह्यरूपाय नमो नमः ।
सर्वैकाद्भुतरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ २ ॥

नमस्ते लोकनाथाय परमज्ञानरूपिणे ।
सद्भक्तजनवात्सल्यशीलिने मङ्गलात्मने ॥ ३ ॥

यस्यावताररूपाणि ह्यर्जयन्ति मुनीश्वराः ।
तमादिपुरुषं देवं नमामीष्टार्थसिद्धये ॥ ४ ॥

यं न जानन्ति श्रुतयो यं न जानन्ति सूरयः ।
तं नमामि जगद्धेतुं मायिनं तममायिनम् ॥ ५ ॥

यस्यावलोकनं चित्रं मायोपद्रववारणम् ।
जगद्रूपं जगत्पालं तं वंदे पद्मजाधवम् ॥ ६ ॥

यो देवस्त्यक्तसङ्गानां शान्तानां करुणार्णवः ।
करोति ह्यात्मना सङ्गं तं वन्दे सङ्गवर्जितम् ॥ ७ ॥

यत्पादाब्जजलक्लिन्नसेवारञ्जितमस्तकाः ।
अवापुः परमां सिद्धिं तं वन्दे सर्ववन्दितम् ॥ ८ ॥

यज्ञेश्वरं यज्ञभुजं यज्ञकर्मसु निष्ठितम् ।
नमामि यज्ञफलदं यज्ञकर्मप्रबोधकम् ॥ ९ ॥

अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु ।
प्राप्तवान्परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम् ॥ १० ॥

ब्रह्माद्या अपि ये देवा यन्मायापाशयन्त्रिताः ।
न जानन्ति परं भावं तं वन्दे सर्वनायकम् ॥ ११ ॥

हृत्पद्मनिलयोऽज्ञानां दूरस्थ इव भाति यः ।
प्रमाणातीतसद्भावं तं वन्दे ज्ञानसाक्षिणम् ॥ १२ ॥

यन्मुखाद्ब्राह्मणो जातो बाहुभ्यां क्षत्रियोऽजनि ।
तथैव ऊरुतो वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १३ ॥

मनसश्चन्द्रमा जातो जातः सूर्यश्च चक्षुषः ।
मुखादिन्द्रस्तथाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ १४ ॥

त्वमिन्द्रः पवनः सोमस्त्वमीशानस्त्वमन्तकः ।
त्वमग्निर्निर्ऋतिश्चैव वरुणस्त्वं दिवाकरः ॥ १५ ॥

देवाश्च स्थावराश्चैव पिशाचाश्चैव राक्षसाः ।
गिरयः सिद्धगन्धर्वा नद्यो भूमिश्च सागराः ॥ १६ ॥

त्वमेव जगतामीशो यन्नामस्ति परात्परः ।
त्वद्रूपमखिलं तस्मात्पुत्रान् मे पाहि श्रीहरे ॥ १७ ॥

इति स्तुत्वा देवधात्री देवं नत्वा पुनः पुनः ।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षाश्रुक्षालितस्तनी ॥ १८ ॥

अनुग्राह्यास्मि देवेश हरे सर्वादिकारण ।
अकण्टकश्रियं देहि मत्सुतानां दिवौकसाम् ॥ १९ ॥

अन्तर्यामिन् जगद्रूप सर्वभूतपरेश्वर ।
तवाज्ञातं किमस्तीह किं मां मोहयसि प्रभो ॥ २० ॥

तथापि तव वक्ष्यामि यन्मे मनसि वर्तते ।
वृथापुत्रास्मि देवेश रक्षोभिः परिपीडिता ॥ २१ ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि मत्सुत दितिजा यतः ।
तानहत्वा श्रियं देहि मत्सुतानामुवाच सा ॥ २२ ॥

इत्युक्तो देवदेवस्तु पुनः प्रीतिमुपागतः ।
उवाच हर्षयन् साध्वीं कृपयाभिपरिप्लुतः ॥ २३ ॥

श्रीभगवानुवाच—

प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते भविष्यामि सुतस्तव ।
यतः सपत्नीतनयेष्वपि वात्सल्यशालिनी ॥ २४ ॥

त्वया च मे कृतं स्तोत्रं पठन्ति भुवि मानवाः ।
तेषां पुत्रा धनं सम्पन्न हीयन्त कदाचन ॥ २५ ॥

अन्ते मत्पदमाप्नोति यद्विष्णोः परमं शुभम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीपद्मपुराणे वामनस्तोत्रं समाप्तम् ॥

९८. परशुरामाष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ऋषिरुवाच—

यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १ ॥

दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ।
तस्य नामानि पुण्यानि वच्मि ते पुरुषर्षभ ॥ २ ॥

भूभारहरणार्थाय मायामानुषविग्रहः ।
जनार्दनांशसम्भूतः स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वरः ॥ ३ ॥

भार्गवो जामदग्न्यश्च पित्राज्ञापरिपालकः ।
मातृप्राणप्रदो धीमान् क्षत्रियान्तकरः प्रभुः ॥ ४ ॥

रामः परशुहस्तश्च कार्तवीर्यमदापहः ।
रेणुकादुःखशोकघ्नो विशोकः शोकनाशनः ॥ ५ ॥

नवीननीरदश्यामो रक्तोत्पलविलोचनः ।
धीरो दण्डधरो धीरो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रियः ॥ ६ ॥

तपोधनो महेन्द्रादौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः ।
उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ ७ ॥

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखशोकभयातिगः ।
इत्यष्टाविंशतिर्नाम्नामुक्ता स्तोत्रात्मिका शुभा ॥ ८ ॥

अनया प्रीयतां देवो जामदग्न्यो महेश्वरः ।
नेदं स्तोत्रमशान्ताय नादान्तायातपस्विने ॥ ९ ॥

नावेदविदुषे वाच्यमशिष्याय खलाय च ।
नासूयकायानृजवे न चानिर्दिष्टकारिणे ॥ १० ॥

इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय च ।
रहस्यधर्मो वक्तव्यो नान्यस्मै तु कदाचन ॥ ११ ॥

॥ इति परशुरामाष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥



९९. श्रीरामप्रातःस्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीरामाय नमः

प्रातः स्मरामि रघुनाथ मुखार विन्दं
मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम् ।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं
कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥ १ ॥
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं
रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं
सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं
पद्माङ्कुशादिशुभरेखि सुखावहं मे ।
योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं
शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ॥ ३ ॥
प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम
वाग्दोषहारि सकलं शमलं करोति ।
यत्पार्वती स्वपतिना सह भोक्तुकामा
प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ॥ ४ ॥
प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्ति
नीलाम्बुजोत्पलसितेतररत्ननीलाम् ।
आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणढ्यां
ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनैः मुक्तिहेतुम् ॥ ५ ॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेत्तु
नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो
भूत्वा प्रयासि हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥ ६ ॥

१००. रामहृदयम्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमहादेव उवाच—

ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् ।
शृणु यत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्मपरात्मनाम् ॥ १ ॥

आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ।
जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥ २ ॥

बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥ ३ ॥

सभासबुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाऽबुधैः ॥ ४ ॥

आभासस्तु मृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ।
अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पितः ॥ ५ ॥

अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपद्यते ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥ ६ ॥

ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः ।
तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥ ७ ॥

एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ॥ ८ ॥

मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम् ।
न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥ ९ ॥

इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो मयैव साक्षात्कथितं तवानघ ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥१०॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे बालकाण्डे श्रीरामहृदयं सम्पूर्णम् ॥

१०१. रामस्तवराजः

श्रीगणेशाय नमः

अस्य श्रीरामचन्द्रस्तवराजस्तोत्रमन्त्रस्य सनत्कुमार ऋषिः । श्रीरामो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । सीता बीजम् । हनूमान् शक्तिः । श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॥

सूत उवाच—

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं व्यासं सत्यवतीसुतम् ।
धर्मपुत्रः प्रहृष्टात्मा प्रत्युवाच मुनीश्वरम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

भगवन्योगिनां श्रेष्ठ सर्वशास्त्रविशारद ।
किं तत्त्वं किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम् ॥ २ ॥
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ।

वेदव्यास उवाच—

धर्मराज महाभाग शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥

यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम् ।
तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम् ॥ ४ ॥

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम् ।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥ ५ ॥

श्रीराम रामेति जना ये जपन्ति च सर्वदा ।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ६ ॥

स्तवराजं पुरा प्रोक्तं नारदेन च धीमता ।
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि हरिध्यानपुरःसरम् ॥ ७ ॥

तापत्रयाग्निशमनं सर्वाघौघनिकृन्तनम् ।
दारिद्र्यदुःखशमनं सर्वसंपत्करं शिवम् ॥ ८ ॥

विज्ञानफलदं दिव्यं मोक्षैकफलसाधनम् ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णं जगन्मयम् ॥ ९ ॥

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे ।
स्मरेत्कल्पतरोमूले रत्नसिंहासनं शुभम् ॥ १० ॥

तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नैश्च वेष्टितम् ।
स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम् ॥ ११ ॥

पितुरङ्कगतं राममिन्द्रनीलमणिप्रभम् ।
कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णवरावृतम् ॥ १२ ॥

भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटेन विराजितम् ।
रत्नग्रैवेयकेयूररत्नकुण्डलमण्डितम् ॥ १३ ॥

रत्नकङ्कणमञ्जीरकटिसूत्रैरलङ्कृतम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम् ॥ १४ ॥

दिव्यरत्नसमायुक्तमुद्रिकाभिरलंकृतम् ।
राघवं द्विभुजं बालं राममीषत्स्मिताननम् ॥ १५ ॥

तुलसीकुन्दमन्दारपुष्पमाल्यैरलङ्कृतम् ।
कर्पूरागरुकस्तूरीदिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ १६ ॥

योगशास्त्रेष्वभिरतं योगेशं योगदायकम् ।
सदा भरतसौमित्रिशत्रुघ्नैरुपशोभितम् ॥ १७ ॥

विद्याधरसुराधीशसिद्धगन्धर्वकिन्नरैः ।
योगीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानमहर्निशम् ॥ १८ ॥
विश्वामित्रवसिष्ठादिमुनिभिः परिसेवितम् ।
सनकादिमुनिश्रेष्ठैर्योगिवृन्दैश्च सेवितम् ॥ १९ ॥

रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ।
मङ्गलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम् ॥ २० ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञमानन्दकरसुन्दरम् ।
कौसल्यानन्दनं रामं धनुर्बाणधरं हरिम् ॥ २१ ॥

एवं संचिन्तयन्विष्णुं यज्ज्योतिरमलं विभुम् ।
प्रहृष्टमानसो भूत्वा मुनिवर्यः स नारदः ॥ २२ ॥
सर्वलोकहितार्थाय तुष्टाव रघुनन्दनम् ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयन्नद्भुतं हरिम् ॥ २३ ॥

यदेकं यत्परं नित्यं यदनन्तं चिदात्मकम् ।
यदेकं व्यापकं लोके तद्रूपं चिन्तयाम्यहम् ॥ २४ ॥

विज्ञानहेतुं विमलायताक्षं प्रज्ञानरूपं स्वसुखैकहेतुम् ।
श्रीरामचन्द्रं हरिमादिदेवं परात्परं राममहं भजामि ॥ २५ ॥

कविं पुराणं पुरुषं पुरस्तात्सनातनं योगिनमीशितारम् ।
अणोरणीयांसमनन्तवीर्यं प्राणेश्वरं राममसौ ददर्श ॥ २६ ॥

नारद उवाच—

नारायणं जगन्नाथमभिरामं जगत्पतिम् ।
कविं पुराणं वागीशं रामं दशरथात्मजम् ॥ २७ ॥

राजराजं रघुवरं कौसल्यानन्दवर्धनम् ।
भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम् ॥ २८ ॥

सत्यं सत्यप्रियं श्रेष्ठं जानकीवल्लभं विभुम् ।
सौमित्रिपूर्वजं शान्तं कामदं कमलेक्षणम् ॥ २९ ॥

आदित्यं रविमीशानं घृणिं सूर्यमनामयम् ।
आनन्दरूपिणं सौम्यं राघवं करुणामयम् ॥ ३० ॥
जामदग्न्यं तपोमूर्तिं रामं परशुधारिणम् ।
वाक्पतिं वरदं वाच्यं श्रीपतिं पक्षिवाहनम् ॥ ३१ ॥
श्रीशार्ङ्गधारिणं रामं चिन्मयानन्दविग्रहम् ।
हलधृग्विष्णुमीशानं बलरामं कृपानिधिम् ॥ ३२ ॥
श्रीवल्लभं कृपानाथं जगन्मोहनमच्युतम् ।
मत्स्यकूर्मवराहादिरूपधारिणमव्ययम् ॥ ३३ ॥
वासुदेवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम् ।
गोविन्दं गोपतिं विष्णुं गोपीजनमनोहरम् ॥ ३४ ॥
गोगोपालपरीवारं गोपकन्यासमावृतम् ।
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशं रामं कृष्णं जगन्मयम् ॥ ३५ ॥
गोगोपिकासमाकीर्णं वेणुवादनतत्परम् ।
कामरूपं कलावन्तं कामिनीकामदं विभुम् ॥ ३६ ॥
मन्मथं मथुरानाथं माधवं मकरध्वजम् ।
श्रीधरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परात्परम् ॥ ३७ ॥
भूतेशं भूपतिं भद्रं विभूतिं भूतिभूषणम् ।
सर्वदुःखहरं वीरं दुष्टदानववैरिणम् ॥ ३८ ॥
श्रीनृसिंहं महाबाहुं महान्तं दीप्ततेजसम् ।
चिदानन्दमयं नित्यं प्रणवं ज्योतिरूपिणम् ॥ ३९ ॥
आदित्यमण्डलगतं निश्चितार्थस्वरूपिणम् ।
भक्तिप्रियं पद्मनेत्रं भक्तानामीप्सितप्रदम् ॥ ४० ॥
कौसल्येयं कलामूर्तिं काकुत्स्थं कमलाप्रियम् ।
सिंहासने समासीनं नित्यव्रतमकल्मषम् ॥ ४१ ॥

विश्वामित्रप्रियं दान्तं स्वदारनियतव्रतम् ।
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं यज्ञपालनतत्परम् ॥ ४२ ॥
सत्यसन्धं जितक्रोधं शरणागतवत्सलम् ।
सर्वक्लेशापहरणं विभीषणवरप्रदम् ॥ ४३ ॥
दशग्रीवहरं रौद्रं केशवं केशिमर्दनम् ।
वालिप्रमथनं वीरं सुग्रीवेप्सितराज्यदम् ॥ ४४ ॥
नरवानरदेवैश्च सेवितं हनुमत्प्रियम् ।
शुद्धं सूक्ष्मं परं शान्तं तारकब्रह्मरूपिणम् ॥ ४५ ॥
सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम् ।
सर्वकारणकर्तारं निदानं प्रकृतेः परम् ॥ ४६ ॥
निरामयं निराभासं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
नित्यानन्दं निराकारमद्वैतं तमसः परम् ॥ ४७ ॥
परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम् ।
मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ॥ ४८ ॥
सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।
नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम् ॥ ४९ ॥
नमोऽस्तु वासुदेवाय ज्योतिषां पतये नमः ।
नमोऽस्तु रामदेवाय जगदानन्दरूपिणे ॥ ५० ॥
नमो वेदान्तनिष्ठाय योगिने ब्रह्मवादिने ।
मायामयनिरासाय प्रपन्नजनसेविने ॥ ५१ ॥
वन्दामहे महेशानचण्डकोदण्डखण्डनम् ।
जानकीहृदयानन्दवर्धनं रघुनन्दनम् ॥ ५२ ॥

उत्फुल्लामलकोमलोत्पलदलश्यामाय रामाय ते
कामाय प्रमदामनोहरगुणग्रामाय रामात्मने ।
योगारूढमुनीन्द्रमानससरोहंसाय संसारवि-
ध्वंसाय स्फुरदोजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥ ५३ ॥

भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठमादित्यचन्द्रानलसुप्रभावम् ।
सर्वात्मकं सर्वगतस्वरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥ ५४ ॥

निरञ्जनं निःप्रतिमं निरीहं निराश्रयं निष्कलमप्रपञ्चम् ।
नित्यं ध्रुवं निर्विषयस्वरूपं निरन्तरं राममहं भजामि ॥ ५५ ॥

भवाब्धिपोतं भरताग्रजं तं भक्तप्रियं भानुकुलप्रदीपम् ।
भूतत्रिनाथं भुवनाधिपं तं भजामि रामं भवरोगवैद्यम् ॥ ५६ ॥

सर्वाधिपत्यं समराङ्गधीरं सत्यं चिदानन्दमयस्वरूपम् ।
सत्यं शिवं शान्तिमयं शरण्यं सनातनं राममहं भजामि ॥ ५७ ॥

कार्यक्रियाकारणमप्रमेयं कविं पुराणं कमलायताक्षम् ।
कुमारवेद्यं करुणामयं तं कल्पद्रुमं राममहं भजामि ॥ ५८ ॥

त्रैलोक्यनाथं सरसीरुहाक्षं दयानिधिं द्वन्द्वविनाशहेतुम् ।
महाबलं वेदविधिं सुरेशं सनातनं राममहं भजामि ॥ ५९ ॥

वेदान्तवेद्यं कविमीशितारमनादिमध्यान्तमचिन्त्यमाद्यम् ।
अगोचरं निर्मलमेकरूपं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥ ६० ॥

अशेषवेदात्मकमादिसंज्ञमजं हरिं विष्णुमनन्तमाद्यम् ।
अपारसंवित्सुखमेकरूपं परात्परं राममहं भजामि ॥ ६१ ॥

तत्त्वस्वरूपं पुरुषं पुराणं स्वतेजसा पूरितविश्वमेकम् ।
राजाधिराजं रविमण्डलस्थं विश्वेश्वरं राममहं भजामि ॥ ६२ ॥

लोकाभिरामं रघुवंशनाथं हरिं चिदानन्दमयं मुकुन्दम् ।
अशेषविद्याधिपतिं कवीन्द्रं नमामि रामं तमसः परस्तात् ॥ ६३ ॥

योगीन्द्रसंघैश्च सुसेव्यमानं नारायणं निर्मलमादिदेवम् ।
ततोऽस्मि नित्यं जगदेकनाथमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ६४ ॥

विभूतिदं विश्वसृजं विरामं राजेन्द्रमीशं रघुवंशनाथम् ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमूर्ति ज्योतिर्मयं राममहं भजामि ॥ ६५ ॥

अशेषसंसारविहारहीनमादित्यगं पूर्णसुखाभिरामम् ।
समस्तसाक्षि तमसः परस्तान्नारायणं विष्णुमहं भजामि ॥ ६६ ॥

मुनीन्द्रगुह्यं परिपूर्णकामं कलानिधिं कल्मषनाशहेतुम् ।
परात्परं यत्परमं पवित्रं नमामि रामं महतो महान्तम् ॥ ६७ ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देवतास्तथा ।
आदित्यादिग्रहाश्चैव त्वमेव रघुनन्दन ॥ ६८ ॥

तापसा ऋषयः सिद्धाः साध्याश्च मरुतस्तथा ।
विप्रा वेदास्तथा यज्ञाः पुराणधर्मसंहिताः ॥ ६९ ॥

वर्णाश्रमास्तथा धर्मा वर्णधर्मास्तथैव च ।
यक्षराक्षसगन्धर्वा दिक्पाला दिग्गजादयः ॥ ७० ॥

सनकादिमुनिश्रेष्ठास्त्वमेव रघुपुङ्गव ।
वसवोऽष्टौ त्रयः काला रुद्रा एकादश स्मृताः ॥ ७१ ॥

तारका दश दिक् चैव त्वमेव रघुनन्दन ।
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च नगा नद्यस्तथा द्रुमाः ॥ ७२ ॥

स्थावरा जङ्गमाश्चैव त्वमेव रघुनायक ।
देवतिर्यङ्मनुष्याणां दानवानां तथैव च ॥ ७३ ॥

माता पिता तथा भ्राता त्वमेव रघुवल्लभ ।
सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि ॥ ७४ ॥

त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तम ।
त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन ॥ ७५ ॥

शान्तं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम् ।
राजीवलोचनं रामं प्रणमामि जगत्पतिम् ॥ ७६ ॥

व्यास उवाच—

ततः प्रसन्नः श्रीरामः प्रोवाच मुनिपुङ्गवम् ।
तुष्टोऽस्मि मुनिशार्दूल वृणीष्व वरमुत्तमम् ॥ ७७ ॥

नारद उवाच—

यदि तुष्टोऽसि सर्वज्ञ श्रीराम करुणानिधे ।
त्वन्मूर्तिदर्शनेनैव कृतार्थोऽहं च सर्वदा ॥ ७८ ॥

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं पुण्योऽहं पुरुषोत्तम ।
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलं च मे ॥ ७९ ॥

अद्य मे सफलं ज्ञानमद्य मे सफलं तपः ।
अद्य मे सफलं कर्म त्वत्पादाम्भोजदर्शनात् ।
अद्य मे सफलं सर्वं त्वन्नामस्मरणं तथा ॥ ८० ॥

त्वत्पादाम्भोरुहद्वन्द्वसद्भक्तिं देहि राघव ।
ततः परमसंप्रीतः स रामः प्राह नारदम् ॥ ८१ ॥

श्रीराम उवाच—

मुनिवर्य महाभाग मुने त्विष्टं ददामि ते ।
यत्त्वया चेप्सितं सर्वं मनसा तद्भविष्यति ॥ ८२ ॥

नारद उवाच—

वरं न याचे रघुनाथ युष्मत्पदाब्जभक्तिः सततं ममास्तु ।
इदं प्रियं नाथ वरं हि याचे पुनःपुनस्त्वामिदमेव याचे ॥ ८३ ॥

व्यास उवाच—

इत्येवमीडितो रामः प्रादात्तस्मै वरान्तरम् ।
वीरो रामो महातेजाः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ८४ ॥

अद्वैतममलं ज्ञानं स्वनामस्मरणं तथा ।
अन्तर्दधौ जगन्नाथः पुरतस्तस्य राघवः ॥ ८५ ॥

इति रघुनाथस्य स्तवराजमनुत्तमम् ।
सर्वसौभाग्यसम्पत्तिदायकं मुक्तिदं शुभम् ॥ ८६ ॥

कथितं ब्रह्मपुत्रेण वेदानां सारमुत्तमम् ।
गुह्याद्गुह्यतमं दिव्यं तव स्नेहात्प्रकीर्तितम् ॥ ८७ ॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ।
ब्रह्महत्यादिपापानि तत्समानि बहूनि च ॥ ८८ ॥

स्वर्णस्तेयं सुरापानं गुरुतल्पगतिस्तथा ।
गोवधाद्युपपापानि अनृतात्सम्भवानि च ॥ ८९ ॥

सर्वैः प्रमुच्यते पापैः कल्पायुतशतोद्भवैः ।
मानसं वाचिकं पापं कर्मणा समुपार्जितम् ॥ ९० ॥

श्रीरामस्मरणेनैव तत्क्षणान्नश्यति ध्रुवम् ।
इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते ॥ ९१ ॥

रामं सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्न विद्यते ।
तस्माद्रामस्वरूपं हि सत्यं सत्यमिदं जगत् ॥ ९२ ॥

श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य
राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश ।
राजाधिराज रघुनन्दन रामचन्द्र
दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोऽस्मि ॥ ९३ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकृतासने मणिमये वीरासने संस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनीन्द्रैः परं
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥९४॥

रामं रत्नकिरीटकुण्डलयुतं केयूरहारान्वितं
सीतालङ्कृतवामभागममलं सिंहासनस्थं विभुम् ।
सुग्रीवादिहरीश्वरैः सुरगणैः संसेव्यमानं सदा
विश्वामित्रपराशरादिमुनिभिः संस्तूयमानं प्रभुम् ॥ ९५ ॥

सकलगुणनिधानं योगिभिः स्तूयमानं
भुजविजितसमानं राक्षसेन्द्रादिमानम् ।
महितनृपभयानं सीतया शोभमानं
स्मर हृदय विमानं ब्रह्म रामाभिधानम् ॥ ९६ ॥

रघुवर तव मूर्तिर्मामके मानसाब्जे
नरकगतिहरं ते नामधेयं मुखे मे ।
अनिशमतुलभक्त्या मस्तकं त्वत्पदाब्जे
भवजलनिधिमग्नं रक्ष मामार्तबन्धो ॥ ९७ ॥

रामरत्नमहं वन्दे चित्रकूटपतिं हरिम् ।
कौसल्याभक्तिसम्भूतं जानकीकण्ठभूषणम् ॥ ९८ ॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां नारदोक्तं श्रीरामस्तवराजस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१०२. ब्रह्मदेवकृता रामस्तुतिः

श्रीगणेशाय नमः

ब्रह्मोवाच—

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं
त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् ।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं
सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम् ॥ १ ॥

प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान् ।
पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं
वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ॥ २ ॥

मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं
मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं
वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥ ३ ॥

भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यै-
र्भोगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम् ।
नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं
वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ॥ ४ ॥

त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी ।
भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी
योगाभ्यासैर्भावितचेतःसहचारी ॥ ५ ॥

त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं
लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम् ।
भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं
वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥ ६ ॥

को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं
मानासक्तो माधवशक्तो मुनिमान्यम् ।
वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं
वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥ ७ ॥

नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं
नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम् ।
मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं
वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥ ८ ॥

श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं
ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं मर्त्यः ।
रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं ध्यात्वा
ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे युद्धकाण्डे
ब्रह्मदेवकृतं रामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१०३. जटायुकृतरामस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

जटायुरुवाच—

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्स्थितिसंयमादिहेतुम् ।
उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम् ॥ १ ॥

निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं क्षपितसुरेन्द्रचतुर्मुखादिदुःखम् ।
नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वरचापबाणहस्तम् ॥ २ ॥

त्रिभुवनकमनीयरूपमीड्यं रविशतभासुरमीहितप्रदानम् ।
शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलयं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥ ३ ॥

भवविपिनदवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम् ।
दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

अविरतभवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
भवजलधिसुतारणाङ्घ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥ ५ ॥

गिरिशगिरिसुतामनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ।
सुरवरदनुजेन्द्रसेविताङ्घ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये ॥ ६ ॥
परधनपरदारवर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ।
परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये ॥ ७ ॥
स्मितरुचिरविकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराजराजनीलम् ।
सितजलरुहचारुनेत्रशोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये । ८ ॥
हरिकमलजशम्भुरूपभेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः ।
रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपतिस्तुतिपात्रमीशमीडे ।. ९ ॥
रतिपतिशतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥ १० ॥

इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः ।
उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ॥ ११ ॥
शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद्वा नियतः पठेत् ।
स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ।' १२ ॥
इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः ।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमदध्यात्मरामायणे अरण्यकाण्डे
जटायुकृतं रामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१०४. रामाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

भजे विशेषसुन्दरं समस्तपापखण्डनम् ।
स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव राममद्वयम् ॥ १ ॥

जटाकलापशोभितं समस्तपापनाशकम् ।
स्वभक्तभीतिभञ्जनं भजे ह राममद्वयम् ॥ २ ॥
निजस्वरूपबोधकं कृपाकरं भवापहम् ।
समं शिवं निरञ्जनं भजे ह राममद्वयम् ॥ ३ ॥

सहप्रपञ्चकल्पितं ह्यनामरूपवास्तवम् ।
निराकृतिं निरामयं भजे ह राममद्वयम् ॥ ४ ॥
निष्प्रपञ्चनिर्विकल्पनिर्मलं निरामयम् ।
चिदेकरूपसन्ततं भजे ह राममद्वयम् ॥ ५ ॥

भवाब्धिपोतरूपकं ह्यशेषदेहकल्पितम् ।
गुणाकरं कृपाकरं भजे ह राममद्वयम् ॥ ६ ॥
महावाक्यबोधकैर्विराजमानवाक्पदैः ।
परब्रह्म व्यापकं भजे ह राममद्वयम् ॥ ७ ॥

शिवप्रदं सुखप्रदं भवच्छिदं भ्रमापहम् ।
विराजमानदैशिकं भजे ह राममद्वयम् ॥ ८ ॥

रामाष्टकं पठति यः सुकरं सुपुण्यं
व्यासेन भाषितमिदं शृणुत मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीव्यासविरचितं रामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

—: ❀ :—

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां ।
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ॥
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां ।
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥



कृष्णस्तोत्राणि

१०५. तत्र प्रातः स्मरणम्

श्रीगणेशाय नमः

प्रातः स्मरेद्भगवतो वरविट्ठलस्य
पादारविन्दयुगलं सकलार्थसिद्ध्यै ।
यो वै वितर्कतमसा पिहितं स्वभक्तं
प्रीतः शमादिवपुरोदिततिग्मरश्मिः ॥ १ ॥

प्रातः स्मरेन्मननिर्वृतिदं मुरारेः
पूर्णावतारवरविट्ठलपादपद्मम् ।
मायाविकृत्यगहनं गतबन्धुलोके
यो वै स्वमार्गमनयत्कृपया प्रपन्नम् ॥ २ ॥

प्रातर्भजेदमलमूर्तिमनन्तशक्तेः
श्रीविट्ठलस्य जनतापहरस्य नित्यम् ।
यो वै जनस्य शतजन्मकृतापराधं
पादानतस्य कृपयाऽपनुनोद सत्यम् ॥ ३ ॥

प्रातर्नता भजत भक्तजनाः सशिष्या
नारायणं नरवरं द्विजविट्ठलेशम् ।
धर्मार्थकामभवमोक्षदमंहसोऽरिं
संसारदुःखशमनं गुरुमादिदेवम् ॥ ४ ॥

प्रातर्जना गदत नाम नरोत्तमस्य
श्रीविट्ठलस्य हरिवल्लभवल्लभस्य ।

इष्टार्थदं सुखकरं मतिमानदं च
सर्वाघशोकशमनं गदतो नरस्य ॥ ५ ॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं सततं पठेच्चेत्
स स्यात्सुखी सुविषयी विदुषां वरिष्ठः ।
देवोपदेवगणभीतिहरं च हारं
सर्वावतारशमनं हरितोषणं च ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीविट्ठलेश्वराणां प्रातःस्मरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१०६. श्रीकृष्णाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

वासुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ १ ॥
अतसीपुष्पसङ्काशं हारनूपुरशोभितम् ।
रत्नकङ्कणकेयूरं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ २ ॥
मन्दारगन्धसंयुक्तं चारुहासं चतुर्भुजम् ।
बर्हिपिच्छावचूडाङ्गं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ३ ॥
उत्फुल्लपद्मपत्राक्षं नीलजीमूतसन्निभम् ।
यादवानां शिरोरत्नं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ४ ॥
रुक्मिणीकेलिसंयुक्तं पीताम्बरसुशोभितम् ।
अवाप्ततुलसीगन्धं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ५ ॥
गोपिकानां कुचद्वन्द्वकुङ्कुमाङ्कितवक्षसम् ।
श्रीनिकेतं महेष्वासं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ६ ॥

श्रीवत्साङ्कं महोरस्कं वनमालाविराजितम् ।
शङ्खचक्रधरं देवं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ७ ॥
कृष्णाष्टकमिदं पुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
कोटिजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥ ८ ॥
॥ इति श्रीकृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

१०७. श्रीगोपालाक्षयकवचम्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीनारद उवाच—

इन्द्राद्यमरवर्गेषु ब्रह्मन्यत्परमाद्भुतम् ।
अक्षयं कवचं नाम कथयस्व मम प्रभो ॥ १ ॥
यद्धृत्वाऽऽकर्ण्य वीरस्तु त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।

ब्रह्मोवाच—

शृणु पुत्र मुनिश्रेष्ठ कवचं परमाद्भुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रादिदेववृन्दैश्च नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥ ३ ॥
ऋषिश्छन्दो देवता च सदा नारायणः प्रभुः ।
अस्य श्रीत्रैलोक्यविजयाक्षयकवचस्य प्रजापतिर्ऋषिः ।
अनुष्टुप् छन्दः । श्रीनारायणः परमात्मा देवता ।
धर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः ।
पादौ रक्षतु गोविन्दो जङ्घे पातु जगत्प्रभुः ॥ ४ ॥

ऊरू द्वौ केशवः पातु कटी दामोदरस्ततः ।
वदनं श्रीहरिः पातु नाडीदेशं च मेऽच्युतः ॥ ५ ॥
वामपार्श्वं तथा विष्णुर्दक्षिणं च सुदर्शनः ।
बाहुमूले वासुदेवो हृदयं च जनार्दनः ॥ ६ ॥
कण्ठं पातु वराहश्च कृष्णश्च मुखमण्डलम् ।
कर्णौ मे माधवः पातु हृषीकेशश्च नासिके ॥ ७ ॥
नेत्रे नारायणः पातु ललाटं गरुडध्वजः ।
कपोलौ केशवः पातु चक्रपाणिः शिरस्तथा ॥ ८ ॥
प्रभाते माधवः पातु मध्याह्ने मधुसूदनः ।
दिनान्ते दैत्यनाशश्च रात्रौ रक्षतु चन्द्रमाः ॥ ९ ॥
पूर्वस्यां पुण्डरीकाक्षो वायव्यां च जनार्दनः ।
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥ १० ॥
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं न वक्तव्यं तु कस्यचित् ।
कवचं धारयेद्यस्तु साधको दक्षिणे भुजे ॥ ११ ॥
देवा मनुष्या गन्धर्वा यज्ञास्तस्य न संशयः ।
योषिद्वामभुजे चैव पुरुषो दक्षिणे भुजे ॥ १२ ॥
निभृयात्कवचं पुण्यं सर्वसिद्धियुतो भवेत् ।
कण्ठे यो धारयेदेतत् कवचं मत्स्वरूपिणम् ॥ १३ ॥
युद्धे जयमवाप्नोति द्यूते वादे च साधकः ।
सर्वथा जयमाप्नोति निश्चितं जन्मजन्मनि ॥ १४ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं रोगनाशस्तथा भवेत् ।
सर्वतापप्रमुक्तश्च विष्णुलोकं स गच्छति ॥

॥ इति श्रीब्रह्मसंहितायां श्रीगोपालाक्षयकवचम् ॥

१०८. भगवन्मानसपूजनं

श्रीगणेशाय नमः ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

हृदयम्भोजे कृष्णः सजलजलदश्यामलतनुः
सरोजाक्षः स्रग्वी मुकुटकटकाद्याभरणवान् ।
शरद्राका नाथप्रतिमवदनः श्रीमुरलिकां,
वहन्ध्येया गोपीगणपरिवृतः कुङ्कुमचितः ॥ १ ॥

पयोम्भोधेर्द्वीपान्मम हृदयमायाहि भगवन्,
मणिव्रातभ्राजत्कनकवरपीठं भज हरे ।
सुचिह्नौ ते पादौ यदुकुलज नेनेज्मि सुजलै-
र्गृहाणेदं दूर्वाफलजलवदर्घ्यं मुररिपो ॥ २ ॥

त्वमाचामोपेन्द्र त्रिदशसरिदम्भोऽतिशिशिरं
भजस्वेमं पञ्चामृतरचितमाप्लावमघहन् ।
द्युनद्याः कालिन्द्या अपि कनककुम्भस्थितमिदं
जलं तेन स्नानं कुरु कुरु कुरुष्वाचमनकम् ॥ ३ ॥

तडिद्वर्णे वस्त्रे भयविजयकान्ताधिहरणप्रलम्बा-
रिभ्रातर्मृदुलमुपवीतं कुरु गले ।
ललाटे पाटीरं मृगमदयुतं धारय हरे
गृहाणेदं माल्यं शतदलतुलस्यादिरचितम् । ४ ॥

दशाङ्गं धूपं सद्वरदचरणाग्रेऽर्पितमये
मुखं दीपेनेन्दुप्रभवरजसा देव कलये ।
इमौ पाणी वाणीपतिनुत सकर्पूररजसा
विशोध्याग्रे दत्तं सलिलमिदमाचाम नृहरे ॥ ५ ॥

सदातृप्तान्नं षड्रसवदखिलव्यञ्जनयुतं
सुवर्णामत्रे गोघृतचषकयुक्ते स्थितमिदम् ।
यशोदासूनो तत्परमदययाऽशान सुरभिः
प्रसादं वाञ्छद्भिः सह तदनु नीरं पिब विभो ।। ६ ।।

सचन्द्रं ताम्बूलं मुखरुचिकरं भक्षय हरे
फलं स्वादु प्रीत्या परिमलवदास्वादय चिरम् ।
सपर्यापर्याप्त्यै कनकमणिजातं स्थितमिदं
प्रदीपैरारार्तिं जलधितनयाश्लिष्ट रचये ॥ ७ ॥

विजातीयैः पुष्पैरभिसुरभिभिर्बिल्वतुलसी-
युतैश्चेमं पुष्पाञ्जलिमजित ते मूर्ध्नि निदधे ।
तव प्रादक्षिण्यक्रमणमघविध्वंसि रचितं
चतुर्वारं विष्णो जनिपथगतिश्रान्तविदुषा ।। ८ ।।

नमस्कारोऽष्टाङ्गः सकलदुरितध्वंसनपटुः
कृतं नृत्यं गीतं स्तुतिरपि रमाकान्त त इमम् ।
तव प्रीत्यै भूयादहमपि च दासस्तव विभो
कृतं छिद्रं पूर्णं कुरु कुरु नमस्तेऽस्तु भगवन् ॥ ९ ॥

सदा सेव्यः कृष्णः सजलघननीलः करतले
दधानो दध्यन्नं तदनु नवनीतं मुरलिकाम् ।
कदाचित्कान्तानां कुचकलशपत्रालिरचना-
समासक्तं स्निग्धैः सह शिशुविहारं विरचयन् ॥ १० ॥

मणिकर्णीच्छया जातमिदं मानसपूजनम् ।
यः कुर्वीतोषसि प्राज्ञस्तस्य कृष्णः प्रसीदति ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं भगवन्मानसपूजनं सम्पूर्णम् ॥

१०९. श्रीकृष्णस्तवराजः

श्रीगणेशाय नमः श्रीकृष्णाय नमः

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं परमदुर्लभम् ।
यज्ज्ञात्वा न पुनर्गच्छेन्नरो निरययातनाम ॥ १ ॥
नारदाय च यत्प्रोक्तं ब्रह्मपुत्रेण धीमता ।
सनत्कुमारेण पुरा योगीन्द्रगुरुवर्त्मना ॥ २ ॥

श्रीनारद उवाच—

प्रसीद भगवन्मह्यमज्ञानात्कुंठितात्मने ।
तवांघ्रिपंकजरजोरागिणीं भुक्तिमुत्तमाम् ॥ ३ ॥

अज प्रसीद भगवन्नमितद्युतिपञ्जर ।
अप्रमेय प्रसीदास्मद्दुःखहन्पुरुषोत्तम ॥ ४ ॥

स्वसंवेद्य प्रसीदास्मदानन्दात्मन्ननामय ।
अचिन्त्यसार विश्वात्मन्प्रसीद परमेश्वर ॥ ५ ॥

प्रसीद तुङ्ग तुङ्गानां प्रसीद शिव शोभन ।
प्रसीद गुणगम्भीर गम्भीराणां महाद्युते ॥ ६ ॥

प्रसीद व्यक्त विस्तीर्ण विस्तीर्णानामगोचर ।
प्रसीदार्द्रार्द्र जातीनां प्रसीदान्तान्तदायिनाम् ॥ ७ ॥

गुरोर्गरीयः सर्वेश प्रसीदानन्त देहिनाम् ।
जय माधव मायात्मन् जय शाश्वत शङ्खभृत् ॥ ८ ॥

जय शङ्खधर श्रीमन् जय नन्दकनन्दन ।
जय चक्रगदापाणे जय देव जनार्दन ॥ ९ ॥

जय रत्नवराबद्धकिरीटाक्रान्तमस्तक ।
जय पक्षिपतिच्छायानिरुद्धार्ककरारुण ॥ १० ॥

नमस्ते नरकाराते नमस्ते मधुसूदन।
नमस्ते ललितापाङ्ग नमस्ते नरकान्तक ॥ ११ ॥

नमः पापहरेशान नमः सर्वभयापह।
नमः सम्भूतसर्वात्मन्नमः संभृतकौस्तुभ ॥ १२ ॥

नमस्ते नयनातीत नमस्ते भयहारक।
नमो विभिन्नवेषाय नमः श्रुतिपथातिग ॥ १३ ॥

नमस्त्रिमूर्तिभेदेन सर्गस्थित्यन्तहेतवे।
विष्णवे त्रिदशारातिजिष्णवे परमात्मने ॥ १४ ॥

चक्रभिन्नारिचक्राय चक्रिणे चक्रवल्लभ।
विश्वाय विश्ववन्द्याय विश्वभूतानुवर्तिने ॥ १५ ॥

नमोऽस्तु योगिध्येयात्मन्नमोऽस्त्वध्यात्मरूपिणे।
भक्तिप्रदाय भक्तानां नमस्ते भक्तिदायिने ॥ १६ ॥

पूजनं हवनं चेज्या ध्यानं पश्चान्नमस्क्रिया।
देवेश कर्म सर्वं मे भवेदाराधनं तव ॥ १७ ॥

इति हवनजपार्चाभेदतो विष्णुपूजा-
नियतहृदयकर्मा यस्तु मन्त्री चिराय।
स खलु सकलकामान् प्राप्य कृष्णान्तरात्मा
जननमृतिविमुक्तोऽप्युत्तमां भक्तिमेति ॥ १८ ॥

गोगोपगोपिकावीतं गोपालं गोषु गोप्रदम्।
गोपैरीड्यं गोसहस्रैर्नौमि गोकुलनायकम् ॥ १९ ॥

प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीनारदपञ्चरात्रे ज्ञानामृतसारे
श्रीकृष्णस्तवराजः सम्पूर्णः ॥

११०. श्रीकृष्णस्तवराजस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीकृष्णः शरणं मम

अनन्तकन्दर्पकलाविलासं किशोरचन्द्रं रसिकेन्द्रशेखरम् ।
श्यामं महासुन्दरतानिधानं श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ १ ॥

अनन्तविद्युद्द्युतिचारुपीतं कौशेयसंवीतनितम्बबिम्बम् ।
अनन्तमेघच्छविदिव्यमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ २ ॥

महेन्द्रचापच्छविपिच्छचूडं कस्तूरिकाचित्रकशोभिमालम् ।
मन्दादरोद्घूर्णविशालनेत्रं श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ ३ ॥

भ्राजिष्णुगल्लं मकराङ्कितेन विचित्ररत्नोज्ज्वलकुण्डलेन ।
कोटीन्दुलावण्यमुखारविन्दं श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ ४ ॥

वृन्दाटवीमञ्जुलकुञ्जवाद्यं श्रीराधया सार्धमुदारकेलिम् ।
आनन्दपुञ्जं ललितादिदृश्यं श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ ५ ॥

महार्हकेयूरककङ्कणश्रीग्रैवेयहारावलिमुद्रिकाभिः ।
विभूषितं किङ्किणिनूपुराभ्यां श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ ६ ॥

विचित्ररत्नोज्ज्वलदिव्यवासाप्रगीतरामागुणरूपलीलम् ।
मुहुर्मुहुः प्रोद्धितरोमहर्षं श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ ७ ॥

श्रीराधिकेयाधरसेवनेन माद्यन्तमुच्चै रतिकेलिलोलम् ।
स्मरोन्मदान्धं रसिकेन्द्रमौलिं श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ ८ ॥

अङ्के निधाय प्रणयेन राधां मुहुर्मुहुश्चुम्बिततन्मुखेन्दुः ।
विचित्रवेषैः कृततद्विभूषणं श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीकृष्णदासविरचितं श्रीकृष्णस्तवः समाप्तम् ।

१११. श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीकृष्णाय नमः

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि।
पाषण्डप्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम ॥ १ ॥
म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषु च।
सत्पीडाव्यग्रलोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ २ ॥

गङ्गादितीर्थवर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह।
तिरोहिताधिदेवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ३ ॥
अहंकारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्तिषु।
लाभपूजार्थयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ४ ॥

अपरिज्ञाननष्टेषु मन्त्रेष्वव्रतयोगिषु।
तिरोहितार्थदैवेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ५ ॥
नाना कार्यविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु।
पाषण्डैकप्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ६ ॥

अजामिलादिदोषाणां नाशकोऽनुभवे स्थितः।
ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ७ ॥
प्राकृताः सकला देवा गणितानन्दकं बृहत्।
पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात्कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ८ ॥

विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य विशेषतः।
पापसक्तस्य दीनस्य कृष्ण एव गतिर्मम ॥ ९ ॥
सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत्।
शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् ॥ १० ॥

कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत्कृष्णसन्निधौ।
तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत् ॥११॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं कृष्णाश्रयस्तोत्रं समाप्तम् ॥

११२. गोपालस्तवः

श्रीगणेशाय नमः श्रीगोपालाय नमः

येन मनोस्वरूपेण वेदाः संरक्षिताः पुरा ।
स एव वेदसंहर्ता गोपालः शरणं मम ॥ १ ॥
पृष्ठे यः कूर्मरूपेण दधार धरणीतलम् ।
स एव सृष्टिसंहर्ता गोपालः शरणं मम ॥ २ ॥
वराहरूपः संभूत्या दन्ष्ट्राग्रे यो महीं दधौ ।
स भूमिभारहरणो गोपालः शरणं मम ॥ ३ ॥
जग्राह यो नृसिंहस्य रूपं प्रह्लादहेतवे ।
स योद्धुमुद्यतः सम्यग्गोपालः शरणं मम ॥ ४ ॥
येन वामनरूपेण वञ्चितो बलिभूमिपः ।
स एव गोपनारीभिर्गोपालः शरणं मम ॥ ५ ॥
येनेयं जामदग्न्येन पृथ्वी निःक्षत्रिया कृता ।
स एव क्षत्त्रियहितो गोपालः शरणं मम ॥ ६ ॥
दशास्यो दाशरथिना येन रामेण मारितः ।
स पञ्चास्यप्राप्तबलो गोपालः शरणं मम ॥ ७ ॥
कालिन्दी कर्षिता येन रामरूपेण कौतुकात् ।
तज्जलक्रीडनासक्तो गोपालः शरणं मम ॥ ८ ॥
येन बौद्धस्वरूपेण लोकाः पाखण्डमार्गगाः ।
स एव पाखण्डहरो गोपालः शरणं मम ॥ ९ ॥
गमिष्यन्ति क्षयं येन राक्षसाः कल्किरूपिणा ।
स रक्षसां गतेर्दाता गोपालः शरणं मम ॥ १० ॥
गोवर्धनो गिरिर्येन स्थापितः कञ्जवत्करे ।
उलूखलेन सहितो गोपालः शरणं मम ॥ ११ ॥
एकादशस्वीयधाम्नामावलिं यो लिखेद्धृदि ।
कृष्णप्रसादयुक्तश्च स याति परमां गतिम् ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीरघुनाथ (जी) कृतो गोपालस्तवः सम्पूर्णः ॥

११३. श्रीकृष्णलहरीस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीकृष्णाय नमः

कदा वृन्दारण्ये विपुलयमुनातीरपुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम् ।
अये कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरलीमोहन विभो
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ १ ॥

कदा कालिन्दीयैर्हरिचरणमुद्राङ्किततटैः
स्मरन्गोपीनाथं कमलनयनं सस्मितमुखम् ।
अहो पूर्णानन्दाम्बुजवदन भक्तैकललन
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ २ ॥

कदाचित्खेलन्तं व्रजपरिसरे गोपतनयैः
कुतश्चित्सम्प्राप्तं किमपि लसितं गोपललनम् ।
अये राधे किं वा हरसि रसिके कञ्चुकयुगं
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ३ ॥

कदाचिद्गोपीनां हसितचकितस्निग्धनयनं
स्थितं गोपीवृन्दे नटमिव नटन्तं सुललितम् ।
सुराधीशैः सर्वैः स्तुतपदमिदं श्रीहरिमिति
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ४ ॥

कदाचित्सच्छायाश्रितमभिमहान्तं यदुपतिं
समाधिस्वच्छायां चल इव विलोकैकमकरम् ।
अये भक्तोदाराम्बुजवदन नन्दस्य तनय
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ५ ॥

कदाचित्कालिन्द्यास्तटतरुकदम्बे स्थितममुं
स्मयन्तं साकूतं हृतवसनगोपीसुतपदम् ।

अहो शक्रानन्दाम्बुजवदन गोवर्धनधर
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ६ ॥

कदाचित्कान्तारे विजयसखमिष्टं नृपसुतं
वदन्तं पार्थेति नृपसुतसखे बन्धुरिति च ।
भ्रमन्तं विश्रान्तं श्रितमुरलिमास्यं हरिममी
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ७ ॥

कदा द्रक्ष्ये पूर्णं पुरुषममलं पङ्कजदृश-
महो विष्णो योगिन् रसिकमुरलीमोहन विभो ।
दयां कर्तुं दीने परमकरुणाब्धे समुचितं
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीविरचितं श्रीकृष्णलहरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

११४. श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीकृष्णाय नमः

प्राकृतधर्मानाश्रयमप्राकृतनिखिलधर्मरूपमिति ।
निगमप्रतिपाद्यं यत्तच्छुद्धं साकृति स्तौमि ॥ १ ॥

कलिकालतमश्छन्नदृष्टित्वाद्विदुषामपि ।
संप्रत्यविषयस्तस्य माहात्म्यं समभूद्भुवि ॥ २ ॥

दयया निजमाहात्म्यमकरोत्प्रकटं हरिः ।
वाण्या यदा तदा स्वास्यं प्रादुर्भूतं चकार हि ॥ ३ ॥

तदुक्तमपि दुर्बोधं सुबोधं स्याद्यथा तथा ।
तन्नामाष्टोत्तरशतं प्रवक्ष्याम्यखिलाघहृत् ॥ ४ ॥

ऋषिरग्निकुमारस्तु नाम्नां छन्दो जगत्यसौ।
श्रीकृष्णाऽऽख्यं देवता च बीजं कारुणिकः प्रभु ॥५॥
विनियोगो भक्तियोगः प्रतिबन्धविनाशने।
कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिरत्र न संशयः ॥ ६ ॥
आनन्दः परमानन्दः श्रीकृष्णास्यः कृपानिधिः।
दैवोद्धारप्रयत्नात्मा स्मृतिमात्रार्तिनाशनः ॥ ७ ॥
श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणः।
साकारब्रह्मवादैकस्थापको वेदपारगः ॥ ८ ॥
मायावादनिराकर्ता सर्ववादिनिरासकृत्।
भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डः स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिक्षमः ॥ ९ ॥
अङ्गीकृत्यैव गोपीशवल्लभीकृतमानवः।
अङ्गीकृतौ समर्यादो महाकारुणिको विभुः ॥ १० ॥
अदेयदानदक्षश्च महोदारचरित्रवान्।
प्राकृतानुकृतिव्याजमोहितासुरमानुषः ॥ ११ ॥
वैश्वानरो वल्लभाख्यः सद्रूपो हितकृत्सताम्।
जनशिक्षाकृते कृष्णभक्तिकृन्निखिलेष्टदः ॥ १२ ॥
सर्वलक्षणसम्पन्नः श्रीकृष्णज्ञानदो गुरुः।
स्वानन्दतुन्दिलः पद्मदलायतविलोचनः ॥ १३ ॥
कृपादृग्वृष्टिसंहृष्टदासदासीप्रियः पतिः।
रोषदृक्पातसम्प्लुष्टभक्तद्विट् भक्तसेवितः ॥ १४ ॥
सुखसेव्यो दुराराध्यो दुर्लभाङ्घ्रिसरोरुहः।
उग्रप्रतापो वाक्सी (शी) धुपूरिताशेषसेवकः ॥ १५ ॥
श्रीभागवतपीयूषसमुद्रमथनक्षमः।
तत्सारभूतरासस्त्रीभावपूरितविग्रहः ॥ १६ ॥

सान्निध्यमात्रदत्तश्रीकृष्णप्रेमा विमुक्तिदः ।
रासलीलैकतात्पर्यः कृपयैतत्कथाप्रदः ॥ १७ ॥

विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागोपदेशकः ।
भक्त्याचारोपदेष्टा च कर्ममार्गप्रवर्तकः ॥ १८ ॥

यागादौ भक्तिमार्गैकसाधनत्वोपदेशकः ।
पूर्णानन्दः पूर्णकामो वाक्पतिर्विबुधेश्वरः ॥ १९ ॥

कृष्णनामसहस्रस्य वक्ता भक्तिपरायणः ।
भक्त्याचारोपदेशार्थनानावाक्यनिरूपकः ॥ २० ॥

स्वार्थोज्झिताखिलप्राणप्रियस्तादृशचेष्टितः ।
स्वदासार्थे कृताशेषसाधनः सर्वशक्तिधृक् ॥ २१ ॥

भुवि भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृत्पिता ।
स्ववंशे स्थापिताशेषस्वमाहात्म्यः स्मयापहः ॥ २२ ॥

पतिव्रतापतिः पारलौकिकैहिकदानकृत् ।
निगूढहृदयोऽनन्यभक्तेषु ज्ञापिताशयः ॥ २३ ॥

उपासनादिमार्गातिमुग्धमोहनिवारकः ।
भक्तिमार्गे सर्वमार्गवैलक्षण्यानुभूतिकृत् ॥ २४ ॥

पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा श्रीकृष्णहार्दवित् ।
प्रतिक्षणनिकुञ्जस्थलीलारससुपूरितः ॥ २५ ॥

तत्कथाक्षिप्तचित्तस्तद्विस्मृतान्यो व्रजप्रियः ।
प्रियव्रजस्थितिः पुष्टिलीलाकर्ता रहःप्रियः ॥ २६ ॥

भक्तेच्छापूरकः सर्वाज्ञातलीलोऽतिमोहनः ।
सर्वासक्तो भक्तमात्रासक्तः पतितपावनः ॥ २७ ॥

स्वयशोगानसंहृष्टहृदयाम्भोजविष्टरः ।
यशःपीयूषलहरीप्लावितान्यरसः परः ॥ २८ ॥

लीलामृतरसार्द्रार्द्रीकृताखिलशरीरभृत् ।
गोवर्धनस्थित्युत्साहस्तल्लीलाप्रेमपूरितः ॥ २९ ॥

यज्ञभोक्ता यज्ञकर्ता चतुर्वर्गविशारदः ।
सत्यप्रतिज्ञस्त्रिगुणातीतो नयविशारदः ॥ ३० ॥

स्वकीर्तिवर्धनस्तत्त्वसूत्रभाष्यप्रदर्शकः ।
मायावादाख्यतूलाग्निर्ब्रह्मवादनिरूपकः ॥ ३१ ॥

अप्राकृताऽखिलाकल्पभूषितः सहजस्मितः ।
त्रिलोकीभूषणं भूमिभाग्यं सहजसुन्दरः ॥ ३२ ॥

अशेषभक्तसंप्रार्थ्यचरणाब्जरजोधनः ।
इत्यानन्दनिधेः प्रोक्तं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥ ३३ ॥

श्रद्धाविशुद्धबुद्धिर्यः पठत्यनुदिनं जनः ।
स तदेकमनाः सिद्धिमुक्तां प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ३४ ॥

तदप्राप्तौ वृथा मोक्षस्तदाप्तौ तद्गतार्थता ।
अतः सर्वोत्तमं स्तोत्रं जप्यं कृष्णरसार्थिभिः ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमदग्निकुमारप्रोक्तं सर्वोत्तमस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

११५. नामरत्नाख्यस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

यन्नामार्कोदयात्पापध्वान्तराशिः प्रशाम्यति ।
विकसन्ति हृदब्जानि तन्नामानि सदाश्रये ॥ १ ॥

अनुष्टुभमिहच्छन्द ऋषिरग्निकुमारजः ।
सर्वशक्तिसमायुक्तो देवः श्रीवल्लभात्मजः ॥ २ ॥

विनियोगः समस्तेष्टसिद्ध्यर्थे विनिरूपितः ।
श्रीविठ्ठलः कृपासिन्धुर्भक्तवश्योऽतिसुन्दरः ॥ ३ ॥

कृष्णलीलारसाविष्टः श्रीमान्वल्लभनन्दनः ।
दुर्दर्शो भक्तसंदृश्यो भक्तिगम्यो भयापहः ॥ ४ ॥

अनन्यभक्त हृदयो दीनानाथैकसंश्रयः ।
राजीवलोचनो रासलीलारसमहोदधिः ॥ ५ ॥

धर्मसेतुर्भक्तिसेतुः सुखसेव्यो व्रजेश्वरः ।
भक्तशोकापहः शान्तः सर्वज्ञः सर्वकामदः ॥ ६ ॥

रुक्मिणीरमणः श्रीशो भक्तरत्नपरीक्षकः ।
भक्तरक्षैकदक्षः श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तकः ॥ ७ ॥

महासुरतिरस्कर्ता सर्वशास्त्रविदग्रणीः ।
कर्मजाड्यभिदुष्णांशुर्भक्तनेत्रसुधाकरः ॥ ८ ॥

महालक्ष्मीगर्भरत्नं कृष्णवर्त्मसमुद्भवः ।
भक्तचिन्तामणिर्भक्तिकल्पद्रुमनवाङ्कुरः ॥ ९ ॥

श्रीगोकुलकृतावासः कालिन्दीपुलिनप्रियः ।
गोवर्धनागमरतः प्रियवृन्दावनाचलः ॥ १० ॥

गोवर्धनाद्रिमखकृन्महेन्द्रमदभित्प्रियः ।
कृष्णलीलैकसर्वस्वः श्रीभागवतभाववित् ॥ ११ ॥

पितृप्रवर्तितपथप्रचारसुविचारकः ।
व्रजेश्वरप्रीतिकर्ता तन्निमन्त्रणभोजकः ॥ १२ ॥

बाललीलादिसुप्रीतो गोपीसम्बन्धिसत्कथः ।
अतिगम्भीरतात्पर्यः कथनीयगुणाकरः ॥ १३ ॥

पितृवंशोदधिविभुः स्वानुरूपसुतप्रसूः ।
दिक्चक्रवर्ती सत्कीर्तिर्महोज्ज्वलचरित्रवान् ॥ १४ ॥

अनेकक्षितिपश्रेणीमूर्धासक्तपदाम्बुजः ।
विप्रदारिद्र्यदावाग्निर्भूदेवाग्निप्रपूजकः ॥ १५ ॥

गोब्राह्मणप्राणरक्षापरः सत्यपरायणः ।
प्रियश्रुतिपथः शश्वन्महामखकरः प्रभुः ॥ १६ ॥
कृष्णानुग्रहसंलभ्यो महापतितपावनः ।
अनेकमार्गसंक्लिष्टजीवस्वास्थ्यप्रदो महान् ॥ १७ ॥
नानाभ्रमनिराकर्ता भक्ताज्ञानभिदुत्तमः ।
महापुरुषसत्ख्यातिर्महापुरुषविग्रहः ॥ १८ ॥
दर्शनीयतमो वाग्मी मायावादनिरासकृत् ।
सदा प्रसन्नवदनो मुग्धस्मितमुखाम्बुजः ॥ १९ ॥
प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षः क्षितिमण्डलमण्डलः ।
त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्तिर्धवलीकृतमेचकः ॥ २० ॥
वाक्सुधाकृष्टभक्तान्तःकरणः शत्रुतापनः ।
भक्तसंप्रार्थितकरो दासदासीप्सितकृदः ॥ २१ ॥
अचिन्त्यमहिमाऽमेयो विस्मयास्पदविग्रहः ।
भक्तक्लेशासहः सर्वसहो भक्तकृते वशः ॥ २२ ॥
आचार्यरत्नं सर्वानुग्रहकृन्मन्त्रवित्तमः ।
सर्वस्वदानकुशलो गीतसंगीतसागरः ॥ २३ ॥
गोवर्धनाचलसखो गोपगोगोपिकाप्रियः ।
चिन्तितज्ञो महाबुद्धिर्जगद्वन्द्यपदाम्बुजः ॥ २४ ॥
जगदाश्चर्यरसकृत्सदाकृष्णकथाप्रियः ।
सुखोदर्ककृतिः सर्वसंदेहच्छेददक्षिणः ॥ २५ ॥
स्वपक्षरक्षणे दक्षः प्रतिपक्षक्षयंकरः ।
गोपिकाविरहाविष्टः कृष्णात्मा स्वसमर्पकः ॥ २६ ॥
निवेदितस्वसर्वस्वः शरणाध्वप्रदर्शकः ।
श्रीकृष्णानुगृहीतैकप्रार्थनीयपदाम्बुजः ॥ २७ ॥

इमानि नामरत्नानि श्रीविठ्ठलपदाम्बुजम् ।
ध्यात्वा तदेकशरणो यः पठेत्स हरिं लभेत् ॥ २८ ॥

यद्यन्मनस्यभिध्यायेत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ।
नामरत्नाभिधमिदं स्तोत्रं यः प्रपठेत्सुधीः ॥ २९ ॥

तदीयत्वं गृहाणाशु प्रार्थ्यमेतन्मम प्रभो ।
श्रीविठ्ठलपदाम्भोजमकरन्दजुषोऽनिशम् ।
इयं श्रीरघुनाथस्य कृतिर्विजयतेतराम् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीसर्वोत्तमनामरत्नाख्यं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

११६. स्फुरत्कृष्णप्रेमामृतसप्तश्लोकी-स्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीकृष्णाय नमः

स्फुरत्कृष्णप्रेमामृतरसभरेणातिभरिता
विहारान्कुर्वाणा व्रजपतिविहाराब्धिषु सदा ।
प्रिया गोपीभर्तुः स्फुरतु सततं वल्लभ इति
प्रथावत्यस्माकं हृदि सुभगमूर्तिः सकरुणा ॥ १ ॥

श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावांशुभूषिता मूर्तिः ।
श्रीवल्लभाभिधानस्तनोतु निजदास्यसौभाग्यम् ॥ २ ॥

मायावादतमो निरस्य मधुभित्सेवाख्यवर्त्माद्भुतं
श्रीमद्गोकुलनाथसङ्गमसुधासम्प्रापकं तत्क्षणात् ।
दुष्प्रापं प्रकटीचकार करुणारागादिसंमोहनः
स श्रीवल्लभभानुरुल्लसति यः श्रीबल्लवीशान्तरः ॥ ३ ॥

क्वचित्पाण्डित्यं चेन्न निगमगतिः सापि यदि न
क्रिया सा सापि स्याद्यदि न हरिमार्गे परिचयः ।

यदि स्यात्सोऽपि श्रीव्रजपतिरतिर्नेति निखिलै-
गुणैरन्यः को वा विलसति विना वल्लभवरम् ॥ ४ ॥

मायावादिकरीन्द्रदर्पदलनेनास्येन्दुराजोद्गत-
श्रीमद्भागवताख्यदुर्लभसुधावर्षेण वेदोक्तिभिः ।
राधावल्लभसेवया तदुदितप्रेम्णोपदेशैरपि
श्रीमद्वल्लभनामधेयसदृशो भावी न भूतोऽस्त्यपि ॥ ५ ॥

यदङ्घ्रिनखमण्डलप्रसृतवारिपीयूषयुग्
वराङ्गहृदयैः कलिस्तृणमिवेह तुच्छीकृतः ।
व्रजाधिपतिरिन्दिराप्रभृतिमृग्यपादाम्बुजः
क्षणेन परितोषितस्तदनुगत्वमेवास्तु मे ॥ ६ ॥

अघौघतमसावृतं कलिभुजङ्गमासादितं
जगद्विषयसागरे पतितमस्वधर्मे रतम् ।
यदीक्षणसुधानिधिः समुदितोऽनुकम्पामृता-
दमृत्युमकरोत्क्षणादरणमस्तु मे तत्पदम् ॥ ७ ॥

॥ इति श्रीविठ्ठलेश्वरविरचिता सप्तश्लोकी (स्फु०) सम्पूर्णम् ॥

११७. नामचिन्तामणिस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीराधाकान्ताय नमः

यन्नामाब्जोदयेनैव दारहृत्कुमुदावली ।
तन्नामाष्टाधिकशतं वदामि शिशिरीकृता ॥ १ ॥

प्राकृतं दिनजं दुःखमश्नतां सम्प्रसारणात् ।
हतं तदज्ञानतमस्तत्पूजाप्यधरीकृता ॥ २ ॥

ऋषिः श्रीरघुनाथश्चाऽनुष्टुप् छन्द इहोच्यते ।
बीजं श्रीकृष्णदेवश्च राघुनाथिश्च देवता ॥ ३ ॥

निवेदनान्तसिद्धयर्थं विनियोगः प्रकीर्तितः।
शक्तिः श्रीराधिकाकान्तो नीलमेघातिसुन्दरः॥ ४॥

देवकीनन्दनः श्रीमाञ्जानकीगर्भसंभवः।
रघुनाथात्मजः पुण्यो भक्तपाङ्घ्रिसरोरुहः॥ ५॥

श्रीमन्नन्दात्मभूभक्ति दर्शको ह्यतिसुन्दरः।
विठ्ठलेशकराम्भोजसंलालितमुखाम्बुजः॥ ६॥

श्रीमद्वल्लभसम्भूतमार्गदो भक्तसेवितः।
गोपालादिषु सम्भूतदयः प्रेमाब्धिरत्नदः॥ ७॥

शृङ्गारोदधिमग्नानामुद्धर्ता सर्वशक्तिदः।
गोपीस्त्रीभावसन्तुष्टो गोकुलाधीशहार्दवित्॥ ८॥

चन्द्रावलीप्राणपतिर्देवपूज्यो दयानिधिः।
कृपालुर्मोहसन्तुष्टो भक्तपीयूषसेचकः॥ ९॥

कृष्णैकदैवतः सत्यवक्ता भक्तसुखप्रदः।
सर्वकामप्रदः श्रीशः सर्वज्ञः कञ्जलोचनः॥ १०॥

अतिगम्भीरकथनो मोहिताखिलसज्जनः।
प्रसन्नास्यः कृपासिन्धुर्भक्तक्लेशनिवारकः॥ ११॥

अचिन्त्यमानो यो गीर्भिर्ज्ञानिमोहप्रवर्तकः।
चिन्तिताखिलकर्ता च सुप्रसन्नकलेवरः॥ १२॥

गोगोपगोपिकाधीशप्रियः श्रीकृष्णवर्मवित्।
महामनीषः सद्वृत्तः संप्रार्थितकरो विभुः॥ १३॥

अदेयवस्तुदाता च दक्षिणो जगदाश्रयः।
सर्वमार्गनिराकर्ता भक्तदुःखातिकातरः॥ १४॥

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासवेत्तोद्धतोद्धतः।
श्रीकृष्णकोशस्तन्मार्गकमले सुमधुव्रतः॥ १५॥

प्रियवृन्दावनः कामकोटिमोहनविग्रहः ।
स्त्रीयेष्टबालबोधार्थप्रकाशनपरायणः ॥ १६ ॥

श्रीभागवततत्त्वार्थज्ञाता मित्रसुताप्रियः ।
धृतगोवर्धनाधीशो देवो ह्युदितसद्गणः ॥ १७ ॥

शरणागतभक्तानां त्राता कलिमलापहः ।
आचार्यकुलपीयूषपारावारतमीपतिः ॥ १८ ॥

शरण्यपदपद्मश्रीर्जगदानन्ददायकः ।
अभयेष्टप्रदाता च भक्तदोषहरः प्रभुः ॥ १९ ॥

स्वभक्ताज्ञानभेत्ता च नानारसफलप्रदः ।
गोपालाद्यग्रजे सर्वस्वदानकुशलः कृती ॥ २० ॥

ईप्सितार्थप्रदाता च ग्रहोदारचरित्रवान् ।
मायावादतमःपुञ्जनिराकरणभास्करः ॥ २१ ॥

कलिकल्मषसंहर्ता व्रजवासिसुखालयः ।
यमुनाष्टककर्ता च स्वीयवन्द्यपदाम्बुजः ॥ २२ ॥

संगीतादिसदासक्तः पूतात्मा पुरुषोत्तमः ।
सुखसेव्यः प्रतापी च रसाब्धिकरणक्षमः ॥ २३ ॥

वाग्सुधासिक्तभक्तौघहृदयः कुलमण्डनः ।
प्रतिपक्षाब्धिवडवानलः कल्याणकारकः ॥ २४ ॥

संसारपोषको देवः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
द्विजराजसुकर्मा च सर्वतीर्थकरोऽजयः ॥ २५ ॥

षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नः सूत्रभाष्यार्थभाववित् ।
महाबुद्धिश्चक्रवर्ती कृष्णात्मा भक्तवत्सलः ॥ २६ ॥

अनन्तकीर्तिः सद्व्याप्तिः सर्वशास्त्रार्थदर्शकः ।
नित्यानन्दः सर्वरूपो नीलकण्ठमुखस्थितिः ॥ २७ ॥

राधिकापतिसंसर्गो रसदानैकदीक्षितः ।
तस्माच्छ्रीकृष्णदेवस्य सदृशत्वं मयाकृतम् ॥ २८ ॥

नामचिन्तामणिस्तोत्रं प्रोक्तं यस्तु पठेन्नरः ।
प्रातरुत्थाय सुमनाः स याति परमां गतिम् ॥ २९ ॥

नामचिन्तामणीनां तु देवकीनन्दनस्य वै ।
सम्यक् प्रोक्ता मया माला तदीयानां कृते कलौ ॥ ३० ॥

चरन्तु सुखिता भूत्वा तां गृहीत्वा दयानिधेः ।
स्वीयानां प्रेमयुक्तानां सिद्धिरत्र न संशयः ॥ ३१ ॥

रघुनाथिपदाम्भोजं भक्त्या नत्वा विचारितम् ।
तस्मादनन्यभक्तानां बुद्धिर्भवतु मत्कृतौ ॥ ३२ ॥

॥ इति नामचिन्तामणिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

११८. भुजङ्गप्रयाताष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः

सदा गोपिकामण्डले राजमानं लसन्नृत्यबन्धादिलीलानिदानम् ।
गलद्दर्पकन्दर्पशोभाऽभिदानं भजे नन्दसूनुं सदानन्दरूपम् ॥ १ ॥

व्रजस्त्रीजनानन्दसन्दोहसक्तं सुधावर्षिवंशीनिनादानुरक्तम् ।
त्रिभङ्गाकृतिस्वीकृतस्वीयभक्तं भजे नन्दसूनुं सदानन्दरूपम् ॥२ ॥

स्फुरद्रासलीलाविलासातिरम्यं परित्यक्तगेहादिदासैकगम्यम् ।
विमानस्थिताशेषदेवादिनम्यं भजे नन्दसूनुं सदानन्दरूपम् ॥ ३ ॥

स्वलीलारसानन्ददुग्धोदमग्नं प्रियस्वामिनीबाहुकण्ठैकलग्नम् ।
रसात्मैकरूपाऽवबोधं त्रिभङ्गं भजे नन्दसूनुं सदानन्दरूपम् ॥ ४ ॥

रसामोदसम्पादकं मन्दहासं कृताभीरनारीविहारैकरासम् ।
प्रकाशीकृतस्वीयनानाविलासं भजे नन्दसूनुं सदानन्दरूपम् ॥ ५ ॥

जिताऽनङ्गसर्वाङ्गशोभाभिरामं क्षणापूरितस्वामिनीवृन्दकामम् ।
निजाधीनतावर्तिरामानिवामं भजे नन्दसूनुं सदानन्दरूपम् ॥ ६ ॥

स्वसंगीकृतानन्तगोपालबालं वृतस्वीयगोपीमनोवृत्तिपालम् ।
कृतानन्दचौर्यादिलीलारसालं भजे नन्दसूनुं सदानन्दरूपम् ॥ ७ ॥

धृताद्रीशगोवर्धनाधारहस्तं परित्रातगोगोपगोपीसमस्तम् ।
सुराधीशसर्वादिदेवप्रशस्तं भजे नन्दसूनुं सदानन्दरूपम् ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीहरिदासोक्तं भुजङ्गप्रयाताष्टकं सम्पूर्णम् ॥

११९. श्रीबालकृष्णाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीबालकृष्णाय नमः

श्रीमन्नन्दयशोदाहृदयस्थितभावतत्परो भगवान् ।
पुत्रीकृतनिजरूपः स जयति पुरतः कृपालुर्बालकृष्णः ॥ १ ॥

कथमपि रिङ्गणमकरोदङ्गणगतजानुघर्षणोद्युक्तः ।
कटितटकिङ्कणिजालस्वनशङ्कितमानसः सदा ह्यास्ते ॥ २ ॥

विकसितपङ्कजनयनः प्रकटितहर्षः सदैव धूसराङ्गः ।
परिगच्छति कटिभङ्गप्रसरीकृतपाणियुग्माभ्याम् ॥ ३ ॥

उपलक्षितदधिभाण्डः स्फुरितब्रह्माण्डविग्रहो भुङ्क्ते ।
मुष्टीकृतनवनीतः परमपुनीतो मुग्धभावात्मा ॥ ४ ॥

नम्रीकृतविधुवदनः प्रकटीकृतचौर्यगोपनप्रयासः ।
स्वाम्बोत्संगविलासः क्षुधितः संप्रति दृश्यते स्तनार्थी ॥ ५ ॥

सिंहनखाकृतिभूषणभूषितहृदयः सुशोभते नित्यम् ।
कुण्डलमण्डितगण्डः साञ्जननयनो निरञ्जनः शेते ॥ ६ ॥

कार्यासक्तयशोदागृहकर्माविरोधकः सदास्ते ।
तस्याः स्वान्तनिविष्टप्रणयप्राभाजनो यतोऽयम् ॥ ७ ॥

इत्थं व्रजपतितरुणी नमनीयं ब्रह्मरुद्राद्यैः ।
कमनीयं निजसूनुं लालयति स्म प्रत्यहं प्रीत्या ॥ ८ ॥

श्रीमद्वल्लभकृपया विशदीकृतमेतदष्टकं पठेद्यः ।
तस्य दयानिधिकृष्णे भक्तिः प्रेमैकलक्षणा शीघ्रम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीकृष्णदासविरचितं बालकृष्णाष्टकं समाप्तम् ॥

१२०. नवनीतप्रियाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीनवनीतप्रियाय नमः

अलकावृतलसदलिके विरचितकस्तूरिकातिलके ।
चपलयशोदाबाले शोभितमाले मतिर्मेऽस्तु ॥ १ ॥

मुखरितनूपुरचरणे कटिवद्धक्षुद्रघण्टिकावरणे ।
द्वीपिकरजकृतभूषणभूषितहृदये मतिर्मेऽस्तु ॥ २ ॥

करधृतनवनवनीते हितकृतजननीविभीषिकाभीते ।
रतिमुद्वहताच्चेतो गोपीभिर्वश्यतां नीते ॥ ३ ॥

बालदशामतिमुग्धे चोरितदुग्धे व्रजाङ्गनाभवनात् ।
तदुपालम्भवचोभयविभ्रमनयने मतिर्मेऽस्तु ॥ ४ ॥

व्रजकर्दमलिप्ताङ्गे स्वरूपसुषमांजितानंगे ।
कृतनन्दाङ्गणरिङ्गणविविधविहारे मतिर्मेऽस्तु ॥ ५ ॥

करवरधृतलगुरुकुटे विचित्रमायूरचन्द्रिकामुकुटे ।
नासागतमुक्तामणिजटितविभूषे मतिर्मेऽस्तु ॥ ६ ॥
अभिनन्दनकृतनृत्ये विरचितनिजगोपिकाकृत्ये ।
आनन्दितनिजभृत्ये प्रहसनमुदिते मतिर्मेऽस्तु ॥ ७ ॥
कामादपि कमनीये नमनीये ब्रह्मरुद्राद्यैः ।
निःसाधनभजनीये भावतनौ मे मतिर्भूयात् ॥ ८ ॥
॥ इति श्रीहरिदासोदितं नवनीतप्रियाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

१२१. बालरक्षास्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीकृष्णाय नमः

अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू
यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ।
हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं
विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥ १ ॥
चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्
त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्र—
स्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २ ॥
इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ।
श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोऽवतु ॥ ३ ॥
पृश्निगर्भश्च ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः ।
क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥ ४ ॥

व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ।
भुञ्जानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥ ५ ॥

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ ६ ॥

कोटरारेवतीज्येष्ठापूतनामातृकादयः ।
उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ ७ ॥

स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ।
सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीगोपीकृतबालरक्षा सम्पूर्णा ॥



हनुमत्स्तोत्राणि

१२२. हनुमद्वाडवानलस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ अस्य श्रीहनुमद्वडवानलस्तोत्रमन्त्रस्य । श्रीरामचन्द्र ऋषिः । श्रीवडवानलहनुमान् देवता । मम समस्तरोगप्रशमनार्थं आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धयर्थं समस्तपापक्षयार्थं सीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थं च हनुमद्वडवानलस्तोत्रजपमहं करिष्ये । ॐ ह्रां ह्रीं ॐ नमो भगवते श्रीमहाहनुमते प्रकटपराक्रम सकलदिङ्मण्डलयशोवितानधवलीकृतजगत्त्रितय वज्रदेह रुद्रावतार लङ्कापुरीदहन उमाअमलमन्त्र उदधिबन्धन दशशिरःकृतान्तक सीताश्वसन वायुपुत्र अञ्जनीगर्भसम्भूत श्रीरामलक्ष्मणानन्दकर कपिसैन्यप्राकार सुग्रीवसाह्य रणपर्वतोत्पाटन कुमारब्रह्मचारिन् गभीरनाद सर्वपापग्रहवारण सर्वज्वरोच्चाटन डाकिनीविध्वंसन ॐ ह्रां ह्रीं ॐ नमो भगवते महावीरवीराय सर्वदुःखनिवारणाय ग्रहमण्डलसर्वभूतमण्डलसर्वपिशाचमण्डलोच्चाटन भूतज्वरएकाहिकज्वरद्वाहिकज्वरत्र्याहिकज्वरचातुर्थिकज्वरसन्तापज्वरविषमज्वरतापज्वरमाहेश्वरवैष्णवज्वरान् छिन्धि छिन्धि यक्षब्रह्मराक्षसभूतप्रेतपिशाचान् उच्चाटय उच्चाटय ॐ ह्रां श्रीं ॐ नमो भगवते श्रीमहाहनुमते ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः आं हां हां हां हां औं सौं एहि एहि एहि ॐ हं ॐ हं ॐ हं ॐ हं ॐ नमो भगवते श्रीमहाहनुमते श्रवणचक्षुर्भूतानां शाकिनीडाकिनीनां विषमदुष्टानां सर्वविषं हर हर आकाशभुवनं भेदय भेदय छेदय छेदय मारय मारय शोषय शोषय मोहय मोहय ज्वालय ज्वालय प्रहारय प्रहारय सकलमायां

भेदय भेदय ॐ ह्लां ह्लीं ॐ नमो भगवते महाहनुमते सर्वग्रहोच्चाटन परबलं क्षोभय क्षोभय सकलबन्धनमोक्षणं कुरु कुरु शिरःशूलगुल्म-शूलसर्वशूलान्निर्मूलय निर्मूलय नागपाशानन्तवासुकितक्षक-कर्कोटककालियान् यक्षकुलजलगतबिलगतरात्रिचरदिवाचरसर्वान्नि-र्विषं कुरु कुरु स्वाहा। राजभयचोरभयपरमन्त्रपरयन्त्रपरतन्त्र-परविद्याश्छेदय छेदय स्वमन्त्रस्वयन्त्रस्वतन्त्रस्वविद्याः प्रकटय प्रकटय सर्वारिष्टान्नाशय नाशय सर्वशत्रून्नाशय नाशय असाध्यं साधय साधय हुँ फट् स्वाहा ॥

॥ इति श्रीविभीषणकृतं हनुमद्वडवानलस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१२३. पञ्चमुखहनुमत्कवचम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ अस्य श्रीपञ्चमुखहनुमत्कवचमन्त्रस्य । ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । पञ्चमुखविराट् हनुमान् देवता । ह्रीं बीजम् । श्रीं शक्तिः । क्रौं कीलकम् । क्रूं कवचम् । क्रैं अस्त्राय फट् । इति दिग्बन्धः ॥

श्रीगरुड उवाच—

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वाङ्गसुन्दरि ।
यत्कृतं देवदेवेन ध्यानं हनुमतः प्रियम् ॥ १ ॥

पञ्चवक्त्रं महाभीमं त्रिपञ्चनयनैर्युतम् ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ २ ॥

पूर्वं तु वानरं वक्त्रं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् ॥ ३ ॥

अस्यैव दक्षिणं वक्त्रं नारसिंहं महाद्भुतम् ।
अत्युग्रतेजोवपुषं भीषणं भयनाशनम् ॥ ४ ॥
पश्चिमं गारुडं वक्त्रं वक्रतुण्डं महाबलम् ।
सर्वनागप्रशमनं विषभूतादिकृन्तनम् । ५ ॥
उत्तरं सौकरं वक्त्रं कृष्णं दीप्तं नभोपमम् ।
पातालसिंहवेतालज्वररोगादिकृन्तनम् ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वं हयाननं घोरं दानवान्तकरं परम् ।
येन वक्त्रेण विप्रेन्द्र तारकाख्यं महासुरम् ॥ ७ ॥
जघान शरणं तत्स्यात्सर्वशत्रुहरं परम् ।
ध्यात्वा पञ्चमुखं रुद्रं हनूमन्तं दयानिधिम् ॥ ८ ॥
खड्गं त्रिशूलं खट्वाङ्गं पाशमङ्कुशपर्वतम् ।
मुष्टिं कौमोदकीं वृक्षं धारयन्तं कमण्डलुम् ॥ ९ ॥
भिन्दिपालं ज्ञानमुद्रां दशभिर्मुनिपुङ्गवम् ।
एतान्यायुधजालानि धारयन्तं भजाम्यहम् ॥ १० ॥
प्रेतासनोपविष्टं तं सर्वाभरणभूषितम् ।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवं हनूमद्विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥
पञ्चास्यमच्युतमनेकविचित्रवर्णवक्त्रं
शशाङ्कशिखरं कपिराजवर्यम् ।
पीताम्बरादिमुकुटैरुपशोभिताङ्गं
पिङ्गाक्षमाद्यमनिशं मनसा स्मरामि ॥ १२ ॥
मर्कटेशं महोत्साहं सर्वशत्रुहरं परम् ।
शत्रुं संहर मां रक्ष श्रीमन्नापदमुद्धर ॥ १३ ॥

ॐ हरिमर्कट मर्कट मन्त्रमिदं परिलिख्यति लिख्यति वामतले ।
यदि नश्यति नश्यति शत्रुकुलं यदि मुञ्चति मुञ्चति वामलता ॥१४॥

ॐ हरिमर्कटाय स्वाहा । ॐ नमो भगवते पञ्चवदनाय पूर्वकपिमुखाय सकलशत्रुसंहारकाय स्वाहा । ॐ नमो भगवते पञ्चवदनाय दक्षिणमुखाय करालवदनाय नरसिंहाय सकलभूतप्रमथनाय स्वाहा । ॐ नमो भगवते पञ्चवदनाय पश्चिममुखाय गरुडाननाय सकलविषहराय स्वाहा । ॐ नमो भगवते पञ्चवदनायोत्तरमुखायादिवराहाय सकलसंपत्कराय स्वाहा । ॐ नमो भगवते पञ्चवदनायोर्ध्वमुखाय हयग्रीवाय सकलजनवशंकराय स्वाहा । ॐ अस्य श्रीपञ्चमुखहनुमन्मन्त्रस्य । श्री रामचन्द्र ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । पञ्चमुखरहनुमान् देवता । हनुमानिति बीजम् । वायुपुत्र इति शक्तिः । अञ्जनीसुत इति कीलकम् । श्रीरामदूतहनुमत्प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

॥ इति ऋष्यादिकं विन्यसेत् ॥

ॐ अञ्जनीसुताय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ रुद्रमूर्त्तये तर्जनीभ्यां नमः । ॐ वायुपुत्राय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ अग्निगर्भाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ रामदूताय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ पञ्चमुखहनुमते करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ इति करन्यासः ॥

अञ्जनीसुताय हृदयाय नमः । ॐ रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा । ॐ वायुपुत्राय शिखायै वषट् । ॐ अग्निगर्भाय कवचाय हुम् । ॐ रामदूताय नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ पञ्चमुखहनुमते अस्त्राय फट् । पञ्चमुखहनुमते स्वाहा ॥ इति दिग्बन्धः ॥

॥ अथ ध्यानम् ॥

वन्दे वानरनारसिंहखगराट्क्रोडाश्ववक्त्रान्वितं
दिव्यालङ्करणं त्रिपञ्चनयनं देदीप्यमानं रुचा ।
हस्ताब्जैरसिखेटपुस्तकसुधाकुम्भाङ्कुशाद्रिं हलं
खट्वाङ्गं फणिभूरुहं दशभुजं सर्वारिवीरापहम् ॥

॥ इति अथ मन्त्रः ॥

ॐ श्रीरामदूतायाञ्जनेनाय वायुपुत्राय महाबलपराक्रमाय सीतादुःखनिवारणाय लङ्कादहनकारणाय महाबलप्रचण्डाय फाल्गुनसखाय कोलाहलसकलब्रह्माण्डविश्वरूपाय सप्तसमुद्रनिर्लङ्घनाय पिङ्गलनयनायामितविक्रमाय सूर्यबिम्बफलसेवनाय दुष्टनिवारणाय दृष्टिनिरालंकृताय सञ्जीविनीसञ्जीविताङ्गदलक्ष्मणमहाकपिसैन्यप्राणदाय दशकण्ठविध्वंसनाय रामेष्टाय महाफाल्गुनसखाय सीतासहितरामवरप्रदाय षट्प्रयोगागमपञ्चमुखवीरहनुमन्मन्त्रजपे विनियोगः । ॐ हरिमर्कटमर्कटाय वंवंवंवंवं वौषट् स्वाहा । ॐ हरिमर्कटमर्कटाय फंफंफंफंफं फट् स्वाहा । ॐ हरिमर्कटमर्कटाय खेंखेंखेंखेंखें मारणाय स्वाहा । ॐ हरिमर्कटमर्कटाय लुंलुंलुंलुंलुं आकर्षितसकलसम्पत्कराय स्वाहा । ॐ हरिमर्कटमर्कटाय धंधंधंधंधं शत्रुस्तम्भनाय स्वाहा । ॐ टंटंटंटंटं कूर्ममूर्तये पञ्चमुखवीरहनुमते परयन्त्रपरतन्त्रोच्चाटनाय स्वाहा । ॐ कंखंगंघंङं चंछंजंझंञं टंठंडंढंणं तंथंदंधंनं पंफंबंभंमं यंरंलंवं शंषंसंहं लंक्षं स्वाहा ।

॥ इति दिग्बन्धः ॥

ॐ पूर्वकपिमुखाय पञ्चमुखहनुमते टंटंटंटंटं सकलशत्रुसंहरणाय स्वाहा । ॐ दक्षिणमुखाय पञ्चमुखहनुमते करालवदनाय नरसिंहाय ॐ ह्रांह्रींह्रूंह्रैंह्रौंह्रः सकलभूतप्रेतदमनाय स्वाहा । ॐ पश्चिममुखाय गरुडाननाय पञ्चमुखहनुमते मंमंमंमंमं सकलविष-

हराय स्वाहा । ॐ उत्तरमुखायादिवराहाय लंलंलंलंलं नृसिंहाय नीलकण्ठमूर्तये पञ्चमुखहनुमते स्वाहा । ॐ ऊर्ध्वमुखाय हयग्रीवाय रुंरुंरुंरुंरुं रुद्रमूर्तये सकलप्रयोजननिर्वाहकाय स्वाहा । ॐ अञ्जनीसुताय वायुपुत्राय महाबलाय सीताशोकनिवारणाय श्रीरामचन्द्रकृपापादुकाय महावीर्यप्रमथनाय ब्रह्माण्डनाथाय कामदाय पञ्चमुखवीरहनुमते स्वाहा । भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिन्यन्तरिक्षग्रहपरयन्त्रपरतन्त्रोच्चाटनाय स्वाहा । सकलप्रयोजननिर्वाहकाय पञ्चमुखवीरहनुमते श्रीरामचन्द्रवरप्रसादाय जंजंजंजंजं स्वाहा ।

इदं कवचं पठित्वा तु महाकवचं पठेन्नरः ।
एकवारं जपेत्स्तोत्रं सर्वशत्रुनिवारणम् ॥ १५ ॥

द्विवारं तु पठेन्नित्यं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ।
त्रिवारं च पठेन्नित्यं सर्वसंपत्करं शुभम् ॥ १६ ॥

चतुर्वारं पठेन्नित्यं सर्वरोगनिवारणम् ।
पञ्चवारं पठेन्नित्यं सर्वलोकवशङ्करम् ॥ १७ ॥

षड्वारं च पठेन्नित्यं सर्वदेववशङ्करम् ।
सप्तवारं पठेन्नित्यं सर्वसौभाग्यदायकम् ॥ १८ ॥

अष्टवारं पठेन्नित्यमिष्टकामार्थसिद्धिदम् ।
नववारं पठेन्नित्यं राजभोगमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥

दशवारं पठेन्नित्यं त्रैलोक्यज्ञानदर्शनम् ।
रुद्रावृत्ति पठेन्नित्यं सर्वसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ २० ॥

निर्बलो रोगयुक्तश्च महाव्याध्यादिपीडितः ।
कवचस्मरणेनैव महाबलमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीसुदर्शनसंहितायां श्रीरामचन्द्रसीताप्रोक्तं
श्रीपञ्चमुखहनुमत्कवचं सम्पूर्णम् ॥

१२४. हनुमल्लाङ्गूलास्त्रस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

हनुमन्नञ्जनीसूनो महाबलपराक्रम ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १ ॥

मर्कटाधिप मार्तण्डमण्डलग्रासकारक ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ २ ॥

अक्षक्षपण पिङ्गाक्ष दितिजासुक्षयंकर ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममरातीन्निपातय ॥ ३ ॥

रुद्रावतारसंसारदुःखभारापहारक ।
लोलल्लांगूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ ४ ॥

श्रीरामचरणाम्भोजमधुपायितमानस ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ ५ ॥

बालिप्रमथनक्लान्तसुग्रीवोन्मोचनप्रभो ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ ६ ॥

सीताविरहवारीशभग्नसीतेशतारक ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ ७ ॥

रक्षोराजप्रतापाग्निदह्यमानजगद्वन ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ ८ ॥

ग्रस्ताशेषजगत्स्वास्थ्य राक्षसाम्भोधिमन्दर ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ ९ ॥

पुच्छगुच्छस्फुरद्वीर जगद्दग्धारिपत्तन ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १० ॥

जगन्मनोदुरुल्लङ्घ्यपारावारविलङ्घन ।
लोलल्लाङ्गूलपातन ममारातीन्निपातय ॥ ११ ॥

स्मृतमात्रसमस्तेष्टपूरक प्रणतप्रिय ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १२ ॥

रात्रिचरतमोरात्रिकृन्तनैकविकर्तन ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १३ ॥

जानक्या जानकीजानेः प्रेमपात्र परंतप ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १४ ॥

भीमादिकमहाभीमवीरावेशावतारक ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १५ ॥

वैदेहीविरहक्लान्तरामरोषैकविग्रह ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १६ ॥

वज्राङ्गनखदंष्ट्रेश वज्रिवज्रावगुण्ठन ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १७ ॥

अखर्वगर्वगन्धर्वपर्वतोद्भेदनस्वर ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १८ ॥

लक्ष्मणप्राणसंत्राण त्रातत्तीक्ष्णकरान्वय ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ १९ ॥

रामादिविप्रयोगार्त भरताद्यार्तिनाशन ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ २० ॥

द्रोणाचलसमुत्क्षेपसमुत्क्षिप्तारिवैभव ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ २१ ॥

सीताशीर्वादसम्पन्न समस्तावयवाक्षत ।
लोलल्लाङ्गूलपातेन ममारातीन्निपातय ॥ २२ ॥

इत्येवमश्वत्थतलोपविष्टः शत्रुञ्जयं नाम पठेत्स्वयं यः ।
स शीघ्रमेवास्तसमस्तशत्रुः प्रमोदते मारुतजप्रसादात् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीशत्रुंजयहनुमल्लाङ्गूलस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१२५. श्रीहनुमत्कवचम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीहनुमते नमः

ॐ अस्य श्रीहनुमत्कवचस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः श्रीहनुमान् देवता मारुतात्मजेति बीजम् अञ्जनीसूनुरिति शक्तिः आत्मनः सकलकार्यसिद्ध्यर्थे पाठे (जपे) विनियोगः। ॐ हनुमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॐ पवनात्मजाय तर्जनीभ्यां नमः ॐअक्षपद्माय मध्यमाभ्यां नमः ॐविष्णुभक्ताय अनामिकाभ्यां नमः ॐलङ्काविदाहकाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॐरामकिङ्कराय करतल-पृष्ठाभ्यां नमः। एवमेव हृदयादिन्यासः। अथ ध्यानम्—

ध्यायेद्बाल दिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापहं।
देवेन्द्रप्रमुखैः प्रशंसियशसं देदीप्यमानं रुचा।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं।
संरक्तारुणलोचनं कपिवरं पीताम्बरालंकृतम् ॥ १ ॥

वज्राङ्गं पिङ्गकेशाढ्यं स्वर्णकुण्डलमण्डितम्।
नियुद्धमुपसंक्राभ्य पारावारपराक्रमम् ॥ २ ॥

वामहस्ते (वामहस्तं) गदायुद्धं पाशहस्तं कमण्डलुम्।
ऊर्ध्वदक्षिणदोर्दण्डं हनुमन्तं विचिन्तयेत् ॥ ३ ॥

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कृताञ्जलिम्।
कुण्डलद्वयसंशोभि मुखाम्बुजहरिं भजेत् ॥ ४ ॥

हनुमान्पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनात्मजः।
पातु प्रतीच्यामक्षघ्नः पातु सागरपारगः ॥ ५ ॥

उदीच्यामूर्ध्वगः पातु केशरीप्रियनन्दनः।
अधस्ताद्विष्णुभक्तश्च पातु मध्ये च पावनिः ॥ ६ ॥

अवान्तरदिशः पातु सीताशोकविनाशनः।
लङ्काविदाहकः पातु सर्वापद्भ्यो निरन्तरम् ॥ ७ ॥
सुग्रीवसचिवः पातु मस्तकं वायुनन्दनः।
भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरन्तरम् ॥ ८ ॥
नेत्रे छायापहारीच पातु नः प्लवगेश्वरः।
कपोलौ कर्णमूले तु पातु श्रीरामकिङ्करः ॥ ९ ॥
नासाग्रमञ्जनीसूनुः पातु वक्त्रं कपीश्वरः।
पातु कण्ठं च दैत्यारिः स्कन्धौ पातु सुरार्चितः। १० ॥
भुजौ पातु महातेजाः करौ तु चरणायुधः।
नखान्नखायुधः पातु कुक्षौ पातु कपीश्वरः ॥ ११ ॥
वक्षो मुद्रापहारी च पार्श्वे पातु भुजायुधः।
लङ्काविभञ्जकः पातु पृष्ठदेशे निरन्तरम् ॥ १२ ॥
नाभिं च रामदूतश्च कटिं पात्वनिलात्मजः।
गुह्यं पातु कपीशस्तु गुल्फौ पातु महाबलः ॥ १३ ॥
अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करसन्निभः।
अङ्गन्यभितसत्त्वादयः पातु पादाङ्गुलीँस्सदा ॥ १४ ॥
सर्वाङ्गानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवान्ः
हनुमत्कवचं यस्तु पठेद्विद्वान् विचक्षणः।
स एव पुरुषश्रेष्ठः भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ १५ ॥
त्रिकालमेककालं वा पठेन्मासत्रयं पुनः।
सर्वारिष्टं क्षणे जित्वा स पुमान् श्रियमाप्नुयात् ॥ १६ ॥
अर्धरात्रौ जले स्थित्वा सप्तवारं पठेद्यदि।
क्षयापस्मारकुष्ठादितापज्वरनिवारणम् ॥ १७ ॥
अश्वत्थमूलेऽर्कवारे स्थित्वा पठति यः पुमान्
स एव जयमाप्नोति संग्रामेष्वभयं सदा ॥ १८ ॥

यः करे धारये लिख्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
लिखित्वा पूजयेद्वास्तु तस्य ग्राहभयं हरेत् ॥ १९ ॥

कारागृहे प्रयाणे च संग्रामे देशविप्लवे ।
यः पठेद्धनुमत्कवचं तस्य नास्ति भयं तथा ॥ २० ॥

यो वारां निधिमल्पमिवोलङ्घ्य प्रतापान्वितो
वैदेही घनशोकतापहरणो वैकुण्ठभक्तप्रियः ॥
अक्षाद्यूर्जितराक्षसेश्वरमहादर्पपिहारी रणे
सोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदाऽस्मान्समीरात्मजः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीहनुमत्कवचम् ॥

१२६. हनुमत्स्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीहनुमते नमः

नमो हनुमते तुभ्यं नमो मारुतसूनवे ।
नमः श्रीरामभक्ताय श्यामलाङ्गाय ते नमः ॥ १ ॥

नमो वानरवीराय सुग्रीवसख्यकारिणे ।
सीता शोक-विनाशाय राममुद्राधराय च ॥ २ ॥

रावणान्तःकुलच्छेदकारिणे ते नमो नमः ।
मेघनाद-मखध्वंस-कारिणे ते नमो नमः ॥ ३ ॥

वायुपुत्राय वीराय आकाशोदरगामिने ।
वनपाल-शिरच्छेद-लङ्काप्रासादभञ्जिने ॥ ४ ॥

ज्वलत्कनकवर्णाय दीर्घलाङ्गूलधारिणे ।
सौमित्रजयदात्रे च रामदूताय ते नमः ॥ ५ ॥

अक्षय्यवधकर्त्रे च ब्रह्मपाशनिवारणे।
लक्ष्मणाङ्घ्रि-महाशक्ति-घातक्षत-विनाशिने ॥ ६ ॥

रक्षोघ्नाय रिपुघ्नाय भूतघ्नाय च ते नमः।
ऋक्ष-वानर-वीरैकप्राणदाय नमो नमः ॥ ७ ॥

परसैन्यबलघ्नाय शस्त्रास्त्रघ्नाय ते नमः।
विषघ्नाय द्विषघ्नाय ज्वरघ्नाय च ते नमः ॥ ८ ॥

महाभयरिपुघ्नाय भक्तत्राणैककारिणे।
परप्रेरित-मन्त्राणां यन्त्राणां स्तम्भकारिणे ॥ ९ ॥

पयःपाषाण-तरणकरणाय नमो नमः।
बालार्क-मण्डलत्रास-कारिणे भवतारणे ॥ १० ॥
नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च।
रिपुमायाविनाशाय रामाज्ञालोकरक्षिणे ॥ ११ ॥

प्रतिग्रामस्थितायाऽथ रक्षोभूतवधार्थिने ॥ १२ ॥

करान्त-शैलशस्त्राय द्रुमशस्त्राय ते नमः।
बालैकब्रह्मचर्याय रुद्रमूर्तिधराय च ॥ १३ ॥
दक्षिणाशाभास्कराय शतचन्द्रोदयात्मने।
कृत-क्षत-व्यथाघ्नाय सर्वक्लेशहराय च ॥ १४ ॥
स्वाम्याज्ञा-पार्थ-संग्रामसंख्ये सञ्जयकारिणे।
भक्तानां दिव्यवादेषु संग्रामे जयदायिने ॥ १५ ॥

किं कृत्वा बुबुकोच्चार-घोरशब्दकराय च।
रावोग्र-व्याधि-संस्तम्भ-कारिणे वनधारिणे ॥ १६ ॥

सदावनफलाहार-निरतये विशेषतः।
महार्णव-शिलाबन्धे सेतुबन्धाय ते नमः ॥ १७ ॥

वादे विवादे संग्रामे भये घोरे च संस्तवेत्।
सिंह-तस्कर-व्याघ्रेषु पठंस्तत्र भयं नहि ॥ १८ ॥

दिग्ग्रभूतमये व्याघ्रे विषे स्थावर-जङ्गमे ।
राजशास्त्रभये चोग्रे तथा ग्रहभयेषु च ॥ १९ ॥

जले-सर्पे महावृष्टौ दुर्भिक्षे प्राणसमत्ववे ।
पठन् स्तोत्रं प्रमुच्येत भयेभ्यः सर्वतो नरः ॥ २० ॥

तस्य क्वापि भयं नास्ति हनुमत्-स्तव-पाठनात् ।
सर्वदा वै त्रिकालं च पठनीयस्तवो ह्यसौ ॥ २१ ॥

सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।
विभीषणकृतं स्तोत्रं ताक्ष्येण समुदीरितम् ॥ २३ ॥

ये पठिष्यन्ति भक्त्या च सिद्धयस्तत्करे स्थिताः ॥२६॥

॥ इति हनुमद्रहस्ये सुदर्शनसंहितोक्तं विभीषणप्रोक्तं
हनुमत्स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१२७. संकष्टमोचनस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीहनुमते नमः

सिन्दूर-पूर-रुचिरो बलवीर्यसिन्धु-
बुद्धिप्रभावनिधिरद्भुत-वैभवश्रीः ।
दीनार्तिदाव-दहनो वरदो वरेण्यः
सङ्कष्टमोचनविभुस्तनुतां शुभं नः ॥ १ ॥

सोत्साह-लङ्घित-महार्णव-पौरुषश्री-
लङ्कापुरी- प्रदहन - प्रथितप्रभावः ।
घोराहव - प्रमथितारि - चमूप्रवीरः
प्राभञ्जनिर्जयति मर्कटसार्वभौमः ॥ २ ॥

द्रौणाचलानयन - वर्णित-भव्यभूतिः
श्रीराम-लक्ष्मण- सहायक-चक्रवर्ती ।
काशीस्थ दक्षिण-विराजति-सौधमल्लः
श्रीमारुतिर्विजयते भगवान् महेशः ॥ ३ ॥

नूनं स्मृतोऽपि दयते भजतां कपीन्द्रः
सम्पूजितो दिशति वाञ्छित-सिद्धिवृद्धिम् ।
सम्मोदकप्रिय उपैति परं प्रहर्षं
रामायण-श्रवणतः पठतां शरण्यः ॥ ४ ॥

श्रीभारत - प्रवर-युद्धरथोद्धत - श्री
पार्थैक- केतन-कराल-विशालमूर्तिः ।
उच्चैर्घनाघन-घटा-विकटाऽट्टहासः
श्रीकृष्णापक्षभरणः शरणं ममाऽस्तु ॥ ५ ॥

जङ्घालजङ्घ उपमातिविदूरदेगो
मुष्ट-प्रहार-परिमूच्छित-राक्षसेन्द्रः ।
श्रीरामकीतितं - पराक्रमणोद्भवश्रीः
प्राकम्पनिर्विभुरुञ्चतु भूतये नः ॥ ६ ॥

सीतार्ति-दारणपटुः प्रबलः प्रतापी
श्रीराघवेन्द्र - परिरम्भवर-प्रसादः ।
वर्णीश्वरः सविधि-शिक्षित-कालनेमिः
पञ्चाननोऽपनयतां वियदोऽघदेशम् ॥ ७ ॥

उद्यद्-भानुसहस्र-सन्निभतसः प्रीताम्बरालङ्कृतः
प्रोज्ज्वालानल-दीप्यमान-नयनो निष्पिष्ट-रक्षोगणः ।
संवर्तोद्यत-वारिदोद्धत-रवः प्रोच्चैर्गदाविभ्रमः
श्रीमान् मारुतनन्दनः प्रतिदिनं ध्येयो विपद्-भञ्जनः ॥ ८ ॥

रक्षःपिशाचभय - नाशनमामयाधि-
प्रोच्चैर्ज्वरापहरणं दमनं रिपूणाम् ।
सम्पत्ति - पुत्रकरणं विजयप्रदानं
सङ्कष्टमोचनविभोः स्तवनं नराणाम् ॥ ९ ॥

दारिद्र्य-दुःख-दहनं विजयं विवादे
कल्याण - साधनमनङ्गलवारणं च ।
दाम्पत्य - दीर्घसुख- सर्वमनोरथाप्तिं
श्रीमारुतेः स्तवशतावृतिरातनोति ॥ १० ॥

स्तोत्रं य एतदनुवासरमस्तकामः
श्रीमारुतिं समनुचिन्त्य पठेत् सुधीरः ।
तस्मै प्रसादसुमुखो वरवानरेन्द्रः
साक्षात्कृतो भवति शाश्वतिकः सहायः ॥ ११ ॥

सङ्कष्टमोचनस्तोत्रं शङ्कराचार्यभिक्षुणा ।
महेश्वरेण रचितं मारुतेश्चरणेऽर्पितम् ॥ १२ ॥

॥ इति काशीपीठाधीश्वर-जगद्गुरु-शङ्कराचार्य-स्वामि-
श्रीमहेश्वरानन्दसरस्वती-विरचितं सङ्कष्टमोचनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥



नदी-तीर्थस्तोत्राणि

१२८. गङ्गालहरी

श्रीगणेशाय नमः श्रीगङ्गायै नमः

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्
महेश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु ॥ १ ॥

दरिद्राणां दैन्यं दूरितमथ दुर्वासनहृदां
द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदपि गतो दृष्टिसरणिम्।
अपि द्रागाविद्याद्रुमदलनदीक्षागुरुरिह
प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः ॥ २ ॥

उदञ्चन्मार्तण्डस्फुटकपटहेरम्बजननी
कटाक्षव्याक्षेपक्षणजनितसंक्षोभनिवहाः।
भवन्तु त्वङ्गन्तो हरशिरसि गङ्गातनुभुव-
स्तरङ्गाः प्रोत्तुङ्गा दुरितभयभङ्गाय भवताम् ॥ ३ ॥

तवालम्बादम्ब स्फुरदलघुगर्वेण सहसा
मया सर्वेऽवज्ञासरणिमथ नीताः सुरगणाः।
इदानीमौदास्यं भजसि यदि भागीरथि तदा
निराधारः केषामिह कथय हा रोदिमि पुरः ॥ ४ ॥

स्मृतिं याता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या
हरत्यन्तस्तन्द्रां तिमिरमिव चन्द्रांशुसरणिः।
इयं सा ते मूर्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला
ममान्तःसन्तापं त्रिविधमपि पापं च हरताम् ॥ ५ ॥

अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम् ।
सुधातः स्वादीयः सलिलभरमातृप्ति पिबतां
जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम् ॥ ६ ॥

प्रभाते स्नान्तीनां नृपतिरमणीनां कुचतटी-
गतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः ।
मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्रैः परिवृता
विशन्ति स्वच्छन्दं विमलवपुषो नन्दनवनम् ॥ ७ ॥

स्मृतं सद्यः स्वान्तं विरचयति शान्तं सकृदपि
प्रगीतं यत्पापं झटिति भवतापं च हरति ।
इदं तद्गङ्गेतिश्रवणरमणीयं खलु पदं
मम प्राणप्रान्तर्वदनकमलान्तर्विलसतु ॥ ८ ॥

यदन्तः खेलन्तो बहुलतरसन्तोषभरिता
न काका नाकाधीश्वरनगरसाकाङ्क्षमनसः ।
निवासाल्लोकानां जनिमरणशोकापहरणं
तदेतत्ते तीरं श्रमशमनधीरं भवतु नः ॥ ९ ॥

न यत्साक्षाद्वेदैरपि गलितभेदैरवसितं
न यस्मिन् जीवानां प्रसरति मनोवागवसरः ।
निराकारं नित्यं निजमहिमनिर्वासिततमो
विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनि तत्त्वं न विषयः ॥ १० ॥

महादानैर्ध्यानैर्बहुविधवितानैरपि च य-
न्न लभ्यं घोराभिः सुविमलतपोराशिभिरपि ।
अचिन्त्यं तद्विष्णोः पदमखिलसाधारणतया
ददाना केनासि त्वमिह तुलनीया कथय नः ॥ ११ ॥

नृणामीक्षामात्रादपि परिहरन्त्या भवभयं
शिवायास्ते मूर्तेः क इह महिमानं निगदतु ।
अमर्षम्लानायाः परममनुराधं गिरिभुवो
विहाय श्रीकण्ठः शिरसि नियतं धारयति याम् ॥ १२ ॥

विनिन्द्यान्युन्मत्तैरपि च परिहार्याणि पतितै-
रवाच्यानि व्रात्यैः सपुलकमपास्यानि पिशुनैः ।
हरन्ती लोकानामनवरतमेनांसि कियतां
कदाप्यश्रान्ता त्वं जगति पुनरेका विजयसे ॥ १३ ॥

स्खलन्ती स्वर्लोकादवनितलशोकापहृतये
जटाजूटग्रन्थौ यदसि विनिबद्धा पुरभिदा ।
अये निर्लोभानामपि मनसि लोभं जनयतां
गुणानामेवायं तव जननि दोषः परिणतः ॥ १४ ॥

जडानन्धान्पङ्गून्प्रकृतिबधिरानुक्तिविकलान्
ग्रहग्रस्तानस्ताखिलदुरितनिस्तारसरणीन् ।
निलिम्पैर्निर्मुक्तानपि च निरयान्तर्निपततो
नरानम्ब त्रातुं त्वमिह परमं भेषजमसि ॥ १५ ॥

स्वभावस्वच्छानां सहजशिशिराणामयमपा-
मपारस्ते मातर्जयति महिमा कोऽपि जगति ।
मुदा यं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः ॥ १६ ॥

कृतक्षुद्राघौघा झटिति सन्तप्तमनसः
समुद्धर्तुं सन्ति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः ।
अपि प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरिता-
न्नरान्नूरीकर्तुं त्वमिव जननि त्वं विजयसे ॥ १७ ॥

निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां
प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः ।
समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां
श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः ॥ १८ ॥

पुरो धावं धावं द्रविणमदिराघूर्णितदृशां
महीपानां नानातरुणतरखेदस्य नियतम् ।
ममैवायं मन्तुः स्वहितशतहन्तुर्जडधियो
वियोगस्ते मातर्यदिह करुणातः क्षणमपि ॥ १९ ॥

मरुल्लीलालोलल्लहरिलुलिताम्भोजपटली -
स्खलत्पांसुव्रातच्छुरणविसरत्कौङ्कुमरुचि ।
सुरस्त्रीवक्षोजक्षरदगुरुजम्बालजटिलं
जलं ते जम्बालं मम जननजालं जरयतु ॥ २० ॥

समुत्पत्तिः पद्मारमणपदपद्मामलनखा-
न्निवासः कन्दर्पप्रतिभटजटाजूटभवने ।
अथायं व्यासङ्गो हतपतितनिस्तारणविधौ
न कस्मादुत्कर्षस्तव जननि जागर्ति जगति ॥ २१ ॥

नगेभ्यो यान्तीनां कथय तटिनीनां कतमया
पुराणां संहर्तुः सुरधुनि कपर्दोऽधिरुरुहे ।
कया वा श्रीभर्तुः पदकमलमक्षालि सलिलै-
स्तुलालेशो यस्यां तव जननि दीयेत कविभिः ॥ २२ ॥

विधत्तां निःशङ्कं निरवधि समाधिं विधिरहो
सुखं शेषे शेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः ।
कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः
सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति भवती ॥ २३ ॥

अनाथः स्नेहार्द्रां विगलितगतिः पुण्यगतिदां
पतन् विश्वोद्धर्त्रीं गदविगलितः सिद्धभिषजम् ।
सुधासिन्धुं तृष्णाकुलितहृदयो मातरमयं
शिशुः सम्प्राप्तस्त्वामहमिह विदध्याः समुचितम् ॥२४॥

विलीनो वै वैवस्वतनगरकोलाहलभरो
गता दूता दूरं क्वचिदपि परेतान्मृगयितुम् ।
विमानानां व्रातो विदलयति वीथीर्दिविषदां
कथा ते कल्याणी यदवधि महीमण्डलमगात् ॥ २५ ॥

स्फुरत्कामक्रोधप्रबलतरसञ्जातजटिल-
ज्वरज्वालाजालज्वलितवपुषां नः प्रतिदिनम् ।
हरन्ता सन्तापं कमपि मरुदुल्लासलहरिः-
च्छटाचञ्चत्पाथः कणसरणयो दिव्यसरितः ॥ २६ ॥

इदं हि ब्रह्माण्डं सकलभुवनाभोगभवनं
तरङ्गैर्यस्यान्तर्लुठति परितस्तिन्दुकमिव ।
स एष श्रीकण्ठप्रविततजटाजूटजटिलो
जलानां सङ्घातस्तव जननि तापं हरतु नः ॥ २७ ॥

त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ
करं कर्णे कुर्वन्त्यपि किल कपालिप्रभृतयः ।
इमं तं मामम्ब त्वमियमनुकम्पार्द्रहृदये
पुनाना सर्वेषामघमथनदर्पं दलयसि ॥ २८ ॥

श्वपाकानां व्रातैरमितविचिकित्साविचलितै-
र्विमुक्तानामेकं किल सदनमेनः परिषदाम् ।
अहो मामुद्धर्तुं जननि घटयन्त्या परिकरं
तव श्लाघां कर्तुं कथमिव समर्थो नरपशुः ॥ २९ ॥

न कोऽप्येतावन्तं खलु समयमारभ्य मिलितो
यदुद्धारादाराद्भवति जगतो विस्मयभरः ।
इतीमामीहां ते मनसि चिरकालं स्थितवती-
मयं सम्प्राप्तोऽहं सफलयितुमम्ब प्रणय नः ॥ ३० ॥

श्ववृत्तिव्यासङ्गो नियतमथ मिथ्याप्रलपनं
कुतर्केष्वभ्यासः सततपरपैशुन्यमननम् ।
अपि श्रावं श्रावं मम तु पुनरेवंविधगुणगणा-
नृते त्वत्को नाम क्षणमपि निरीक्षेत् वदनम् ॥ ३१ ॥

विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं
न याभ्यामालीढा परमरमणीया तव तनुः ।
अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयो-
र्ययोर्नान्तर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः ॥ ३२ ॥

विमानैः स्वच्छन्दं सुरपुरमयन्ते सुकृतिनः
पतन्ति द्राक्पापा जननि नरकान्तः परवशाः ।
विभागोऽयं तस्मिन्नशुभमयमूर्तौ जनपदे
न यत्र त्वं लीलादलितमनुजाशेषकलुषा ॥ ३३ ॥

अपि घ्नन्तो विप्रानविरतमुशन्तो गुरुसतीः
पिबन्तो मैरेयं पुनरपिहरन्तश्च कनकम् ।
विहाय त्वय्यन्ते तनुमतनुदानाध्वरजुषा-
मुपर्यम्ब क्रीडन्त्यखिलसुरसम्भावितपदाः ॥ ३४ ॥

अलभ्यं सौरभ्यं हरति नियतं यः सुमनसां
क्षणादेव प्राणानपि विरहशस्त्रक्षतभृताम् ।
त्वदीयानां लीलाचलितलहरीणां व्यतिकरा-
त्पुनीते सोऽपि द्रागहह पवमानस्त्रिभुवनम् ॥ ३५ ॥

कियन्तः सन्त्येके नियतमिह लोकार्थघटकाः
परे पूतात्मानः कति च परलोकप्रणयिनः ।
सुखं शेते मातस्तव खलु कृपातः पुनरयं
जगन्नाथः शश्वत्त्वयि निहितलोकद्वयभरः ॥ ३६ ॥

भवत्या हि व्रात्याधमपतितपाखण्डपरिष-
त्परित्राणस्नेहः श्लथयितुमशक्यः खलु यथा ।
ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वम्ब जगति
स्वभावोऽयं सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः ॥ ३७ ॥

प्रदोषान्तर्नृत्यत्पुरमथनलीलोद्धृतजटा-
तटाभोगप्रेङ्खल्लहरिभुजसन्तानविधुतिः ।
बिलक्रोडक्रीडज्जलडमरुडङ्कारसुभग-
स्तिरोधत्तां तापं त्रिदशतटिनीताण्डवविधिः ॥ ३८ ॥

सदैव त्वय्येवार्पितकुशलचिन्ताभरमिमं
यदि त्वं मामम्ब त्यजसि समयेऽस्मिन्सुविषमे ।
तदा विश्वासोऽयं त्रिभुवनतलादस्तमयते
निराधारा चेयं भवति खलु निर्व्याजकरुणा ॥ ३९ ॥

कपर्दादुल्लस्य प्रणयमिलदर्धाङ्गयुवतेः
पुरारे प्रेङ्खन्त्यो मृदुलतरसीमन्तसरणौ ।
भवान्या सापत्न्यस्फुरितनयनं कोमलरुचा
करेणाक्षिप्तास्ते जननि विजयन्तां लहरयः ॥ ४० ॥

प्रपद्यन्ते लोकाः कति न भवतीमत्रभवती-
मुपाधिस्तत्रायं स्फुरति यदभीष्टं वितरसि ।
शपे तुभ्यं मातर्मम तु पुनरात्मासुरधुनि
स्वभावादेव त्वय्यमितमनुरागं विधृतवान् ॥ ४१ ॥

ललाटे या लोकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
तमो हन्तुं धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम् ।
विलुम्पन्ती सद्यो विधिलिखितदुर्वर्णसरणिं
त्वदीया सन्मृत्स्ना मम हरतु कृत्स्नामपि शुचम् ॥ ४२ ॥

नरान्मूढांस्तत्तज्जनपदसमासक्तमनसो
हसन्तः सोल्लासं विकचकुसुमव्रातमिषतः ।
पुनानाः सौरभ्यैः सततमलिनो नित्यमलिनान्
सखायो नः सन्तु त्रिदशतटिनीतीरतरवः ॥ ४३ ॥

यजन्त्येके देवान्कठिनतरसेवांस्तदपरे
वितानव्यासक्ता यमनियमरक्ताः कतिपये ।
अहं तु त्वन्नामस्मरणभृतकामस्त्रिपथगे
जगज्जालं जाने जननि तृणजालेन सदृशम् ॥ ४४ ॥

अविश्रान्तं जन्मावधि सुकृतजन्मार्जनकृतां
सतां श्रेयः कर्तुं कति न कृतिनः सन्ति विबुधाः ।
निरस्तालम्बानामकृतसुकृतानां तु भवतीं
विनामुष्मिँल्लोके न परमवलोके हितकरम् ॥ ४५ ॥

पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै-
र्विमूढैः संरन्तु क्वचिदपि न विश्रान्तिमगमम् ।
इदानीमुत्सङ्गे मृदुपवनसञ्चारशिशिरे
चिरादुन्निद्रं मां सदयहृदये शायय चिरम् ॥ ४६ ॥

बधान द्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं
किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनः पन्नगगणैः ।
न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणतया
जगन्नाथस्यायं सुरधुनि समुद्धारसमयः ॥ ४७ ॥

शरच्चन्द्रश्वेतां शशिशकलश्वेतालमुकुटां
करैः कुम्भाम्भोजे वरभयनिरासौ च दधतीम् ।
सुधाधाराकाराभरणवसनां शुभ्रमकर-
स्थितां त्वां ये ध्यायन्त्युदयति न तेषां परिभवः ॥ ४८ ॥

दरस्मितसमुल्लसद्वदनकान्तिपूरामृतै-
र्भवज्ज्वलनभर्जिताननिशमूर्जयन्ती नरान् ।
चिदेकमयचन्द्रिकाचयचमत्कृतिं तन्वती
तनोतु मम शं तनोः सपदि शन्तनोरङ्गना ॥ ४९ ॥

मन्त्रैर्मीलितमौषधैर्विगलितं त्रस्तं सुराणां गणैः
स्रस्तं सान्द्रसुधारसैर्विदलितं गारुत्मतैर्ग्रावभिः ।
वीचिक्षालितकालियाहितपदे स्वर्लोककल्लोलिनी
त्वं तापं तिरयाधुना मम भवज्वालावलीढात्मनः ॥ ५० ॥

द्यूते नागेन्द्रकृत्तिप्रमथगणमणिश्रेणिनन्दीन्दुमुख्यं
सर्वस्वं हारयित्वा स्वमथ पुरभिदि द्राक्पणीकर्तुकामे ।
साकूतं हैमवत्या मृदुलहसितया वीक्षितायास्तवाम्ब
व्यालोलोल्लासिवल्गल्लहरिनटघटीताण्डवं न पुनातु ॥५१॥

विभूषितानङ्गरिपूत्तमाङ्गा सद्यः कृतानेकजनार्तिभङ्गा ।
मनोहरोत्तुङ्गचलतरङ्गा गङ्गा ममाङ्गान्यमलीकरोतु ॥ ५२ ॥

इमां पीयूषलहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम् ।
यः पठेत्तस्य सर्वत्र जायन्ते सुखसम्पदः ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीपण्डितराजजगन्नाथविरचिता गङ्गालहरी सम्पूर्णम् ॥

१२९. गङ्गाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीगङ्गायै नमः

नमस्तेऽस्तु गङ्गे त्वदङ्गप्रसङ्गाद्भुजङ्गास्तुरङ्गा कुरङ्गा प्लवङ्गाः।
अनङ्गारिरङ्गाः ससङ्गाः शिवाङ्गा भुजङ्गाधिपाङ्गीकृताङ्गा भवन्ति ॥ १ ॥

नमो जह्नुकन्ये न मन्ये त्वदन्यैर्निसर्गेन्दुचिह्नादिभिर्लोकभर्तुः।
अतोऽहं नतोऽहं सतो गौरतोये वसिष्ठादिभिर्गीयमानाभिधेये ॥ २ ॥

त्वदामज्जनात्सज्जनो दुर्जनो वा विमानैः समानः समानैर्हि मानैः।
समायाति तस्मिन्पुरारातिलोके पुरद्वारसंरुद्धदिक्पाललोके ॥ ३ ॥

स्वरावासदम्भोलिदम्भोऽपि रम्भापरीरम्भसम्भावनाधीरचेताः।
समाकांक्षते त्वत्तटे वृक्षवाटीकुटीरे वसन्नेतुमायुर्दिनानि ॥ ४ ॥

त्रिलोकस्य भर्तुर्जटाजूटबन्धात्स्वसीमान्तभागे मनाक्प्रस्खलन्तः।
भवान्या रुषा प्रौढसापत्नभावात्करेणाहतास्त्वत्तरङ्गा जयन्ति ॥ ५ ॥

जलोन्मज्जदैरावतोद्दानकुम्भस्फुरत्प्रस्खलत्सान्द्रसिन्दूररागे ।
क्वचित्पद्मिनीरेणुभङ्गे प्रसङ्गे मनः खेलतां जह्नुकन्यातरङ्गे। ६ ॥

भवत्तीरवानीरवातोत्थधूलीलवस्पर्शतस्तत्क्षणं क्षीणपापः।
जनोऽयं जगत्पावने त्वत्प्रसादात्पदे पौरुहूतेऽपि धत्तेऽवहेलाम् ॥ ७ ॥

त्रिसन्ध्यानमल्लेखकोटीरनानाविधानेकरत्नांशुबिम्बप्रभाभिः ।
स्फुरत्पादपीठे हठेनाष्टमूर्तेर्जटाजूटवासे नताः स्मः पदं ते ॥ ८ ॥

इदं यः पठेदष्टकं जह्नुपुत्र्यास्त्रिकालं कृतं कालिदासेन रम्यम्।
समायास्यतीन्द्रादिभिर्गीयमानं पदं कैशवं शैशवं नो लभेत्सः ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीकालिदासकृतं गङ्गाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१३०. गङ्गास्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीगङ्गायै नमः

देवि सुरेश्वरि पावनि गङ्गे, त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिनिवासिनि विमले, मम मतिरास्तां तव पदकमले ॥ १ ॥

भागीरथि सुखदायिनि मातः, तव जलमहिमा निगमे ख्यातः ।
नाहं जाने तव महिमानं, त्राहि कृपामयि मामज्ञानम् ॥ २ ॥

हरिपदपद्मविहारिणि गङ्गे, हिम-विधु-मुक्ताधवलतरङ्गे ।
दूरीकुरु मम दुष्कृतिभारं, कुरु कृपया भवसागरपारम् । ३ ॥

तव जलममलं येन निपीतं, परमपदं खलु तेन गृहीतम् ।
मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः, किल तं द्रष्टुं यमो न शक्तः ॥ ४ ॥

पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे, खण्डितगिरि-वरमण्डितभङ्गे ।
भीष्मजननि खलु मुनिवरकन्ये, पतितोद्धारिणि त्रिभुवनधन्ये ॥ ५ ॥

कल्पलतामिव फलदां लोके, प्रणमति यस्त्वां न पतति स शोके ।
पारावार-विहारिणि गङ्गे, बुधवनिता-कृततरलापाङ्गे ॥ ६ ॥

तव चेन्मातः स्रोतःस्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः ।
यमभयवारिणि जाह्नवि गङ्गे, कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे ॥ ७ ॥

परिलसदङ्गे पुण्यतरङ्गे, जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे ।
इन्द्रमुकुटमणिराजितचरणे, सुखदे शुभदे सेवकशरणे ॥ ८ ॥

रोगं शोकं तापं पापं, हर मे भगवति कुमतिकलापम् ।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे, त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे ॥ ९ ॥

अलकानन्दे परमानन्दे, कुरु मयि करुणां कातरवन्द्ये ।
तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः ॥ १० ॥

वरमिह नीरे कमठो मीनः, किं वा तीरे सरटः क्षीणः ।
अथवा श्वपचो मलिनो दीनः, तव नहि दूरे नृपतिकुलीनः ॥ ११ ॥

भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवद्रवमयि मुनिवरकन्ये ।
गङ्गास्तवमिमममलं नित्यं पठति नरो यः स जयति सत्यम् ॥१२॥

येषां हृदये गङ्गाभक्तिः तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः ।
मधुरमनोरमपज्झटिकाभिः परमानन्दकलितललिताभिः ॥ १३ ॥

गङ्गास्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विगलितभारम् ।
शङ्करसेवकशङ्कररचितं पठतु च नियतं पुण्यमपारम् ॥ १४ ॥

१३१. गङ्गाशतकम्

श्रीगणेशाय नमः । श्रीशौ वन्दे । नमो गङ्गायै ।

ओङ्काराऽऽकारा या वारा 'वाराणसी' तले वहति ।
जयति जगन्निस्तारा त्रिभुवनसारा गङ्गामृतमयी धारा ।
ज्येष्ठे मासि सिते दले बुधदिने हस्तर्क्षसंशोभिते
या स्नानेन हरत्यघं दशविधं चेतोवचोदेहजम् ।
स्वर्वापीप्रियहेतवे दशहरानाम्न्यां हि तिथ्यां मुदा ।
स्तोत्रं तच्चरितादभुतं शिवपुरे प्रारभ्य निर्मीयते ॥ १ ॥

त्वत्तीरं समुपेत्य वीक्ष्य सलिलं लग्नं स्वकीये पदे
भूत्वा विष्णुरहं विगाह्य शिरसा त्वान्धारयञ्छङ्करः ।
स्नात्वा गन्तुमनाः कमण्डलुगतां धृत्वा विरिञ्चोऽभव—
मात्मानं त्रिगुणात्मकं त्रिपथगे ! कुर्वन् त्रिदेवोऽधुना ॥ २ ॥

त्वद्धट्टसोपानपथाधिरूढो गच्छत्यसौ देवविहारलोकम् ।
व्रजत्यसौ नाकसदां निवासं मातर्विचित्रोऽस्ति भवत्प्रभावः ॥ ३ ॥

रे रे मत्पापपुञ्जाः ! शृणुत मम वचः सत्यपूतं मनोज्ञं
मान्यं युष्माभिरेतद् "भवति हि कटुकं भेषजं यद्धितं स्यात्" ।
गङ्गेयं भूतिदात्री सकलभवभयध्वंसिनी शम्भुरूपा
कर्णाभ्यां संश्रुता चेद् व्रजत भवपदं दिव्यरूपा भवेऽस्मिन् ॥ ४ ॥

मातस्त्वदीये पुलिने पवित्रे विहाय देहं कुनरः सुरोऽभूत् ।
कथं पुनर्वै स गदी गदी स्याच्छूली त्रिशूली भवतीति चित्रम् ॥ ५ ॥
भूतानि पञ्चैव विहातुकामः समागतोऽहं भवतीसमीपम् ।
असंख्यभूताधिपतिस्त्वया च कृतः स सद्यो वद किं विधेयम् ॥ ६ ॥

त्वत्तीरसोपानततिर्विचित्रा यतोऽवतीर्णा भुवि देहभाजः ।
विमानमारुह्य समेत्य शक्रं सुराङ्गनाभिर्विलसन्ति सन्तः (द्यः) ॥७ ॥
यदि त्वदीये पुलिने म्रियेयं देयं हरत्वं हरिता न गङ्गे ।
यथा स्वयं त्वां शिरसा वहेयं न वा स्पृशेयं चरणेन मातः ॥ ८ ॥
भवं परित्यज्य भवत्समीपं समागमद् बन्धनमोचनाय ।
नित्यं भवं तं भवती विधाय जडा-(ला) त्मकत्वं प्रकटीकरोति ॥९॥

अये गङ्गे देवि ! प्रकटमहिमा त्वं सगरिमा
तवाम्भोलेशेन व्रजति मनुजः शक्रपदवीम् ।
सुरास्तत्पादाब्जं निजमुकुटमाणिक्यनिचयैः
स्पृशन्त्येवेदं नु ध्वनति विमले वारिमुरजम् ॥ १० ॥

मातर्जह्नुसुते भगीरथनुते गौरीशचूडामणे
वेधःपात्रकृतालये हरिमयि त्रैलोक्यरक्षोद्यते ।
गङ्गे ! स्वर्णदि देवि पातककुलस्योन्मूलिनीन्दीवरि
कुम्भीभीतवरोहसद्वरकरे मां पाहि मन्दाकिनि ॥ ११ ॥

हरिर्हरो वा यदि मुक्तिदः स्यात्स मेलयेत्स्वात्मनि भक्तमेकम् ।
त्वया त्रिधात्मा विरचय्य सद्यः कथं परब्रह्मपदेऽभिषिक्तः ॥ १२ ॥
मातस्तावकपादपद्मयुगलं ध्यायन्ति ये भक्तितस्-
ते वन्द्याः प्रभवन्ति ये च सलिलं स्पर्शोद्यता देवताः ।

स्नात्वा प्राप्य सुरर्षितां सुरगणैः पूज्या भवन्ति क्षणात्
त्वत्तीरे स्वतनुं विहाय सहसा देवेशतां यान्ति ते ॥ १३ ॥

ममाधारभूता त्वमेकासि गङ्गे भवन्तीं परित्यज्य कं वा श्रयिष्ये।
न धात्री भवेद्भक्ष्यदात्री कदाचिद् गतिः का भवित्री धरित्रीतले मे ॥१४॥

शृणुत सकलपापान्यत्र वाक्यं मदीयं
कुरुत कलकलं किं किन्नु वा शोचथाद्य।
खलु निखिलखलानां ध्वंसिनीं जन्हुकन्या—
महमिह सह यामि स्नातुकामो भवद्भिः ॥ १५ ॥

भवत्या महापापिनस्तारितास्स्युर्नचैषोऽद्य गर्वो भ्रमेणापि कार्यः।
अहं! पापवापी वसन् त्वत्तटेऽत्र सदा भूतसन्तापपुञ्जं पिबामि ॥१६॥
त्वं वैष्णवं शैवपदं ददासीति ख्यातिमाकर्ण्य समागतोऽहम्।
ताभ्यामशक्यां च तयोर्ददस्व सायुज्यमुक्तिं परमां विचित्राम् ॥ १७ ॥

वशिष्ठवाक्यात्सुरकार्य्यकर्त्री त्वमेव भित्वा निजधारया तत्।
महासरोमानसनाम गङ्गे विभासि मातः! सरयूस्वरूपा ॥ १८ ॥
नगेन्द्रोत्तमाङ्गे विलोलत्तरङ्गे! ह्यनङ्गारिसङ्गे महापापभङ्गे।
कदाचारभङ्गे मृतं वा कलिङ्गे स्वनाम्ना निजाङ्गे दधाना व गङ्गे॥१९॥
यया त्वया शीघ्रतया दिवानिशं विमुक्तिकन्याशतकं प्रदीयते।
कथं मदीये विषये घृणास्पदे निबद्धमुष्टिः कृपणासि सर्वतः ॥ २० ॥

वाचामगोचरतया पुरुषः पुराणो
वेदो न वेद भवतीं वदतां वरेण्यः।
ज्ञेया भविष्यसि कथं मनुजाधमेन
कामादिषड्रिपुजितेन मयाद्रिकन्ये ॥ २१ ॥

'त्रिशङ्कु'-वदनाङ्कुरा प्रथित-'कर्मनाशा'-पगा
त्वदीयजलसङ्गमाद् भवति पूजिता निर्मला।
मिलन्ति शतशस्स्वयं जलधिसङ्गमायोत्सुका
निवाहयसि ता नदीस्त्यजसि मां कथं वक्रगम् ॥ २२ ॥

क्षीरोदजावल्लभपादजातां जगत्प्रसूं दिव्यपयोधरां त्वाम् ।
अपां समाकर्ण्य पयोऽभिलाषी मातुः पयो मेऽपि हृतं त्वयाद्य । २३ ॥

स्तुतिं त्वदीयां न करोमि मातर्वदामि सत्यं शपथेन पूर्वम् ।
यदि त्वमङ्गीकुरुषे न गङ्गे कदा विनश्यन्ति न मे ह्यघौघाः ॥ २४ ॥

त्वदीय-"गङ्गालहरी"-स्तवस्य कर्तु'र्जगन्नाथ'-सुधीश्वरस्य ।
सोपानमालां प्रविलङ्घ्य देहं कथं गृहीतं निजवीचिसङ्घैः ॥ २५ ॥

गङ्गे मदङ्गीकरणात्तवेदं शुभ्रं यशो नो भवितातिकृष्णम् ।
कलिन्दकन्याजलसङ्गमेऽपि,पयः सितं भाति यथा त्वदीयम् ॥ २६ ॥

अवश्यं करिष्यामि पापानि नित्यं
भविष्यामि सन्मार्गसंस्थानवैरी ।
तरिष्यामि संसारसिन्धुं द्युसिन्धो
त्वदम्भः पिबन् सिन्धुसौभाग्यलक्ष्मि ॥ २७ ॥

निश्शङ्कं गुरुपातकानि कुरुतां शेतां सुखं मन्दिरे
कीनाशं परितर्जयन् विहरतां दिव्याङ्गनाभिस्समम् ।
एनां स्वर्गधुनीं कपर्दिकवरीं भित्वा महीमागतां
स्पृष्ट्वा तद्गतचेतसैव लभतामैन्द्रं पदं शाश्वतम् ॥ २८ ॥

स्वर्णद्यामवगाहतां शुचिजलं तस्याः पयः पीयतां
तत्तीरे स्वमनो निगृह्य भगवत्पादाम्बुजं ध्यीयताम् ।
दुस्तर्कान्परिहाय सद्गुरुपदञ्चित्ते समाधीयतां
भूयस्तद्गतमानसेन विधिना गङ्गेति तूच्चार्यताम् ॥ २९ ॥

श्रीमद्भूपभगीरथस्य पदवीं यानुव्रजन्ती स्वयं
शम्भोर्मस्तकतस्तु बिन्दुसरसः सप्तप्रवाहोद्गमैः ।
प्राचीदिग्गमनोद्यता च नलिनी सा ह्लादिनी पावनी
सीतासिन्धुसुचक्षुषोऽवरगता स्रोतस्वनी पातु माम् ॥ ३० ॥

कावेरि गोदावरि सिन्धुरेवे ! श्रीताम्रपर्णीसरयूत्रिमार्गा ।
पुनातु मां साभिधसप्तगङ्गा वाराणसीविश्रुतपञ्चगङ्गा ॥ ३१ ॥

त्रिवाहकार्य्यस्य समाप्तिसिद्धी यस्याः सपर्य्यां न विना भवेताम् ।
महारथश्रीलभगीरथस्य रथानुगा स्तादभयाय गङ्गा ॥ ३२॥
दानेन पुण्येन जयेन पूजया स्नानेन तीर्थेन तपोभिरिज्यया ।
देवार्चया सज्जनसत्यसेवया लभ्यं फलं गाङ्गजलं मतं मम ॥ ३३ ॥

कपर्दिनः केशभरे भ्रमन्त्या यस्यास्तले चन्द्रकला नवीना ।
सहस्रकृत्वः प्रतिबिम्बिताङ्गी श्रीनीलकण्ठं नटने प्रयुङ्क्ते ॥ ३४ ॥
अनेकजन्मान्तरसञ्चितानि महामहोद्योगविवर्द्धितानि ।
महान्ति पापानि ममार्जितानि विनाशितान्यम्ब तवाम्बुलेशैः ॥३५॥

प्रभाते सन्ध्यार्थं तटगतमहीदेवकरतः,
परिभ्रष्टो यावन्मिलति सलिले कम्बलकचः ।
इमे मेषास्तावन्नृजनिफलदा राशिगणिताः
स्वलोम्नां माहात्म्यात्त्रिदशपुरवासास्समुदिताः ॥ ३६ ॥

क्वचित्स्फुटे भ्रमीरिते क्वचिद्दृषत्तिरोहिते
क्वचिच्छनैश्शनैर्गते क्वचित्समुच्छलत्प्लुते ।
क्वचित्स्वनत्तरङ्गिते क्वचिच्च नीरनीरवे
निलिम्पनिर्झरीझरे मनो मरालतां व्रज ॥ ३७ ॥

प्रायः स्वच्छं प्रवहति मनोहारि शैवालिनीनां
कूलं मातस्तव तु जगति प्रेक्ष्यते किञ्चिदन्यत् ।
हृत्वा रोगान्वितरति महाभोगयोगावमुत्र
पश्चान्मोक्षं करतलगतं कारयत्यम्बुपानात् ॥ ३८ ॥

क्वचिच्छ्रुतं नैव त्रिलोकितं वा जले भवेद् दाहकशक्तिरम्ब ।
परं त्वदीयं सलिलं सलीलं दहत्यघौघान्महतो विचित्रम् ॥ ३९ ॥

यदि त्वं सहस्राम्बुधाराप्रवाहैः समुद्रन्न गच्छेस्स्वयं धावनोत्का ।
अवश्यं स औौर्वेण दन्दह्यमानो व्रजेच्छुष्कतां संशयः कोऽत्र मातः ।
पुमर्थसंसिद्धिकपाटकक्षा अघौघविध्वंसनदीर्घपक्षाः
सुराङ्गनालिङ्गनदानदक्षा जयन्ति भङ्गास्तव भक्तरक्षाः ॥ ४० ॥

संत्यज्य गेहं गृहिणीसमेतं कुटुम्बवित्तादिभिरेव साकम् ।
कदा त्वदीये पुलिने वसन्तमात्मानमेवं प्रभवामि वक्तुम् ॥ ४१ ॥

विलपति यमराजश्चित्रगुप्तेन सार्द्धं
कथय किमिह कार्यं गाङ्गवाहे ममास्ति ।
द्विजगणपरितापी यस्सुरापी च पापी
तमपि वहति नन्दी पक्षिराजोऽथ हंसः ॥ ४२ ॥

भूत्वा विषादी भवशूलमेकं त्यक्तं प्रतीरं समुपाश्रितं ते ।
त्वया त्रिशूली भव एव साक्षान्महाविषादी विहितस्स सद्यः ॥ ४३ ॥

तव स्तवे कः प्रभुरस्तु मातः सहस्रशीर्षः पुरुषोऽसमर्थः ।
सहस्रनेत्रोऽप्यवलोकनाय सहस्रभोगी कथनेऽक्षमश्च ॥ ४४ ॥

भवानि गङ्गे ! कृपया यदा ते सहस्रबाहुः किल कार्तवीर्यः ।
तदा पिबेयं सलिलं त्वदीयं भूत्वा सहस्रास्य इतीह याचे ॥४५ ॥

सहस्रशः सन्ति न किं तटिन्यो याः स्नानमात्रेण हरन्ति पापम् ।
परन्तु सा मुक्तिवधूस्त्वदीये वशे सदा तिष्ठति निश्चयो मे ॥४६॥

याचे न मातर्धनदस्य रिक्थं (कोशं)
न वा महेन्द्रस्य च राज्यलक्ष्मीम् ।
संप्रार्थये बद्धकरद्वयोऽहं
सदा त्वदम्भोगतमीनभावम् ॥ ४७ ॥

पुरातनैः पण्डितराजिराजैस्तव स्तवोऽभाण्यसमः समस्तः ।
तथापि खद्योतसमोऽहमद्य प्रकाशयिष्ये मिहिरं स्वभासा ॥ ४८ ॥

भगीरथकुलोद्धारि त्रैलोक्यत्राणाकारि यत् ।
पापतारि मनोहारि गाङ्गवारि निपीयताम् ॥ ४९ ॥

राजते धनुषाकारा राजमौलिपुरीसरा ।
रामोत्तरामुखी धारा राजीवमहिता वरा ॥ ५० ॥
(चतुर्दलपद्मेन बध्यते पद्यमिदम्) ।

धन्यास्ते कृतिनस्त एव सफलं तेषां जनुर्जीवनं
ते जाताः परमोत्तमाः गुणगणैः पूर्णाः प्रणम्याश्च ते ।
तेषां पादयुगं वहन्ति शिरसा देवाः प्रमोदान्विता
यैर्दृष्टं विधृतं निपीतमभितस्स्नातं त्वदीयं जलम् ॥ ५१ ॥
त्वत्तीरे मणिकर्णिका-शिवपुरी-मध्ये स्थिताऽर्हनिशं
वीचीभिर्मणिकर्णिकेव विधृता कर्णे स्वयं पाणिभिः ।
प्राप्तेभ्यस्स्वतटं ददाति मनुजेभ्यो या पदं शाश्वतं
वन्दे तां कलिकल्मषौघशमनीं मन्दाकिनीं मुक्तिदाम् ॥ ५२ ॥
क्षणे क्षणे पातकिनं सहस्रशः सत्तारयेयं निजवारिबिन्दुभिः ।
इतीव गर्वेण सफेनबुद्बुदैर्निष्ठीवनं यानुदिनं करोति हि ॥ ५३ ॥
महामहापातकितारणेन त्वदीर्ष्यया श्यामलतामुपेता ।
यमस्वसा कृष्णपदस्पृशाऽपि तमालनीला यमुना विभाति ॥ ५४॥
गिरीशोत्तमाङ्गाद् गिरीशोत्तमाङ्गं स्वधाराभिराभी रटन्तीं पतन्तीम् ।
महापातकानि स्वयं क्षालयन्तीं स्वभक्तानवन्तीं नुमो जन्हुजाताम्॥५५॥
हरिद्वार आस्यं प्रयागे भुजाभ्यां नदीभ्यां समेतेव काशी स्वहृच्च ।
स्वयं दर्शयन्तीं स्वपादाङ्गुलीभिस्स्पृशन्तीं नदीशं नुमो देवसिन्धुम् ॥५६॥
गर्जन्ति तावन्मम पातकानि यच्छन्ति दुःखं बहु तर्जयन्ति ।
भक्तानुकूलं तव देवि कूलं प्रयाति यावन्न समक्षमम्ब ॥ ५७ ॥
संवाहयन् त्वां स्वपदा मुरारिः कृष्णोऽभवत्सत्त्वगुणप्रधानः ।
निजोत्तमाङ्गेन दधत् पुरारिः कर्पूरगौरस्तम आदधानः ॥ ५८ ॥
विभूतिभूषितः कदा वसन् त्वदीयरोधसि
नियम्य मारुतं निजं निमील्य नेत्रयुग्मकम् ।
विभूतिभूतिभासितं भवं विलोकयन् हृदि
भवस्य वैभवं विहाय सम्भवेयमम्बिके ॥ ५९ ॥
मुक्तिप्रचारा भुवनप्रसारा विरागभाराः करुणावताराः ।
पापौघदाराः कृतरूपनारायणप्रकारास्तव वारिधाराः ॥ ६० ॥

किं नेत्रे शिखिचन्द्रिके नु कथिते याभ्यान्न दृष्टं जलं
तौ कर्णौ विवरे मतौ नहि ययोर्मध्ये त्वदम्भोध्वनिः ।
सा दुष्टा रसना कथं न रसितो दिव्यो रसस्ते यया
कूपो वास्यमदो न यत्र विशति ब्रह्मद्रवस्तावकः ॥ ६१ ॥

यावन्तः पापनिष्ठाः दुरतिकृतिरतास्त्यक्तसद्धर्ममार्गा
मिथ्याचारप्रचारा मतिगतिरहिता नित्यवेश्याविहाराः ।
पित्रोर्द्रोहाऽङ्घ्रितीर्णा निजसलिलरवैस्तारिता ये त्वयाद्य
तेऽतीतास्तारकाणां गगनतलगतानाञ्च संख्यामसंख्याः ॥ ६२ ॥

यथा यथा नीचजनान्करोषि चतुर्भुजांश्चक्रगदादियुक्तान् ।
तथा तथा तेऽपि पदा स्पृशन्ति कुपात्रदानात्कुफलं हि लभ्यम् ॥ ६३ ॥

यूनोऽपि मे या मलमूत्रसङ्घान् सदा वहन्ती कृपयैव मार्ष्टि ।
पानाशनार्थञ्च पयो ददाति नमामि तां मातरमादिशक्तिम् ॥ ६४ ॥

त्रयीमयीयं त्रिगुणप्रधाना त्रैलोक्यकल्याणपरा त्रिमूर्तिः ।
त्रिदेवपूता त्रिदिवं नयन्ती त्रिमार्गगा मामवतात् त्रिनेत्रा ॥ ६५ ॥

ये मज्जनार्थं प्रतियान्ति गङ्गे विगाहितं यैस्तव वारि नित्यम् ।
स्नातुं समेष्यन्त्यथ ये मनुष्यास्तत्पादधूल्या स्वमहं पुनामि ॥ ६६ ॥

पराङ्गनाभोगविलाससक्तैर्न पूजितो यैस्सुमना गुरुर्वा ।
गोघ्नान् द्विजघ्नान् गुरुतल्पगांश्च पुनासि तानम्ब निजाम्बुलेशैः ॥ ६७ ॥

ये घोरपापाः कलिकल्मषेषु निबद्धभावा अभियान्तु तेऽद्य (सद्यः) ।
इति स्वनद्वारि तरङ्गहस्तैस्समाह्वयन्ती विजयस्व गङ्गे ॥ ६८ ॥

दास्यामि गालीं गणनाविहीनां करोमि निन्दां जनतामुपेतः ।
पश्यामि धैर्यं सहसे कियत्त्वं कुपुत्रदौरात्म्यमहो कठोरम् ॥ ६९ ॥

विरागजज्ञानपथप्रसङ्गास्तडिल्लता विभ्रमलोलदङ्गाः ।
दोलायमाना विहरद्विहङ्गा जयन्ति गीर्वाणधुनीतरङ्गाः ॥ ७० ॥

मातस्त्वदुत्सङ्गगतोऽधुनाऽहं धयन्पयस्ते विलसन्त्वदीयैः ।
तरङ्गहस्तैरतिलाल्यमानः स्वपृष्ठदेशे जननीं स्मरामि ॥ ७१ ॥

गङ्गे त्वदम्भः श्रयतान्न केषां स्वयंवरा मुक्तिवधूर्गलेषु ।
विज्ञानकल्पद्रुमपुष्पमालां सम्मेलयन्ती भ्रमति त्रिलोक्याम् ॥ ७२ ॥

के वा देवा तव न सलिलैस्स्नापिता जह्नुकन्ये ।
कैर्वा सेवाकरणविधिना न स्तुता देवि धन्ये ।
के वा पापाश्चरणशरणा नैव मुक्ता न मन्ये
के वाऽभीष्टा न च सुकृतिभिर्लभ्यमाना वदान्ये ॥ ७३ ॥

दशाश्वमेधे मणिकर्णिकायां केदारकुण्डे वरणासिसङ्गे ।
श्रीपञ्चगङ्गे निवसन् हि काश्यां स्नायी कदा स्यां कलिकामधेनो ॥७४॥

समस्तपापौघविनाशमूलं स्वभक्तसद्मुक्तिविलासतूलम् ।
विमुक्तिबाला विगलद्दुकूलं भजामि गङ्गे तव दिव्यकूलम् ॥ ७५ ॥

यन्नामस्मरणेन योजनशतैर्दूरङ्गता मानवा—
स्तीर्त्वा संसृतिसागरं सुकठिनं गण्डूषमण्डूकवत् ।
पापौघान् परिहाय हन्तु सुमनोवृन्दार्चिताङ्घ्रिद्वया
पान्ति श्रीपतिलोकमाशु सहसादिव्याङ्गनालालिता ॥ ७६ ॥

पिपासाशान्त्यर्थं वितरति सदा स्वादु सलिलं
क्षुधातृप्त्यै मीनानथ कमलबीजान्यपि च या ।
स्वकूलक्षेत्रेषु प्रकिरति मुदा पङ्कनिचयं
पुनन्ती त्रैलोक्यं जयति जननी जह्नुतनया ॥ ७७ ॥

ज्ञात्वा विष्णुपदोद्गतां भगवतीं भागीरथीं मुक्तिदां
तन्माहत्म्यविलङ्घनोत्सुकतया या सत्वरा गत्वरी ।
ईर्ष्याव्यापृतमानसाऽतिमलिना कीनाशतातात्मजाः
स्पृष्ट्वा श्रीवसुदेवसूनुचरणाम्भोजं कृतार्थाऽभवत् (पवित्रीयति) ॥ ७८ ॥

चेतश्चिन्तय सादरं हिमवतः शृङ्गात्पतन्तीमिमां
रे पादौ ! मम गच्छतश्च पुलिने श्रीजह्नुजायाः शुभे ।
चक्षुः ! पश्य तरङ्गितं जलचयं रे घ्राण ! जिघ्राम्बुजं
गङ्गेत्यक्षरयुग्मकं रट मुदा जिह्वे ! रसास्वादिनि ॥ ७९ ॥

त्रिविक्रमपदोद्भवा त्रिविधतापसंहारिणी
त्रिलोचनशिरोगता त्रिदिवमार्गसंस्कारिणी ।
त्रिसन्ध्यमुनिसंस्तुता त्रिनयना जगत्तारिणी
त्रिविष्टपतरङ्गणी त्रिपथगामिनी मा भवेत् ॥ ८० ॥

देहार्द्धदानाद् गिरिराजपुत्र्यै केशग्रहं या गिरिशस्य चक्रे ।
सापत्न्यभावात्कुटिलं प्रयान्त्याः स्वतन्त्रवृत्तेस्तु तदेव युक्तम् ॥ ८१ ॥

विचार्य्य धार्ष्ट्यं गिरिराजकन्ये मन्ये महेशो भवतीं मुमुक्षुः ।
निगील्य हालाहलमम्ब ! मत्तो भ्रमत्यसौ सागरसङ्गमात्ते ॥ ८२ ॥

या स्नातुं समुपागतान्निजजनांल्लोलत्तरङ्गभ्रमैः
स्पृष्ट्वा स्पर्शसुखावहैरतनुभिर्हस्ताम्बुजातोपमैः ।
हिन्दोलागमनागमासि तनुते शश्वत्स्वपुत्रानिव
हाहा तां जननीं विहाय करुणामूर्तिं कुतस्ते श्रमः ॥ ८३ ॥

यद्धारा नियतन्निबद्धमुसलाकाराम्बुधाराधरै-
रत्याच्छादितभूतिरोहिततटोद्भूतद्रुमालिच्छविः ।
ध्वान्तध्वंसचलत्तडिद्रवरवत्पाथःप्रवाहाधुना
रोधस्स्थैरवलोक्यते सुरधुनी स्वर्गात्पतन्ती भुवम् ॥ ८४ ॥

सेतुं समारुह्य विलोकयेच्चेत् तदान्तराले शुचिगाङ्गधाराम् ।
ब्रूयादवश्यं मनुजोऽत्र काश्यां पातालगङ्गा सुतरामधःस्था ॥ ८५ ॥

मिलद्वीचिपूरे तटस्थे कुटीरे वसन्स्वत्प्रतीरे निमज्जश्च नीरे ।
प्रविष्टः समीरे परित्यक्तचीरे स्वकीये शरीरे कदा निस्पृहः स्याम् ॥ ८६ ॥

अयि सागरतारिणि सागरवारिणि वीचिविहारिणि कञ्जकरे
काशीतलवाहिनि मङ्गलदायिनि मकरस्थायिनि देवि परे ।
कृतहरिपदवासे सुकृतविकासे दुरितविनाशे देवनुते
तुहिनाचलकन्ये त्रिभुवनधन्ये जय जय गङ्गे जह्नुसुते ॥ ८७ ॥

न यातु लोकः सुरसिन्धुतीरं नग्नं वृषस्थं भुजगैः परीतम् ।
पञ्चाननं भूतपतिं विधाय स्वयं शिरस्स्था भवति क्षणेन ॥ ८८ ॥

शिवा शिवशिरःसरोवरसमुद्भवा शाम्भवी
अशैवकुलनाशिनी शिवमयी शिवालिङ्गिता ।
शिवा–शिव–शिवङ्करी शिवकरी शिवत्वप्रदा
शिवाय भजतां सतां शिवकरास्तु सा शङ्करा ॥ ८९ ॥

संप्रार्थये पाणियुगं निबद्ध्य विश्वेश्वरं स्वर्गधुनीं धरन्तम् ।
प्रभो ! भवेन्मद्वसतिः सदैव भागीरथीतीरकुटीरकोणे ॥ ९० ॥

यावत्किञ्चिज्जननि यवनश्चर्मकुम्भं प्रवाह
आदातुं ते सलिलममलं मज्जयत्यम्ब ! दैवात् ।
तावद्गावो विमलतनवः कामधेनुं हसन्त्यः
क्रीडन्त्येताः सुरपुरगता नन्दनारण्यचाराः (वासाः) ॥ ९१ ॥

रे रे दूता मदीयाः शृणुत मम वचो यर्हि यायास्त लोके
गङ्गातीरप्रदेशे नगखगमृगान्नॄन् पिशाचांश्च पापान् ।
अस्पृष्ट्वैवं स्वकार्य्ये लगत नहि भवेन्मेऽधिकारो विनष्ट
इत्यज्ञाभिस्स्वकीयान् प्रभुवरशमनोऽनुक्षणं शास्ति दूतान् ॥९२॥

एकेनैव मुखेन तेऽमृतमयं क्षीरं भवानीसुतः
सेनानीरपिबद्ध्रुवं शिशुरसावास्यैस्तु षड्भिर्युतः ॥
दैत्यान्सोऽप्यजयत्कथं तव पयो नित्यं पिबन् जाह्नवि
कामादीन्स्वरिपूनहं न जितवाञ्जाने मनोदुष्टताम् ॥ ९३ ॥

किं माला यूथिकायाः शशधरकलया बिम्बितं वोत्तमाङ्गे
किं वा सर्पोऽतिशुभ्रः प्रविशति कबरीं श्वेतसूत्रावलिर्वा ।
जातं शम्भोः पवित्रे शिरसि पलितमाहोस्विदेवं विविच्य
ज्ञाता सिद्धैर्भ्रमन्ती जयति सितजला देवकल्लोलिनीयम् ॥९४॥

कृत्वा गण्डूषमध्ये जलनिधिमपिबत्कुम्भयोनिर्यदैव
तद्दुःखार्द्रा (ता) सबाष्पा भगवति भवती वीक्ष्य शुष्कं समुद्रम् ।
धावन्ती स्नेहवेगान्निजसलिलभरैः पूरयित्वा पयोधिं
लोकानानन्दयन्ती भुवनमुपगता पातु गङ्गा सभङ्गा ॥ ९५ ॥

यादृग् यशोऽम्ब्रास्त्यमितं सहस्रैर्मुखैरगण्यं गणनापरन्ते ।
तादृङ्मदीयं खलु घोरपापमीक्षे द्वयोरद्य बलं युयुत्स्वोः ॥ ९६ ॥

अयमेव महाव्यतिक्रमः क्रियते देव्यविचारतस्त्वया ।
बहुपापिसुरापतापिनो विहिता मोक्षपथाधिरोहिणः ॥ ९७ ॥

शशकैर्मशकैश्शुकैर्बकैः सुरसिन्धौ यदवाप्यते पदम् ।
ऋषिभिर्बहुयोगसाधनैर्जितगोभिर्नहि लभ्यते क्वचित् ॥ ९८ ॥

बहुभिर्दिवसैर्मया श्रुतं युगसन्ध्यन्तरमेव यास्यसि ।
स तु सन्धिरितस्स्वयञ्जगज्जननि ! त्वं परिपासि पापिनः ॥ ९९ ॥

जलयन्त्रपथेन काशिकाहृदयं या प्रविवेश जाह्नवी (सत्वरा) ।
कथमेष्यति सा विहाय तां सह विश्वेश्वरशोभितामिमाम् ॥ १०० ॥

राजीवसंशोभितशुद्धनीरा रामायणादिस्तुतदिव्यधारा ।
राज्यं विमुक्तेर्निजभक्तदारा रातु त्रिनेत्रा त्रिपथप्रचारा ॥ १०१ ॥

(चतुर्दलाष्टदलकमलाभ्यां निबध्यते पद्यमदः)

यामालिङ्गितुकामा श्रीकाशीमुक्तिधामाऽसौ ।
तिष्ठत्युत्थितपाणि"र्माधवधरहराव्याजेन ॥ १०२ ।

उक्तं केनचिदेव विषगुरयुतं वर्षाणि संस्थास्यति
तस्याद्धं जननि ! त्वदीयमुदकं भूमण्डलं पास्यति ।
किन्त्वेको भ्रमविभ्रमोऽत्र भवति स्पष्टः कथं वैष्णवं
पादं विष्णुपदी प्रपास्यति नदीस्त्यक्ताम्बु पूर्वं ततः ॥ १०३ ॥

नाहं वच्मि वचः क्वचिच्चजनचये जाने भवन्तीं स्वतः
सञ्जातां प्रकृतिं पुराणपुरुषाद् ब्रह्मद्रवां निर्मलाम् ।
शम्भोर्मस्तकमालतीसुममयीं मालां जगन्मातरं (सदास्थायिनीं)
नित्यां नित्यतरङ्गिणीं त्रिपथगां भागीरथीं जाह्नवीम् ॥ १०४॥

रे रे कातान्तदूताः ! किमिति मम करो गृह्यते पापमूर्तें
नेतुं त्वां धर्मराजं प्रतिकृतवृजिनव्रातसंशोधनार्थम् ।

मूढा दूरं प्रयात प्रभुरपि न हि वः स्प्रष्टुमङ्घ्रौ क्षमो मे
को हेतुः ? स्पृष्टगङ्गोऽहमिति वचनं ते समाकर्ण्य याताः। १०५ ॥
विधीयतां पातकपुञ्जमत्र निधीयतां तद्यमराजशीर्षे।
विगह्यतां स्वर्गविलाससौख्यं विलोक्यतां हैमवती सरिच्च ॥ १०६ ॥
श्रीगौतमप्रार्थनया प्रसन्ना सिंहस्थिते देवगुरौ स्वयं या।
स्वभक्तवृन्देष्टविधानसिद्ध्यै गोदावरीं गच्छति पञ्चवट्याम् ॥१०७॥
यस्यास्तटे विन्ध्यगिरेः शिरस्था श्रीयोगमायाष्टभुजादिशक्तिः।
सहावसन्ती कलिकल्मषौघान् विनाशयन्तीष्टफलं ददाति ॥ १०८ ॥
आसन्सत्ययुगे बहूनि भुवने तीर्थानि पुण्यानि वै
त्रेतायां विहितं समस्तसुखदं श्रीपुष्करं दुष्करम्।
जातं द्वापरसंज्ञके गुरु कुरुक्षेत्रं पवित्रं भुवि
तिष्ये तीर्थकुलाभिवन्दितजला श्रीजाह्नवी केवलम् ॥ १०९ ॥
यस्याः प्रतीरे चरणाद्रिदुर्गे राजर्षिराड्भर्तृहरिर्यतीन्द्रः।
समाधिनिष्ठोऽप्यवगाहनाय ह्यायाति काशीमिति सुप्रसिद्धिः ॥ ११० ॥
मत्पूर्वजास्साखपारतोऽम्ब समेत्य काशीं तव सेवनार्थम्।
विधाय वासं त्वयि मुक्तिभाजो जातास्तथा मां कुरु भाग्यवन्तम् ॥१११॥
अवाप्य यस्या उदकं तिलेन संयोजितं स्वीयकुलोद्भवेन।
अक्षय्यतृप्तिं समुपेत्य दृप्ता भवन्ति तृप्ता पितरः कृतार्थाः ॥ ११२ ॥

अशेषपापहारिणी गिरीन्द्रशृङ्गदारिणी
गिरीशशीर्षचारिणी पयोधिपूर्तिकारिणी।
स्वसेविवृन्दतारिणी भवाब्धिभीतिवारिणी
मदीयमुक्तिधारिणी भवेत्स्वभक्तिभारिणी ॥ ११३ ॥

न भूतो न भावी न चास्ति त्रिलोक्यां
त्वयाप्यम्ब ! नो दृष्टपूर्वः क्वचित्स्यात्।
महाघोरपाप्माकुपात्रेषु वीरो
विरञ्चिप्रपञ्चे द्वितीयो मदन्यः ॥ ११४ ॥

अयोध्यादिका या श्रुतास्सप्त पुर्य्यः
सदा मोक्षदास्तासु यास्त्वद्विहीनाः ।
ततोऽष्टादशास्त्वत्तटीस्था नगर्य्यः
कथन्नाधिकास्स्युर्महामुक्तिदाने ॥ ११५ ॥

सार्द्धसप्तशतक्रोशाधिका भारतभूर्यया ।
प्लाविता 'राजगृहतो' द्विधारे नोऽव जाह्नवि ॥ ११६ ॥
भूयो भूयोऽपि भवताद् भवतां भूरिभूतिभूः ।
भूतेशभालभृङ्गारो भ्रमद्भागीरथीभ्रमः ॥ ११७ ॥

जन्योर्जनुर्जन्यजघन्यजालमजुगुप्साजीर्णज्वरजैत्रजायुः ।
जरज्जगज्जालजिघत्सुजिह्वा ऽज्जाजह्नुजाता जयताज्जगत्याम् ॥११८॥

'ऋते ज्ञानान्मुक्तिर्नहि भवति' कश्चिन्निगदति
कलौ गङ्गैवैका परमपददात्री परमते ।
मम ज्ञाने सिद्धं जननि! तव पाथोलवजुषां
नृणां ज्ञानं मुक्तिस्स्पृशति सततं पादयुगलम् ॥ ११९ ॥

कृत्वा घोरतरान् हि पातकचयान् वाहीकविप्रो मृतो
नीतो दूतगणैर्यमस्य सदनं निर्भत्सितस्ताडितः ।
चित्रस्तं परिचित्य चित्रितमतिर्वैचित्र्यमाभाषते
'गङ्गायामशिवं शवास्थिशिवतां याती'ति सम्मूर्च्छति ॥१२०॥

वैराग्यग्रहसंकुला सुरवकैर्जुष्टा मनोहारिणी
नित्यं शान्तितरङ्गिता बुधजनैस्संसेविता मुक्तिदा ।
गङ्गा देवसरित्सुधा रसमयी (जला) पापद्रुमध्वंसिनी
पुण्यावर्तसुदुस्तरा शुचिहृदा ध्येया मया सा कदा ॥ १२१ ॥

काका नक्राः कमठमकराः पोतमारा हि मीनाः
ग्रामा ग्राम्या मनुजपशवः पादपाः घासगुल्माः ।
भूमिर्ग्रावा गिरिवनगुहा ब्राह्मणाः घट्टवासाः
धन्या मान्या भगवति! सदा सन्निधानाद्भवत्याः ॥ १२२ ॥

न मादृक् पापीयान्सकलजनतापी सुरसरित् !
त्वया कश्चिल्लोके जननि गमितो मुक्तिपदवीम् ।
विहायाहङ्कारं दृढपरिकरा स्यास्त्वमधुना
अये गङ्गे "नारायणपतेः" समुद्धारसमयः ॥ १२३ ॥

रे चेतो ! भवतो निदेशवशतो नाकारि किञ्चिन्मया
पापेनाऽपि न यत्कृतं प्रियसखे ! तत् कारितोहन्त्वया ।
याचे सम्प्रति मित्र ! मे शृणु वचः श्रुत्वा समाधीयतां
गङ्गावारितरङ्गसङ्गमसुखं स्वाङ्गेऽन्तरङ्गीयताम् ॥ १२४ ॥

श्रीशन्तनोस्स्त्री मम शन्तनोतु तनोः कृतघ्नस्य जघन्यवृत्तेः ।
भीष्मप्रसूर्जह्नुसुता द्युसिन्धुः सिन्धोः प्रिया सेतुमतीह काश्याम् ॥१२५॥
नाहं समीहे नृपतित्वमम्ब ! द्विजेश्वरत्वं न विशां पतित्वम् ।
इच्छामि नौकातरणे पटुत्वं सुधीवरत्वं त्वयि धीवरत्वम् ॥ १२६ ॥
सुरापगे ! पापनगस्य वज्रं दुःखद्रुमाणां कठिनं कुठारम् ।
अनिच्छयाप्यम्ब ! तवाम्बुलग्नं दहत्यघान्यग्निशिखेव सद्यः ॥ १२७ ॥

आपद्दारा देवागारा भूविस्तारा लोकाऽऽसारा
पारावाराऽऽधाराऽधारा स्वःसञ्चारा पारापारा ।
भक्तोद्धारा काशीस्था कोदण्डाकारा शुद्धाऽऽचारा
पापाहारा सत्संसारा चिद्व्यापारा श्रीगङ्गा स्तात् ॥ १२८ ॥

धन्या हरिद्वारपुरी सुरम्या
ततश्च धन्यः किल तीर्थराजः ।
तस्मान्महाधन्यतरोऽब्धिसङ्गस्
त्वद्दर्शनाद् (स्पर्शनाद्) द्धन्यतमा वयञ्च ॥ १२९ ॥

या चक्रपाणेश्चरणाब्जाता श्रीचन्द्रमौलेश्च जटाचरी या ।
भुजैश्चतुर्भिश्चतुरोऽपवर्गांश्चतुर्युगे सा चतुरा ददाति ॥ १३० ॥
यस्यां शवस्थः किल वायसोऽपि मत्वा तृणं वासवराज्यलक्ष्मीम् ।
एकेन नेत्रेण सहस्रनेत्रं हसत्यसौ नेत्रविदारणोत्कः ॥ १३१ ॥

त्वद्रूपाः सकलाः स्त्रियस्त्रिभुवने दृष्ट्वा (ज्ञात्वा) थ भीष्मोऽष्टमः
पुत्रस्ते भवदेक एव जगतीस्थो ब्रह्मचर्य्यव्रतः ।
गङ्गापुत्रपदं गता द्विजवराः घट्टस्थिता ये च ते
ते सर्वे खलु पूजिता अपि तथा नो भान्ति गङ्गे कथम् ॥ १३२॥

विपत्तिर्विश्रान्ता सकलसुखसम्पत्तिरनिशं
समायाता मार्तर्विगलित इतो दुःखनिचयः ।
विवृद्धं सौभाग्यं निखिलनिधयस्तद्गृहगता
लुठन्त्यम्ब ! स्वैरं जगति करुणायास्तत्र फलम् ॥ १३३ ॥

त्रिभुवने भुवनं तव शोभते निखिलजीवसुजीवनजीवने !
अमृतवाहिनि ! देह्यमृतं पदं यदि मृतो वनजाक्षि वने वने ॥ १३४ ॥

पापहारि देवि वारि, को नरो न ते पिबेन् ।
तीर्थवासनां विहाय त्वत्तटीकुटीं श्रयेत् ॥ १३५ ॥

मा कुरु शङ्कां विहर यथेच्छं, स्वर्गधुनी प्रवहति जलमच्छम् ।
केवलदर्शनतोऽघविदारा जयति सदा गङ्गामृतधारा ॥ १३६ ॥

विचार्य्याचार्य्याणां वचनमधुना कोविदवरो
व्यवस्थायामास्थां प्रकटयतु सत्स्वस्थमनसा ।
कलावत्याः काश्याममरपुरनद्याः शुचिजलं
कलप्राप्तं पेयं कलिकलुषनाशाय न कथम् ॥ १३७ ॥

पूता मद्गीरपि तव गुणैर्वर्णतामद्य लब्धा
स्नानाद्धन्या तनुरघमयी चिन्तया चित्तवृत्तिः ।
शुद्धिः सर्वा भवति जगति त्वज्जलेनैव तस्मात्
पानीयन्ते कलिकलगतं पीतमोक्षप्रदातृ ॥ ३८ ॥

'रामानन्द'-सुधीश्वरेण बहुभिरस्तोत्रैस्स्तुता या भृशं
तद्वत् पण्डित-'चन्द्रशेखर'-वचो यां सेवतेऽहर्निशम् ।
तेषां गोत्र-(वंश) समुद्भवेन च मया यद्बालिशेनोच्यते
तम्म्लिष्टं वचनं भवेत्तव मुदे त्वं विश्वमाता यतः ॥ १३९ ॥

मातस्तावकसंस्तवे निगदितं ज्ञानादथाज्ञानतः
सत्यं वाप्युचितं वृथाप्यनुचितं योज्यं त्वयोग्यं वचः।
तत्सर्वं मम साहसं गिरिसुते ! क्रूरात्मनो दुस्सहं
बुद्ध्वा दुष्टसुतेरितं करुणया दृष्ट्वा क्षमस्वाधुना ॥ १४० ॥

मद्वाणि ! तुभ्यं करवाणि मूर्द्धना महाप्रमाणैर्गुणितान्प्रणामान् ।
कल्याणि गीर्वाणतरङ्गिणीस्था निर्वाणविश्राणनतत्परा स्याः ॥ १४१ ॥

स्तुतिस्वरूपा स्वयमेव गङ्गा
यमादिनिन्दा ममुना विमाता ।
प्रच्छन्नवाहा (रूपा-धारा-पूता) च सरस्वती मे
कुर्य्यात्प्रयागं शतकं त्वदीयम् ॥ १४२ ॥

सप्तेष्वङ्केन्दु (१९५७) वर्षे गतकलियुगसन्धौ नमस्ये नभस्ये
मासे पक्षे वलक्षे कुजदिवसयुते सत्तृतीयातिथौ च ।
रामापत्यं हि 'नारायणपति' धरणीनिर्जरः काशिकायां
श्रीमद्गङ्गाजनन्याश्शतकमरचत्प्रीतयेऽस्या भवेत्तत् ॥ १४३ ॥

॥ इति श्रीगङ्गाशतकं नारायणपतेः कृतम् ।
समाप्तं तत्प्रसादेन तस्या एव समर्पितम् ॥ १४४ ॥

॥ शुभमस्तु सर्वेषाम् ॥

श्रीकाशीवासिपण्डितधुरीणानां कुलोद्भवेन
त्रिपाठिश्रीनारायणपतिशर्मणा विरचितं
गङ्गाशतकं समाप्तम् ।

१३२. गङ्गादशहरा-स्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः।
नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः।
सर्व-देवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्त्तये ॥ २ ॥
सर्वस्य सर्व-व्याधीनां भिषक्-श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते।
स्थास्नु-जङ्गम-सम्भूत-विष-हन्त्र्यै नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
संसार-विष-नाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते।
ताप-त्रितय-संहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः ॥ ४ ॥
शान्ति-सन्तान-कारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्त्तये।
सर्व-संशुद्धि-कारिण्यै नमः पापारि-मूर्त्तये ॥ ५ ॥
भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः।
भोगोपभोग-दायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्य-भूषायै त्रिपथायै नमो नमः ॥ ७ ॥
नमस्त्रि शुक्ल संस्थायै क्षमावत्यै नमो नमः।
त्रिहुताशन-संस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः ॥ ८ ॥
नन्दायै लिङ्ग-धारिण्यै सुधाधाराऽऽत्मने नमः।
नमस्ते विश्व-मुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः ॥ ९ ॥
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोक-धात्र्यै नमोऽस्तु ते।
नमस्ते विश्व-मित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः ॥ १० ॥
पृथ्व्यै शिवाऽमृतायै च सुवृषायै नमो नमः।
पराऽपरशताऽऽढ्यायै तारायै ते नमो नमः ॥ ११ ॥
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते।
शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः ॥ १२ ॥

उग्रायै सुखजग्ध्यै च सञ्जीविन्यै नमोऽस्तु ते।
ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरित-घ्न्यै नमो नमः ॥ १३ ॥
प्रणताऽऽर्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते।
सर्वाऽऽपत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः ॥ १४ ॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे !
सर्वस्यार्त्ति-हरे ! देवि ! नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥ १५ ॥
निर्लेपायै दुर्ग-हन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः।
पराऽपरम्परायै च गङ्गे ! निर्वाणदायिनि ॥ १६ ॥
गङ्गे ममाऽग्रतो भूया गङ्गे मे तिष्ठ पृष्ठतः।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि गङ्गे त्वय्यस्तु मे स्थितिः ॥ १७ ॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गाङ्गते ! शिवे !
त्वमेव मूलं प्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि ॥ १८ ॥
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे।
य इदं पठते स्तोत्रं शृणुयाच्छ्रद्धयाऽपि यः ॥ १९ ॥
दशधा मुच्यते पापैः कायवाक्चित्तसम्भवैः ॥ २० ॥

॥ इति गङ्गादशहरा-स्तोत्रं संम्पूर्णम् ॥

१३३. यमुनाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीयमुनायै नमः

मुरारिकाय कालिमा ललामवारिधारिणी
तृणीकृतत्रिविष्टपा त्रिलोकशोकहारिणी।
मनोऽनुकूल कूलकुञ्जपुञ्जधूतदुर्मदा
धुनोतु मे मनामलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ १ ॥
मलापहारि वारि पूरि भूरि मण्डिता मृता
भृशं प्रपातकप्रपञ्चाऽतिपण्डिता निशा।

सुनन्दनन्दनाङ्गसंगरागरञ्जिता हिता
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ २ ॥
लसत्तरङ्गसङ्गधूतभूतजातवातका
नवीनमाधुरीधुरीणभक्तिजातचातका ।
तटान्तवासदासहंससंसृताह्निकामदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ३ ॥
विहाररासखेदभेदधीरतीरमारुता
गता गिरामगोचरा यदीयनीरचारुता ।
प्रवाहसाहचर्यपूतमेदिनी नदी नदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ४ ॥
तरङ्गसङ्गसैकतान्तरान्तितं सदाऽसिता
शरन्निशाकरांशुमञ्जुमञ्जरीसभाजिता ।
भवार्चनायचारुणाम्बुनाधुनानिशारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ५ ॥
जलान्तकेलिकारिचारुराधिकाङ्गरागिणी
स्वभर्तुरन्यदुर्लभाङ्गतांशभागिनी सदा ।
स्वदत्तसुप्तसप्तसिन्धुभेदनातिकोविदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ६ ॥
जलच्युताच्युताङ्गरागलम्पटालिशालिनी
विलोलराधिकाकचान्तचम्पकालिमालिनी ।
सदावगाहनावतीर्णभर्तृभृत्यनारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ७ ॥
सदैव नन्दनन्दकेलिशालिकुञ्जमञ्जुला
तटोत्थ - फुल्लमल्लिकाकदम्बरेणुसूज्ज्वला ।
जलावगाहिनां नृणां भवाब्धिसिन्धुपारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

१३४. यमुनाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीयमुनायै नमः

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
मुरारिप्रेयस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम् ।
वियज्जालान्मुक्तां श्रियमपि सुखाप्तेः परिदिनं
सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम् ॥ १ ॥

मधुवनचारिणि भास्करवाहिनि जाह्नविसंगिनि सिन्धुसिते
मधुरिपुभूषिणि माधवतोषिणि गोकुलभीतिविनाशकृते ।
जगदघमोचनि मानसदायिनी केशवकेलिनिदानगते
जय यमुने जय भीतनिवारिणि संकटनाशिनि पावय माम् ॥२॥

अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविदारिणि वेगभरे
परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वांछितकामविलासधरे ।
व्रजपुरवासिजनार्जितपातकहारिणि विश्वजनोद्धरिके
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि संकटनाशिनि पावय माम् ॥३॥

अतिविपदाम्बुधिमग्नजनं भवता पशता कुलमानसकं
गतिमतिहीनमशेषभयाकुलमागतपादसरोजयुगम् ।
ऋणभयभीतिमनिष्कृतिपातककोटिशतायुतपुञ्जतरं
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि संकटनाशिनि पावय माम् ॥४॥

नवजलदद्युतिकोटिलसत्तनुहेममयाभररञ्जितके
तडिदवहेलिपदाञ्चलचञ्चलशोभितपीतसुचैलधरे ।
मणिमनभूषणाचत्रपटासनरञ्जितगञ्जितभानुकरे
जय यमुने जय भीतिनिवारिणि संकटनाशिनि पावय माम् ॥५॥

शुभपुलिने मधुमत्तयदूद्भवरासमहोत्सवकेलिभरे
उच्चकुलाचलराजितमौक्तिकहारमयाभररोदसिके ।

नवमणिकोटिकभास्करकञ्चुकिशोभिततारकहारयुते,
जय यमुने जय भीतनिवारिणी संकटनाशिनि पावय माम् ॥६॥
करिवरमौक्तिकनासिकभूषणवातचमत्कृतचञ्चलके
मुखकमलामलसौरभचञ्चलमत्तमधुव्रतलोचनिके ।
मणिगणकुण्डललोलपरिस्फुरदाकुलगण्डयुगामलके
जय यमुने जय भीतनिवारिणि संकटनाशिनि पावय माम् ॥७॥
कलरवनूपुरहेममयाचितपादसरोरुहसारुणिके
धिमिधिमिधिमिधिमिधिमितालविनोदितमानसमञ्जुलपादगते ।
तव पदपङ्कजमाश्रितमानवचित्तसदाखिलताप हरे
जय यमुने जय भीतनिवारिणि संकटनाशिनि पावय माम् ॥८॥
भवोत्तापम्भोधौ निपतितजनो दुर्गतियुतो
यदिस्तौति प्रातः प्रतिदिनमनन्याश्रयतया ।
हयाह्रेषैः कामं करकुसुमपुञ्जैरविरतं
सदाभोक्ता भोगान्मरणसमये याति हरितम् ॥९॥
॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं
यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

१३५. सरस्वत्यष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीसरस्वत्यै नमः

शतानीक उवाच—

महामते महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
अक्षीणकर्मबन्धस्तु पुरुषो द्विजसत्तम ॥ १ ॥
मरणे यज्जपेज्जापं यं च भावमनुस्मरन् ।
परं पदमवाप्नोति तन्मे ब्रूहि महामनु ॥ २ ॥

शौनक उवाच—

इदमेव महाराज पृष्टवांस्ते पितामहः।
भीष्मं धर्मविदां श्रेष्ठं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
बृहस्पतिस्तुता देवी वागीशाय महात्मने।
आत्मानं दर्शयामास सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ ४ ॥

सरस्वत्युवाच—

वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते।

बृहस्पतिरुवाच—

यदि मे वरदा देवि दिव्यज्ञानं प्रयच्छ मे ॥ ५ ॥

देव्युवाच—

हन्त ते निर्मलं ज्ञानं कुमतिध्वंसकारकम्।
स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तुवन्ति मनीषिणः ॥ ६ ॥

बृहस्पतिरुवाच—

लभते परमं ज्ञानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥ ७ ॥

सरस्वत्युवाच—

त्रिसन्ध्यं प्रयतो नित्यं पठेदष्टकमुत्तमम्।
तस्य कण्ठे सदा वासं करिष्यामि न संशयः ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीपद्मपुराणे दिव्यज्ञानप्रदायकं सरस्वत्यष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१३६. नर्मदाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीनर्मदायै नमः

सबिन्दुसिन्धुसुस्खलत्तरङ्गभङ्गरञ्जितं
द्विषत्सु पापजातकारिवारिसंयुतम् ।
कृतान्तदूतकालभूतभीतिहारिवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ १ ॥

त्वदम्बुलीनदीनमीनदिव्यसंप्रदायकं
कलौ मलौघभारहारिसर्वतीर्थनायकम् ।
सुमत्स्यकच्छनक्रचक्रचक्रवाकशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ २ ॥

महागभीरनीरपूरपापधूतभूतलं
ध्वनत्समस्तपातकारिदारितापदाचलम् ।
जगल्लये महाभये मृकण्डुसूनुहर्म्यदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ३ ॥

गतं तदैव मे भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा
मृकण्डुसूनुशौनकासुरारिसेवि सर्वदा ।
पुनर्भवाब्धिजन्मजं भवाब्धिदुःखवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ४ ॥

अलक्षलक्षकिन्नरामरादिपुञ्जपूजितं
सुलक्षनीरतीरधीरपक्षिलक्षकूजितम् ।
वसिष्ठशिष्टपिप्पलादिकर्दमादिशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ५ ॥

सनत्कुमारनाचिकेतकश्यपात्रिषट्पदै-
र्धृतं स्वकीयमानसेषु नारदादिषट्पदैः ।
रवीन्दुरन्तिदेवराजकर्मधर्मशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ६ ॥

अलक्षलक्षलक्षपापलक्षसारसायुधं
ततस्तु जीवजन्तुतन्तुभुक्तिमुक्तिदायकम् ।
विरञ्चिविष्णुशङ्करस्वकीयधामवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ७ ॥

अहो मृतं स्वनं श्रुतं महेशकेशजाततटे
किरातसूतवाडवेषु पण्डिते शठे नटे ।
दुरन्तपापतापहारिसर्वजन्तुशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥ ८ ॥

इदं तु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव ये सदा
पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गतिं कदा ।
सुलभ्यदेहदुर्लभं महेशधामगौरवं
पुनर्भवा नरा न वै विलोकयन्ति रौरवम् ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं नर्मदाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१३७. काशीपञ्चकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीकाश्यै नमः

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः स तीर्थवर्या मणिकर्णिका च ।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा सा काशिकाहं निजबोधरूपा ॥ १ ॥
यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं चराचरं भा त मनोविलासम् ।
सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा सा काशिकाहं निजबोधरूपा ॥ २ ॥
कोशेषु पञ्चस्वधिराजमाना बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम् ।
साक्षी शिवः सर्वगणोऽन्तरात्मा सा काशिकाहं निजबोधरूपा ॥ ३ ॥
काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका ।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ॥ ४ ॥

काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगंगा
भक्तिः श्रद्धागयेयं निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः।
विश्वेशोऽयं तुरीयः सकलजनमनः साक्षिभूतोऽन्तरात्मा
देहे सर्वं यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत् किमस्ति ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं काशीपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥

१३८. प्रयागाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीप्रयागाय नमः

मुनयः ऊचुः—

सुरमुनि दितिजेन्द्रैः सेव्यते योऽस्ततन्द्रै-
र्गुरुतरदुरितानां का कथा मानवानाम्।
स भुवि सुकृतकर्तुर्वाञ्छितावाप्तिहेतु-
र्जयति विजितयागस्तीर्थराजः प्रयागः ॥ १ ॥

श्रुतिः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं पुराणमप्यत्र परं प्रमाणम्।
यत्रास्ति गंगा यमुना प्रमाणं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ २ ॥
न यत्र योगाचरणप्रतीक्षा न यत्र यज्ञेष्टि विशिष्टदीक्षा।
न तारकज्ञानगुरोरपेक्षा स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ३ ॥
चिरं निवासं न समीक्षते यो ह्युदारचित्तः प्रददाति च क्रमात्।
यः कल्पितार्थांश्च ददाति पुंसः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ४ ॥
यत्राप्लुतानां न यमो नियन्ता यत्रास्थितानां सुगतिप्रदाता।
यत्राश्रितानाममृतप्रदाता स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ५ ॥
पुर्यः सप्त प्रसिद्धाः प्रतिवचनकरीस्तीर्थराजस्य नार्यो
नैकट्यान्मुक्तिदाने भवति च सगुणा काश्यते ब्रह्म यस्याम्।
सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी मुक्तिदानेन युक्ता
येन ब्रह्माण्डमध्ये स जयति सुतरां तीर्थराजः प्रयागः ॥ ६ ॥

तीर्थावली यस्य तु कण्ठभागे दानावली वल्गति पादमूले ।
व्रतावली दक्षिणपादमूले स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ७ ॥
आज्ञाऽपि यज्ञाः प्रभवोऽपि यज्ञाः सप्तर्षिसिद्धाः सुकृतानभिज्ञाः ।
विज्ञापयन्तः सततं हि काले स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ८ ॥
सितासिते यत्र तरङ्गचामरे नद्यौ विभाते मुनि भानुकन्यके ।
लीलातपत्रं वट एव साक्षात्स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥ ९ ॥
तीर्थराजप्रयागस्य माहात्म्यं कथयिष्यतः ।
शृण्वतः सततं भक्त्या वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥ १० ॥
॥ इति श्रीमत्स्यपुराणे प्रयागराजमाहात्म्याष्टकं समाप्तम् ॥

१३९. पुष्कराष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीपुष्कराय नमः

श्रिया युतं त्रिदेहतापपापराशिनाशकं
मुनीन्द्रसिद्धसाध्यदेवदानवैरभिष्टुतम् ।
तटेऽस्ति यज्ञपर्वतस्य मुक्तिदं सुखाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशंकरम् ॥ १ ॥
सदार्यमासशुष्कपञ्चवासरे वरागतं
तदन्यथान्तरिक्षगं सुतन्त्रभावनानुगम् ।
तदम्बुपानमञ्जनं दृशां सदामृताकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशंकरम् ॥ २ ॥
त्रिपुष्कर त्रिपुष्कर त्रिपुष्करेति संस्मरेत्
सदूरदेशगोऽपि यस्तदङ्गपापनाशनम् ।
प्रपन्नदुःखभञ्जनं सुरञ्जनं सुधाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशंकरम् ॥ ३ ॥

मृकण्डुमङ्कणौ पुलस्त्यकण्वपर्वतासिता
अगस्त्यभार्गवौ दधीचिनारदौ शुक्रादयः ।
स पद्मतीर्थपावनैकदृष्टयो दयाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णव सशंकरम् ॥ ४ ॥

सदा पिता महेक्षितं वराहविष्णुनेक्षितं
तथाऽमरेशरक्षितं सुरासुरैः समीक्षितम् ।
इहैव भुक्तिमुक्तिदं प्रजाकरं धनाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशंकरम् ॥ ५ ॥

त्रिदण्डिदण्डिब्रह्मचारितापसैः सुसेवितं
पुरार्धचन्द्रप्राप्तदेवनन्दिकेश्वराभिधैः ।
सुवैद्यनाथनीलकण्ठसेवितं सुधाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशंकरम् ॥ ६ ॥

सुपञ्चधा सरस्वती विराजते यदन्तरे
तथैकयोजनायतं विभाति तीर्थनायकम् ।
अनेकदेवपैत्रतीर्थसागरं रसाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशंकरम् ॥ ७ ॥

यमादिसंयुतो नरस्त्रिपुष्करं निमज्जति
पितामहश्च माधवोऽप्युमाधवः प्रसन्नताम् ।
प्रयाति तत्पदं ददात्ययत्नतो गुणाकरं
नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशंकरम् ॥ ८ ॥

इदं हि पुष्कराष्टकं सुनीतनीरजाश्रितं
स्थितं मदीयमानसे कदापि माऽपगच्छतु ।
त्रिसन्ध्यमापठन्ति ये त्रिपुष्कराष्टकं नराः
प्रदीप्तदेहभूषणा भवन्त्युमेशकिङ्करा ॥ ९ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं श्रीपुष्कराष्टकं समाप्तम् ॥

प्रकीर्णस्तोत्राणि

१४०. आत्मपञ्चकम्

श्रीगणेशाय नमः

नाहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गं नाहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः।
दारापत्यक्षेत्रवित्तादिदूरः साक्षी नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम् ॥ १ ॥
रज्ज्वज्ञानाद्भाति रज्जुर्यथाहिः स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः।
आप्तोक्त्या हि भ्रान्तिनाशे स रज्जुर्जीवो नाहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम् ॥२॥
आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्यज्ञानानन्दरूपे विमोहात्।
निद्रामोहात्स्वप्नवत्तन्न सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम् ॥ ३ ॥
मत्तो नान्यत्किञ्चिदत्रास्ति विश्वं सत्यं बाह्यं वस्तु मायोपक्लृप्तम्।
आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं मय्यद्वैते भाति तस्माच्छिवोऽहम् ॥ ४ ॥
नाहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः।
कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहंकारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम् ॥ ५ ॥
नाहं जातो जन्ममृत्यू कुतो मे नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे।
नाहं चित्तं शोकमोहौ कुतो मे नाहं कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो मे ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितमात्मपञ्चकं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१४१. वैराग्यपञ्चकम्

श्रीगणेशाय नमः

शिलं किमनलं भवेदनलमौदरं विधातुं पयः
प्रसृतिपूरकं किमु न धारकं सारसम्।
अयत्नमलमल्पकं पथि पटच्चरं कच्चरं
भजन्ति विबुधा मुधा अहह कुक्षितः कुक्षितः ॥ १ ॥

दुरीश्वरद्वारबहिर्वितर्दिकादुरासिकायै रचितोऽयमञ्जलिः ।
यदञ्जनाभं निरपायमस्ति नो धनञ्जयस्यन्दनभूषणं धनम् ॥ २ ॥
काचाय नीचं कमनीयवाचा मोचाफलस्वादमुचा न याचे ।
दया कुचेले धनदंकुचेले स्थितेऽकुचेले श्रितमा कुचेले ॥ ३ ॥
क्षोणीकोणशतांशपालनखलद्दुर्वारगर्वानल-
क्षुभ्यत्क्षुद्रनरेन्द्रचाटुरचना धन्या न मन्यामहे ।
देवं सेवितुमेव निश्चिनुमहे योऽसौ दयालुः पुरा
धानामुष्टिमुचे कुचेलमुनये धत्तेस्म वित्तेशताम् ॥ ४ ॥

शरीरपतनावधि प्रभुनिषेवणापादना-
दविन्धनधनञ्जयप्रशमदं धनं दन्धनम् ।
धनञ्जयविवर्धनं धनमुदूढगोवर्धनं
सुसाधनमबाधनं सुमनसां समाराधनम् ॥ ५ ॥

॥ इति श्रीसर्वतन्त्रस्वतन्त्रवेदान्तदेशिकाचार्यकृतं
वैराग्यपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥

१४२. द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥ १ ॥
अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥ २ ॥
का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः ॥ ३ ॥
मा कुरु जनधनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥ ४ ॥

कामं क्रोध मोहं लोभं त्यक्त्वात्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥ ५ ॥
सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः ।
सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥ ६ ॥
शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।
भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥ ७ ॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि मय्यसहिष्णुः ।
सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम् ॥ ८ ॥
प्राणायामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम् ।
जाप्यसमेतसमाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम् ॥ ९ ॥
नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥ १० ॥
का तेऽष्टादशदेशे चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता ।
यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम् ॥ ११ ॥
गुरुचरणाम्बुजनिर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः ।
सेन्द्रियमानसनियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ॥ १२ ॥
द्वादश पञ्जरिकामय एष शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः ।
येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम् ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीद्वादशपञ्जरिकास्तोत्रं समाप्तम् ॥

१४३. चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ १ ॥

सम्प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे ।
अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः ॥
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ २ ॥

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्तः ।
पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ३ ॥

जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि च न पश्यति मूढ उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ४ ॥

भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजललवकणिका पीता ।
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम् ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ५ ॥

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ६ ॥

बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः तस्मिन् ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ७ ॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे बहुदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ८ ॥

पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ।
पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ॥ ९ ॥

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः।
नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १०॥

नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम्।
एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारं वारम्॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ ११॥

कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम्॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १२॥

गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम्।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम्॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते। १३॥

यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत्पृच्छति गेहे।
गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १४॥

सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः।
यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम्॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १५॥

रथ्याकर्पटविरचितकन्थः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः।
नाहं न त्वं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १६॥

कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहीने सर्वमनेन मुक्तिर्भवति न जन्मशतेन॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते॥ १७॥

॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितचर्पटपञ्जरिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

१४४. दक्षिणामूर्त्यष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः श्रीदक्षिणामूर्त्तये नमः

श्रीमद्गुरो निखिलवेदशिरोनिगूढ-
ब्रह्मात्मबोधसुखसान्द्रतनो महात्मन् ।
श्रीकान्तवाक्पतिमुखाखिलदेवसङ्घ-
स्वात्मावबोधक परेश नमो नमस्ते ॥ १ ॥

सान्निध्यमात्रमुपलभ्य समस्तमेत-
दाभाति यस्य जगदत्र चराचरं च ।
चिन्मात्रतां निजकराङ्गुलिमुद्रया यस-
स्वस्यानिशं वदति नाथ नमो नमस्ते ॥ २ ॥

जीवेश्वराद्यखिलमत्र विकारजातं
जातं यतस्स्थितमनन्तसुखे च यस्मिन् ।
येनोपसंहृतमखण्डचिदेकशक्त्या
स्वाभिन्नयैव जगदीश नमो नमस्ते ॥ ३ ॥

यस्स्वांशजीवसुखदुःखफलोपभोग-
हेतोर्वपूंषि विविधानि च भौतिकानि ।
निर्माय तत्र विशता करणैस्सहान्ते
जीवेन साक्ष्यमत एव नमो नमस्ते ॥ ४ ॥

हृत्पुण्डरीकगतचिन्मणिमात्मरूपं
यस्मिन् समर्पयति योगबलेन विद्वान् ।
यः पूर्णबोधसुखलक्षण एकरूप
आकाशवद्विभुरुमेश नमो नमस्ते ॥ ५ ॥

यन्मायया हरिहरद्रुहिणा बभूवु-
स्सृष्ट्यादिकारिण इमे जगतामधीशाः ।

यद्विद्ययैव परयात्र हि वश्यमाया
स्थैर्यं गता गुरुवरेश नमो नमस्ते ॥ ६ ॥

स्त्रीपुंनपुंसकसमाह्वयलिङ्गहीनो-
प्यास्ते त्रिलिङ्गक उमेशतया य एव ।
सत्यप्रबोधसुखरूपतया स्वरूप-
वत्वेन च त्रिजगदीश नमो नमस्ते ॥ ७ ॥

जीवत्रयं भ्रमति वै यदविद्ययैव
संसारचक्र इह दुस्तरदुःखहेतौ ।
यद्विद्ययैव निजबोधरतं स्ववश्या
विद्यं च तद्भवति साम्ब नमो नमस्ते ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीज्ञानवासिष्ठे ज्ञानकाण्डे द्वितीयपादे प्रथमाध्याये
व्यासकृतदक्षिणामूर्त्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥

१४५. दक्षिणामूर्तिभुजङ्गस्तवः

श्रीगणेशाय नमः श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

महामोहनाम्ना निदाघेन भूयः प्रतप्ता मुनीन्द्रा यमीशं निदध्युः ।
तमोङ्कारगम्यं त्रिलोकाभिरामं भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ १ ॥
श्रयन्तं वटाधःप्रदेशं मुनीनां महाभक्तिभाजां चिरप्रार्थितेन ।
नमस्कारपात्रं सुधागौरगात्रं भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ २ ॥
स्मितज्योत्स्नया सुप्रसन्नाननेन्दुप्रसूत्या मुनीनां मनःकैरवाणि ।
समुन्मीलयन्तं यदूर्ध्वं भजन्तं भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ ३ ॥
समासादितुं तत्त्वमस्यादिबोधं यमीन्द्रेषु साधूपविष्टेषु सत्सु ।
मुनीनां हि भावं समाश्रित्य सन्तं भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ ४ ॥
तमस्काण्डबालारुणं संयमीन्द्रं यथापश्यतामस्फुरद्ब्रह्मतत्त्वम् ।
तथा स्फूर्तिमस्य प्रदातुं च मह्यं भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ ५ ॥

घटं चापि तां मौक्तिकीमक्षमालां मुदा ज्ञानमुद्रां च विद्यां कराब्जैः ।
दधानं सुमेधां विधातुं महेशं भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ ६ ॥

नयत्यच्छमूर्तिः प्रबोधं सतां यो हृदिन्दीवरालिं सदा चन्द्रमौलिः ।
स्फुटं प्रज्ञया मन्मनः कुर्वितेमे भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ ७ ॥

यदालोकमात्रप्रशान्तानुतापा मुनीन्द्रा यदानन्दमास्थाय तस्थुः ।
प्रयच्छ प्रभो मे तमित्यञ्जसा तं भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ ८ ॥

जटासूद्वहन्तं कलाशेषमिन्दुं भुजामूलभागे भुजङ्गाधिनाथम् ।
ललाटे च तं स्वाहया दारवन्तं भजे दक्षिणामूर्तिमाचार्यवर्यम् ॥ ९ ॥

भुजङ्गैरिव स्वं भुजङ्गप्रयातैर्विभूष्यात्मभवतं सदा नन्दिहानम् ।
यशस्कामुकानां प्रवाग्भिः कवीनां मतं सत्यगीतं किमु ब्रूहि शम्भो ॥१०॥

॥ इति कविशिरोमणिजयन्तिसूर्यनारायणमनीषिविरचितं
दक्षिणामूर्तिभुजङ्गस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

१४६. तीक्ष्णदंष्ट्रकालभैरवाष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः कालभैरवाय नमः

ॐ यंयंयं यक्षरूपं दशदिशिविदितं भूमिकम्पायमानं
संसंसं संहारमूर्तिं शिरमुकुटजटाशेखरं चन्द्रबिम्बम् ।
दंदंदं दीर्घकायं विकृतनखमुखं ह्यूर्ध्वरोमं करालं
पंपंपं पापनाशं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥ १ ॥

रंरंरं रक्तवर्णं कटकटिततनुं तीक्ष्णदंष्ट्राकरालं
घंघंघं घोषघोषं घघघघघटितं घर्घरं घोरनादम् ।
कंकंकं कालपाशं धृकधृकधृकितं ज्वालितं कामदाहं
तंतंतं दिव्यदेहं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥ २ ॥

लंलंलं वदन्तं लललललितं दीर्घजिह्वाकरालं
घुंघुंघु धूम्रवर्णं स्फुट विकटमुखं भास्करं भीमरूपम् ।
रुंरुंरुं रुण्डमालं रवितमनियतं ताम्रनेत्रं करालं
नंनंनं नग्नरूपं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥ ३ ॥

वंवंवं वायुवेगं नतजनदयिनं ब्रह्मपारं परं तं
खंखंखं खड्गहस्तं त्रिभुवननिलयं भास्करं भीमरूपम् ।
चंचंचं चलित्वा चलचलचलिताच्चालितं भूमिचक्रं
मंमंमं मायिरूपं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥ ४ ॥

शंशंशं शङ्खहस्तं शशिकरधवलं मोक्षसम्पूर्णतेजं
मंमं मंमं महान्तं कुलमकुलकुलं मन्त्रगुप्तं सुनित्यम् ।
यंयंयं भूतनाथं किलिकिलिकिलितं बालकेलिप्रधानं
अंअंअं ह्यन्तरिक्षं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥ ५ ॥

खंखंखं खड्गभेदं विषममृतमयं कालकालं करालं
क्षंक्षंक्षं क्षिप्रवेगं दहदहदहनं तप्तसन्दीप्यमानम् ।
हौंहौं हौंकारनादं प्रकटितगहनं गर्जितैर्भूमिकम्पं
वंवंवं बाललीलं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥ ६ ॥

संसंसं सिद्धियोगं सकलगुणघनं देवदेवं प्रसन्नं
पंपंपं पद्मनाभं हरिहरमयनं चन्द्रसूर्याग्निनेत्रम् ।
ऐंऐं ऐश्वर्यनाथं सततभयहरं पूर्वदेवस्वरूपं
रौंरौंरौं रौद्ररूपं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥ ७ ॥

हंहंहं हंसहासं हसितकलहकं मुक्तयोगाट्टहासं
घंघंघं नेत्ररूपं शिरमुकुटजटाबन्धबन्धाग्रहस्तम् ।
टंटं टङ्कारनादं त्रिदशलटलटं कामगर्वापहारं
भृंभृंभृं (भूंभूंभूं) भूतनाथं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥८॥

इत्येवं कामयुक्तं प्रपठति नियतं चाष्टकं भैरवस्य
निर्विघ्नं दुःखनाशं सुरभयहरणं डाकिनीशाकिनीनाम् ।

नश्येद्धि व्याघ्रसर्पं वहवहसलिले राज्यशं सस्यशून्यं
सर्वा नश्यन्ति दूरं विपद इति भृशं चिन्तनात्सर्वसिद्धम् ॥ ९ ॥

भैरवस्याष्टकमिदं षण्मासं यः पठेन्नरः ।
स याति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ १० ॥

सिन्दूरारुणगात्रं च सर्वजन्मविनिर्मितम् ।
मुकुटाग्रचधरं देवं भैरवं प्रणमाम्यहम् ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीतीक्ष्णदंष्ट्रकालभैरवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥



वैदिकसूक्तानि

१४७. पुरुषसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरि ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्व्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
पुरुषऽएवेदं सर्व्वं य्यद्भूतं य्यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥
एतावानस्य महिमातो ज्ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य व्विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
त्रिपादूर्द्ध्व ऽउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो व्विष्वङ् व्यक्क्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥ ४ ॥
ततो व्विराडजायत व्विराजो ऽअधिपूरुषः ।
स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥
तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्क्रे व्वायव्व्यानारण्ण्या ग्ग्राम्म्याश्च ये ॥६॥
तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतःऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥
तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्म्मात्तस्म्माज्जाताऽअजावय ॥८॥
तं य्यज्ञं बर्हिषि प्प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा ऽअयजन्त साद्ध्याऽ ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥
यत्पुरुषं व्व्यदधुः कतिधा व्व्यकल्प्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा ऽउच्येते ॥१०॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो ऽअजायत ॥ ११ ॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो; सूर्यो ऽअजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥
नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन् ।
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मःशरद्धविः ॥ ४ ॥
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽअबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि
धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥ हरिः ॐ ॥
॥ इति यजुर्वेदोक्तं पुरुषसूक्तं समाप्तम् ॥

१४८. रुद्रसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतो त ऽइषवे नमः ।
बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥
या ते रुद्रशिवा तनूरघोरा ऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥२॥
यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवाङ्गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाऽच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मसुमनाऽअसत् ॥ ४ ॥

अद्ध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्व्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च
यातुधान्न्यो ऽधराचीः परासुव ॥ ५ ॥

असौ यस्ताम्म्रो ऽअरुण ऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनं रुद्द्रा ऽअभितो दिक्षु श्रिताः
सहस्रशोऽ वैषां हेड ऽईमहे ॥ ६ ॥

असौ योऽवसर्प्पति नीलग्ग्रीवो व्विलोहितः ।
उतैनं गोपाऽअदृश्श्रन्नदृशन्नुदहार्य्यः
स दृष्ट्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥

नमोऽस्तु नीलग्ग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये ऽअस्य सत्त्वानोऽहन्तेब्भ्यो ऽकरन्नमः ॥ ८ ॥

प्रमुञ्च धन्न्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्ज्याम् ।
याश्च ते हस्तऽइषवः परा ता भगवो व्वप ॥ ९ ॥

व्विज्ज्यं धनुः कपर्द्दिनो व्विशल्ल्यो बाणवाँ२ऽउत ।
अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥

या ते हेतिर्म्मीढुष्ट्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयाऽस्म्मान्न्विश्श्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥ ११ ॥

परि ते धन्न्वनो हेतिरस्मान्न्वृणक्क्तु व्विश्श्वतः ।
अथो यऽइषुधिस्तवारेऽस्म्मन्निधेहि तम् ॥ १२ ॥

अवतत्त्य धनुष्ट्वं सहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य्यशल्ल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥

नमस्तऽआयुधायानातताय धृष्ष्णवे ।
उभाब्भ्यामुत ते नमो बाहुब्भ्यां तव धन्न्वने ॥ १४ ॥

मा नो महान्तमुत मा नोऽअर्ब्भकं
मा न ऽउक्षन्तमुत मा न ऽउक्षितम् ।

मा नो व्वधीः पितरं मोत मातरं मानः
प्प्रियास्तन्न्वो रुद्द्र रीरिषः ॥ १५ ॥
मा नस्तोके तनये मा न ऽआयुषि
मा नो गोषु मा नो ऽअश्श्वेषु रीरिषः।
मा नो व्वीरान् रुद्द्र भामिनो व्वधी-
र्हविष्म्मन्न्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ १६ ॥ हरिः ॐ ॥
॥ इति यजुर्वेदोक्तं रुद्रसूक्तं समाप्तम् ॥

१४९. श्रीसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरि ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥ १ ॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ ३ ॥
कां सोऽस्मितां हिरण्यप्राकारा-
मार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां
तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मनेमिं शरणं प्रपद्येऽ
अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
मायान्तरा याश्च बाह्याऽ अलक्ष्मीः ॥ ६ ॥

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतः सुराष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ८ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥ १० ॥

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव (संम्भ्रम ?) कर्दम !।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥ ११ ॥

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥ १२ ॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽ आवह ॥ १३ ॥

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽ आवह ॥ १४ ॥
तां मऽ आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतिं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम् ॥१५॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं (श्रियः) पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६॥

॥ हरिः ॐ ॥

॥ इति श्रीसूक्तं समाप्तम् ॥

१५०. लक्ष्मीसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरि ॐ सरसिज-निलये सरोजहस्ते
धवलतरांशुक-गन्धमाल्य-शोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे !
त्रिभुवन-भूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥ १ ॥

धनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमश्विना ॥ २ ॥
वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥ ३ ॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां सूक्तजापिनाम् ॥ ४ ॥
पद्मानने पद्मऊरु पद्माक्षि पद्मसम्भवे ।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥ ५ ॥
[क्षे०—अश्वदायी गोदायी धनदायी महाधने ।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामाँश्च देहि मे ॥
पुत्रं पौत्रं धनं धान्यं हस्त्यश्चादि-गवेरथम् ।
प्रजानां भवसि (ति) माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥]
विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियाम् ।
विष्णुप्रियां सखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥ ६ ॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ ७ ॥

पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विश्वमनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि सन्निधत्स्व ॥८॥
आनन्दः कर्दमश्चैव चिक्लीत इति विश्रुताः ।
ऋषयस्ते त्रयः प्रोक्ताः स्वयं श्रीरेव देवताः ॥ ९ ॥

ऋण-रोगादि-दारिद्र्यं पापं च अपमृत्यवः ।
भय-शोक-मनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥ १० ॥
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्य-
माविधाच्छोभमानं (पवमानं) महीयते ।
धान्यं धनं पशुं बहुपुत्रलाभं
शतसंवत्सरं (जीवितं) दीर्घमायुः ॥ ११ ॥
॥ इति लक्ष्मीसूक्तं समाप्तम् ॥

१५१. ऋग्वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरि ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः ।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥ १ ॥
ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः ।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते तमः ॥ ३ ॥
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि ।
वृक्षे न वसतिं वयः ॥ ४ ॥
नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः ।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥ ५ ॥
यावया वृक्यं वृकं यवय स्तनेमूर्म्ये ।
अथा नः सुतरा भव ॥ ६ ॥
उप मा पेपिशत् तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उष ऋणेवयातय ॥ ७ ॥
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥ ८ ॥ हरिः ॐ ॥
॥ इति ऋग्वेदोक्तं रात्रिसूक्तं समाप्तम् ॥

१५२. ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥ १ ॥
अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ ४ ॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ ६ ॥
अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानुविश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥ ७ ॥
अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवापर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥ ८ ॥ हरिः ॐ॥
॥ इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम् ॥

१५३. (यजुर्वेदोक्तं) देवीसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ देवीरापः शुद्धा वोढ्वं सुपरिविष्टा।
देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १ ॥
देवीरापो अपानपाद्यो व ऽऊर्म्मिर्हविष्य ऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः।
तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ॥ २ ॥

देवीराप एष वो गर्भस्तं सुप्रीतं सुभृतं बिभृत।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छं च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ ३ ॥

देवीर्द्वारो ऽअश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती। प्राणं न वीर्यं
नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४ ॥

देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमास्य
उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५ ॥

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्द्धयन्। श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो
जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ६ ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः।
शुक्रं न ज्योतिस्तनयोराहुती धत्त इन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य
व्यन्तु यज ॥ ७ ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती। शूषं न मध्ये
नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ८ ॥

देवीर्द्वार ऽइन्द्रं संघाते वीड्वीर्यामन्नवर्द्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन
कुमारेण च मीवतापार्वाणं रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य
व्यन्तु यज ॥ ९ ॥

देवीऽउषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्। दैवीर्विशः
प्रायासिष्टां सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १० ॥

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। अयाव्यन्याघाद्द्वेषांस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने
वसुधेयस्य वीता यज ॥ ११ ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम्। इषमूर्ज्जमन्या
वक्षत्सग्धिं सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधाताम् ऊर्जमूर्जाहुती ऽऊर्ज्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय
शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १२ ॥

देवीरितस्त्ररितस्रो देवी पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् । अस्पृक्षद्भारती दिवं रुद्रैर्य्यज्ञं सरस्वतीडा व्वसुमती गृहान्व्वसुवने व्वसुधेयस्य
व्व्यन्तु य्यज ।। १३ ।।

देवीद्वारी व्वयोधसं शुचिमिन्द्रमवर्द्धयन् । उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे व्वयो दधद्वसुवने व्वसुधेयस्य व्व्यन्तु यज ।। १४ ।।

देवीऽउषासानक्ता देवमिन्द्रं व्वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम् । अनष्टुभा छन्दसेन्द्रियं बलमिन्द्रे व्वयो दधद्वसुवने व्वसुधेयस्य
व्वीता यज ।। १५ ।।

देवी जोष्ट्री व्वसुधिती देवमिन्द्र व्वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम् । बृहत्या च्छन्दसेन्द्रियं श्रोत्रमिन्द्रे व्वयो दधद्वसुवने व्वसुधेयस्य
व्वीतां यज ।। १६ ।।

देवीऽऊर्ज्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं व्वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम् । पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियं शुक्रमिन्द्रे व्वयो दधद्वसुवने व्वसुधेयस्य
वीतां यज ।। १७ ।।

देवीस्तिस्त्ररितस्रो देवीर्व्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् । जगत्या छन्दसेन्द्रियं शूषमिन्द्रे व्वयो दधद्वसुवने व्वसुधेयस्य व्व्यन्तु
यज ।। १८ ।।

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राद्ध्यासं देवयजने
पृथिव्व्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।। १९ ।।

देव्यो वम्म्रयो भूतस्य प्प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राद्ध्यासं देवयजने पृथिव्व्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।। २० ।। हरिः ॐ ।।

।। इति वैदिकं देवीसूक्तं समाप्तम् ।।

१५४. ऋग्वेदोक्तं विष्णुसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो ऽअस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो व्विष्णवे त्वा ॥ १ ॥
प्रतद्विष्णुस्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा । २ ॥
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः । ३ ॥
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६॥ हरिः ॐ ॥

॥ इति ऋग्वेदोक्तं विष्णुसूक्तं समाप्तम् ॥

विष्णुमहिम्नो द्वौ मन्त्रौ

हरिः ॐ विष्णो रराटमसि विष्णो श्नप्त्रेस्थो विष्णो
स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ १ ॥
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ॥ २ ॥

१५५. ऋग्वेदोक्तं हिरण्यगर्भसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥
यः आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥
यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥
यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥
आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१० ॥हरिः ॐ

॥ इति ऋग्वेदोक्तं हिरण्यगर्भसूक्तं समाप्तम् ॥

१५६. ब्रह्मसूक्तम्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ १ ॥
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति अमृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ २ ॥
ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयं सुधातु दक्षिणम् ।
अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमा विशत ॥ ३ ॥

ब्रह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरिताद्दृतावृधो रक्षा माकिनो अघशंस ईशत ॥ ४ ॥
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवाः बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।
य इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पिताऽन्नपतेऽन्नस्य नो धेहि ॥ ५ ॥
ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियं सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय ।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ६ ॥
ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे
तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाय अयोगूं
कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ७ ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ८ ॥ हरिः ॐ ।

॥ इति ब्रह्मसूक्तं समाप्तम् ॥

१५७. नारायणसूक्तम् (नारायणोपनिषत्)

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ सहस्रशीर्षं देवं विश्वाक्षं विश्वशंभुवम् ।
विश्वं नारायणं देवमक्षरं परमं पदम् ॥
विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम् ।
विश्वमेवेदं पुरुषस्तद्विश्वमुपजीवति ॥
पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् ।
नारायणं महाज्ञेयं विश्वात्मानं परायणम् ॥
नारायणपरो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः ॥
नारायणपरो ध्याता ध्यानं नारायणः परः ।
यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ १ ॥

अनन्तमव्ययं कविं समुद्रेऽन्तं विश्वंशं भुवम् ।
पद्मकोषप्रतीकाशं हृदयं चाऽप्यधोमुखम् ॥
अधोनिष्ठया वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति ।
हृदयं तद् विजानीयाद् विश्वस्यायतनं महत् ॥
सन्ततं च शिराभिस्तु लम्बत्याकोशसन्निभम् ।
तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
तस्य मध्ये महानग्निर्विश्वार्चिर्विश्वतो मुखः ।
सोऽग्रभुग् विभजन् तिष्ठन्नाहारमजरः कविः ॥
तिर्यगूर्ध्वमधःशायी रश्मयस्तस्य सन्तताः ।
सन्तापयति स्वं देहमापादतलमस्तकः ॥
तस्य मध्ये वह्निशिखा अणीयोर्ध्वा व्यवस्थितः ॥ २ ॥

नील - तोयद - मध्यस्थाद् विद्युल्लेखेव भास्वरा ।
नीवार - शूकवत्तन्वी पीता भास्वत्यणूपमा ॥
तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ।
स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट् ॥३॥

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपाय वै नमः ॥ ४ ॥

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ ५ ॥ हरिः ॐ ॥

॥ इति नारायणसूक्तं समाप्तम् ॥

उपनिषदः

१५८. ईशावास्योपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १ ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति शान्तिपाठः ।
हरिः ॐ ॥ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १ ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥
असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥
अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥
यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥
स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्-
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥ ९ ॥
अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं स ह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ ११ ॥
अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः ॥ १२ ॥
अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥
संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४ ॥
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १५ ॥
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि
योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥ १७ ॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥१८॥ हरिः ॐ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति शान्तिपाठः ।
॥ इति वाजसनेयसंहितायामीशावास्योपनिषत्सम्पूर्णा ॥

१५९. केनोपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ ॥ ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्मनिराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणमस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति शान्तिपाठः ॥

हरिः ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः । केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥ श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य । प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥ न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥ यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥ यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥ यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ७ ॥ यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ८ ॥

॥ इति केनोपनिषत्सु प्रथमः खण्डः ॥

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् । यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥९॥
नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥ १० ॥

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ ११ ॥
प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥ १२ ॥
इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ १३ ॥

॥ इति द्वितीय खण्डः ॥

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १४।१ ॥ तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥ १५।२ ॥ तेऽग्निमब्रुवन्जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ १६।३ ॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥१७।४॥ यस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ १८।५ ॥ तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुप प्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातं यदेतद्यक्षमिति ॥ १९।६ ॥ अथ वायुमब्रुवन्वायवेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ २०।७ ॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ २१।८ ॥ तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वमाददीय यदिदं पृथव्यामिति ॥ २२।९ ॥ तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति उप प्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुम्। सतत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३।१० ॥ अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति। तथेति। तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४।११ ॥ स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं तां होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥ २५।१२ ॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २६।१ ॥ तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान्यदग्निर्वायुरिन्द्रस्तेह्येनं नेदिष्टं पस्पर्शुस्ते ह्येनन्नेदिष्टं पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २७।२ ॥ तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्टं पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २८।३ ॥ तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा ३ इतीन्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम् ॥ २९ । ४ ॥ अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ॥ ३०।५ ॥ तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदोऽभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥ ३१।६ ॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता य उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ३२ ॥ ७ ॥ तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ३३ ॥ ८ ॥ यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ३४ । ९ ॥ ॥ हरिः ॐ ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणं मेऽस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥ हरिः ॐ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति शान्तिपाठः ॥

॥ इति सामवेदीयकेनोपनिषत्समाप्ता ॥

१६०. माण्डूक्योपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ॥ ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिः। व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ इति शान्तिपाठः।

हरिः ॐ॥ ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥ १॥

सर्वं ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्॥ २॥

जागरितस्थानो बहिः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः॥ ३॥

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः॥ ४॥

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः॥ ५॥

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्॥ ६॥

नान्तःप्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः॥ ७॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥ ८॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्तर्ति समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ १० ॥
सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥
अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥१२॥ हरिः ॐ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः । भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिः । व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः । स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः । स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ हरिः ॐ

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति शान्तिपाठः ।

॥ इति माण्डूक्योपनिषत्समाप्ता ॥

१६१. कैवल्योपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

हरिः ॐ । ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति शान्तिपाठः ।

हरि ॐ । ॐ अश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनमुपसमेत्योवाच ।
अधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां सदा सद्भिः सेव्यमानां निगूढाम् ।
यया चिरात् सर्वपापं व्यपोह्य परात्परं पुरुषं याति विद्वान् ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच पितामहश्च श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि ॥ २ ।
न कर्मणा न प्रजया धनेन, त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशुः ।
परेण नाकं निहितं गुहायां, विभ्राजते यद् यतयो विशन्ति ॥३॥
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः, संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले, परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ४ ॥
विविक्तदेशे च सुखासनस्थः, शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः :
अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि, निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य ।.५ ॥
हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं, विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं, शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम् ॥ ६ ॥
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं, विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् ।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं, त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं, समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥७॥
स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥ ८ ॥
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ॥ ९ ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
संपश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ॥ १० ॥
आत्मानमरणिं कृत्वा प्रवणं चोत्तरारणिम् ।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात् पापं दहति पण्डितः ॥ ११ ॥
स एव मायापरिमोहितात्मा, शरीरमास्थाय करोति सर्वम् ।
स्त्रियन्नपानादिविचित्रभोगैः स एव जाग्रत् परितृप्तिमेति ।।१२ ॥
स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता स्वमायया कल्पितजीवलोके ।
सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोभिभूतः सुखरूपमेति ॥ १३ ॥
पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात् स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः ।
पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवस्ततः सुजातं सकलं विचित्रम् ॥
आधारमानन्दमखण्डबोधं यस्मिन् लयं याति पुरत्रयं च ॥ १४ ॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ।। १५ ।।
यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ।। १६ ।।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चं यत् प्रकाशते ।
तद् ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ।। १७ ।।
त्रिषु धामसु यद् भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद् भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ।। १८ ।।
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मयि सर्वं लयं याति तद् ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ।। १९ ।।
अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमहं विचित्रम् ।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ।। २० ।।
अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः ।
अहं विजानामि विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ।।२१।।
वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् ।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्मदेहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ।।२२।।
न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च ।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ।। २३ ।।

।। इति कैवल्योपनिषदि प्रथमोः खण्डः ।।

समस्तसाक्षि सदसद्विहीनं प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ।।
यः शतरुद्रीयमधीते सोऽग्निपूतो भवति, स वायुपूतो भवति, स आत्मपूतो भवति, स सुरापानात्पूतो भवति, स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति, स सुवर्णस्तेयात् पूतो भवति, स कृत्याकृत्यात् पूतो भवति । तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवत्यत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेत् । अनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णवनाशनम् । तस्मादेवं विदित्वैनं कैवल्य पदमश्नुते कैवल्यं पदमश्नुत इति ।। २४ ।।

। हरिः ॐ ।। सह नाववत्विति शान्तिपाठः ।।

।। इति कैवल्योपनिषदि द्वितीयो खण्डः ।। २ ।।

१६२. गणपत्युपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति, स्वस्ति न इति, सह नाववत्विति शान्तिपाठः।

॥ हरिः ॐ ॥ ॐ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव केवलं सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम् ॥ १ ॥ ऋतं वच्मि। सत्यं वच्मि ॥ २ ॥ अव त्वं माम्। अव वक्तारम्। अव श्रोतारम् अव दातारम्। अव धातारम्। अवानूचानमव शिष्यम्। अव पश्चात्तात्। अव पुरस्तात्। अवोत्तरात्तात्। अव दक्षिणात्तात्। अव चोर्ध्वात्तात्। अवाधरात्तात्। सर्वतो मां पाहि पाहि समान्तात् ॥ ३ ॥ त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः। त्वमानन्दमयस्त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्दाद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि ॥ ४ ॥ सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिरापोऽनलोऽनिलो नभः। त्वं चत्वारि वाक्पदानि ॥ ५ ॥ त्वं गुणत्रयातीतः। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्। त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् ॥६॥ गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः। अर्धेन्दुलसितम्। तारेण रुद्धम्। एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुरुत्तररूपम्। नादः संधानम्। संहिता सन्धिः। सैषा गणेशविद्या। गणक ऋषिः। निचृद्गायत्री छन्दः। गणपतिर्देवता। ॐगं गणपतये नमः (इति मन्त्रः)॥७॥ एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥८॥

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
अभयं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणंमूषकध्वजम्।
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्॥
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्।
भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्॥
आविर्भूतं च सृष्ट्यादौ प्रकृतेः पुरुषात्परम्॥
एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः॥९॥

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्ते ऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥१०॥ एतदथर्वशीरो योऽधीते स ब्रह्मभूयाय कल्पते। स सर्वतः सुखमेधते। स सर्वविघ्नैर्न बाध्यते॥ स पञ्चमहापापात्प्रमुच्यते॥ सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायंप्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। सर्वत्राधीयानोऽपविघ्नो भवति। धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति। इदमथर्वशीर्षमशिष्याय न देयम्। यो यदि मोहाद्दास्यति। स पापीयान् भवति। सहस्रावर्तनात् यं यं काममधीते तं तमनेन साधयेत्॥ ११॥ अनेन गणपतिमभिषिञ्चति स वाग्मी भवति॥ चतुर्थ्यामनश्नन् जपति स विद्यावान्भवति॥ इत्यथर्वणवाक्यम्। ब्रह्माद्याचरणं विद्यात्। न बिभेति कदाचनेति॥१२॥ यो दूर्वाङ्कुरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजैर्यजति स यशोवान्भवति। स मेधावान्भवति। यो मोदकसहस्रेण यजति स वाञ्छितफलमवाप्नोति। यः साज्यसमिद्भिर्यजति स सर्वं लभते। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग्ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति। सूर्यग्रहे महानद्यां प्रतिमासन्निधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति। महाविघ्नात्प्रमुच्यते। महादोषात्प्रमुच्यते। महापापात्प्रमुच्यते। सर्वविद्भवति। य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥ १३॥ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विना-

दधीतमस्तु मा विद्विषावहै। भद्रं कर्णेभिरिति। स्वस्तिन इन्द्रो० इति शान्ति पाठः॥ हरिः ॐ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ इति गणेशाथर्वशीर्षगणपत्युपनिषत् समाप्तम्॥

१६३. देव्यथर्वशीर्षम्

श्रीगणेशाय नमः

पूर्णमदः पूर्णमिदमित्यादि शान्ति पाठः

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति साऽब्रवीदहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च। अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी। (द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये।) अहं पंचभूतान्यपञ्चभूतानि। (अहं पंचतन्मात्राणि।) अहमखिलं जगत्। वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम् अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्। अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ। अहं सोमं त्वष्टारं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमम्। ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि। अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद स दैवीं संपदमाप्नोति। ते देवा अब्रुवन्।

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गांदेवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु॥
कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कंदमातरम्।

सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम् ।
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि ।
तन्नो देवी प्रचोदयात् ।
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥

कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्यैषा विश्वमाता दिविद्योम् ॥
एषात्मशक्तिः । एषा विश्वमोहिनी पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा ।
एषा श्रीमहाविद्या । य एवं वेद स शोकं तरति ॥ १५ ॥
नमस्ते भगवति मातरस्मान्पाहि सर्वतः ॥ १६ ॥
सैषाऽष्टौ वसवः, सैवैकादश रुद्राः, सैषा द्वादशादित्याः, सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च, सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचयक्षसिद्धाः । सैषा सत्त्वरजस्तमांसि, सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी, सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः, सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतिःकलाकाष्ठादिविश्वरूपिणी, तामहं प्रणौमि नित्यम् ।
पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ १७ ॥

अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां सर्वदां शिवाम् ।
वियदाकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम् ।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् ॥ १८ ॥

एवमेकाक्षरं मन्त्रं यतयः शुद्धचेतसः ।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः ॥ १९ ॥

वाङ्मया ब्रह्मभूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम् ।
सूर्यो वामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्ताष्टतृतीयकम् ।
नारायणेन सम्मिश्रो वायुश्चाधारयुक् ततः ।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः महदानन्ददायकः ।

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम्।
पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्॥ २०॥
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे॥ २१॥
भजामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनि।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥ २२॥
यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया।
यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता।
यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यतेअलक्ष्या।
यस्या जननं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अजा।
एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यत एका।
एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका।
अत एवोच्यतेऽज्ञेयाऽनन्ताऽलक्ष्याऽजैका नैकेति॥ २३॥
मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता (चिन्मयनन्दा) शून्यानां शून्यसाक्षिणी॥
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥ २४॥
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्॥ २५॥
इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाशदथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति।
इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति।
शतलक्षं जप्त्वापि नार्चासिद्धिं च विन्दति।
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
दशवारं पठेद्यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः॥ २६॥
सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति।
प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति।
सायंप्रातः प्रयुञ्जानोऽपापो भवति।
निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति।

नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासान्निध्यं भवति। भौमाश्विन्यां महादेवीसन्निधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति स महामृत्युं तरति। य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥

पूर्णमदः पूर्णमित्यादि शान्ति पाठः॥ हरिः ॐ॥

॥ इति देव्यथर्वशीर्षं सम्पूर्णम्॥

१६४. सूर्योपनिषत्

॥ हरि ॐ॥

सूदितस्वातिरिक्तारिसूरिनन्दात्मभावितम्।
सूर्यनारायणाकारं नौमि चित्सूर्यवैभवम्॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः।

हरिः ॐ। अथ सूर्याथर्वाङ्गिरसं व्याख्यास्यामः। ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। आदित्यो देवता। हंसः सोऽमग्नि-नारायणयुक्तं बीजम्। हृल्लेखा शक्तिः। वियदादि-सर्गसंयुक्तं कीलकम्। चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। षट्स्वरारूढेन बीजेन षडङ्गं रक्ताम्बुजसंस्थितम्। सप्ताश्वरथिनं हिरण्यवर्णं चतुर्भुजं पद्मद्वयाभयवरदहस्तं कालचक्रप्रणेतारं श्रीसूर्यनारायणं य एवं वेद स वै ब्राह्मणः ॐ भूर्भुवः सुवः (स्वः)। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते। सूर्याद्यज्ञः पर्जन्योऽन्नमात्मा नमस्त आदित्य। त्वमेव प्रत्यक्षं कर्मकर्तासि। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वमेव प्रत्यक्षं विष्णुरसि। त्वमेव प्रत्यक्षं रुद्रोऽसि। त्वमेव प्रत्यक्षमृगसि।

त्वमेव प्रत्यक्षं यजुरसि। त्वमेव प्रत्यक्षं सामासि। त्वमेव प्रत्यक्षमथर्वासि। त्वमेव सर्वं छन्दोऽसि। आदित्याद्वायुर्जायते। आदित्याद्भूमिर्जायते। आदित्यादापो जायन्ते। आदित्याज्ज्योतिर्जायते। आदित्याद्व्योम दिशो जायन्ते। आदित्याद्देवा जायन्ते। आदित्याद्वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति। असावादित्यो ब्रह्म। आदित्योऽन्तःकरणमनोबुद्धिचित्ताहंकाराः। आदित्यो वै व्यानः समानोदानोऽपानः प्राणः। आदित्यो वै श्रोत्रत्वक्चक्षूरसनघ्राणाः। आदित्यो वै वाक्पाणिपादपायूपस्थाः। आदित्यो वै शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। आदित्यो वै वचनादानागमनविसर्गानन्दाः। आनन्दमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्यः। नमो मित्राय भानवे मृत्योर्मा पाहि। भ्राजिष्णवे विश्वहेतवे नमः। सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु। सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च। चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः। आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्। सविता पश्चात्तात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्। सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः। ॐ मित्येकाक्षरं ब्रह्म। घृणिरिति द्वे अक्षरे। सूर्य इत्यक्षरद्वयम्। आदित्य इति त्रीण्यक्षराणि। एतस्यैव सूर्यस्याष्टाक्षरो मनुः। यः सदाऽहरजपति स वै ब्राह्मणो भवति। स वै ब्राह्मणो भवति। सूर्याभिमुखो जप्त्वा महाव्याधिभयात्प्रमुच्यते। अलक्ष्मीर्नश्यति। अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति। अगम्यागमनात्पूतो भवति। पतितसंभाषणात्पूतो भवति। असत्संभाषणात्पूतो भवति। मध्याह्ने सूर्याभिमुखः पठेत्। सद्योत्पन्नपञ्चमहापातकात्प्रमुच्यते। सैषां सावित्रीं विद्यां न किञ्चिदपि न कस्मैचित्प्रशंसयेत्। य एतां महाभागः प्रातः पठति स भाग्यवाञ्जायते। पशून्विन्दति। वेदार्थं लभते। त्रिकालमेतज्जप्त्वा क्रतुशत-

फलमवाप्नोति । यो हस्तादित्ये जपति स महामृत्युं तरति स महामृत्युं तरति य एवं वेद ॥ १ ॥ इत्युपनिषत् ॥ हरिः ॐ ॥

॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ॥

॥ इति सूर्योपनिषत्समाप्ता ॥

१६५. गायत्र्यथर्वशीर्षम्

श्रीगणेशाय नमः

॥ हरिः ॐ ॥ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिपाठः ।

हरिः ॐ नमस्कृत्य भगवान् याज्ञवल्क्यः स्वयं परिपृच्छति त्वं ब्रूहि भगवन् गायत्र्या उत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ प्रणवेन व्याहृतयः प्रवर्तन्ते, तमसस्तु परं ज्योतिष्कः पुरुषः स्वयम् । भूर्विष्णुरिति ह ताः स्वाङ्गुल्या मथेत् ॥ २ ॥ मथ्यमानात्फेनो भवति, फेनाद्बुद्बुदो भवति बुद्बुदादण्डं भवति, अण्डवानात्मा भवति, आत्मन आकाशो भवति, आकाशाद्वायुर्भवति, वायोरग्निर्भवति, अग्नेरोङ्कारो भवति, ॐकाराद्व्याहृतिर्भवति, व्याहृत्या गायत्री भवति, गायत्र्याः सावित्री भवति, सावित्र्याः सरस्वती भवति, तस्माल्लोकाः प्रवर्तते, चत्वारो वेदाः साङ्गाः सोपनिषदः सेतिहासास्ते सर्वे गायत्र्याः प्रवतन्ते, यथाऽग्निर्देवानां ब्राह्मणो मनुष्याणां मेरुः शिखरिणां गङ्गा नदीनां वसन्त ऋतूनां ब्रह्मा प्रजापतीनामेवासौ मुख्यो गायत्र्या गायत्री छन्दो भवति ॥ ३ । किं भूः किं भुवः किं स्वः किं महः किं जनः किं तपः किं सत्यं किं तत् किं सवितुः किं वरेण्यं किं भर्गः किं देवस्य किं धीमहि किं धियः किं यः किं नः

किं प्रचोदयात् ॥ ४ ॥ भूरिति भूर्लोकः भुव इत्यन्तरिक्षलोकः । स्वरिति स्वर्लोको मह इति महर्लोको जन इति जनो लोकस्तप इति तपोलोकः सत्यमिति सत्यलोकः । भूर्भुवःस्वरोमिति त्रैलोक्यम् ॥ ५ ॥ तदसौ तेजो यत्तेजसोऽग्निर्देवता सवितुरित्यादित्यस्य वरेण्यमित्यन्नम् । अन्नमेव प्रजापतिर्भर्ग इत्यापः । आपो वै भर्ग एतावत्सर्वा देवता देवस्येन्द्रो वै देवो यद्दिवं तदिन्द्रस्तस्मात्सर्वकृत् पुरुषो नाम विष्णुः ॥ ६ ॥ धीमहि किमध्यात्मं तत्परमं पदमित्यध्यात्मं यो न इति पृथिवी वै यो नः प्रचोदयात् काम इमाँल्लोकान् प्रच्यावयन् यो नृशंस्योऽस्तोष्यस्तत्परमो धर्म इत्येषा गायत्री किंगोत्रा कत्यक्षरा कतिपदा कतिकुक्षिः कतिशीर्षा च ॥ ७ ॥ सांख्यायनसगोत्रा गायत्री चतुर्विंशत्यक्षरा त्रिपदा षट्कुक्षिः सावित्री कक्षास्त्रयः पादा भवन्ति ॥ ८ ॥ काऽस्याः कुक्षिः कानि पंच शीर्षाणि । ऋग्वेदोऽस्याः प्रथमः पादो भवति, यजुर्वेदो द्वितीयः, सामवेदस्तृतीयः, पूर्वा दिक् प्रथमा कुक्षिर्भवति, दक्षिणा द्वितीया, पश्चिमा तृतीया, उदीची चतुर्थी, ऊर्ध्वा पञ्चमी, अधरा षष्ठी कुक्षिः । व्याकरणमस्याः प्रथमं शीर्षं भवति, शिक्षा द्वितीयम्, कल्पस्तृतीयम्, निरुक्तञ्चतुर्थं, ज्योतिषामयनं पञ्चमम् ॥९॥ किं लक्षणं किमु चेष्टितं किमुदाहृतं किमक्षरं दैवत्यम् ॥ १० ॥ लक्षणं मीमांसा अथर्ववेदो विचेष्टितम् । छन्दोविधिरित्युदाहृतम् ॥ ११ ॥ को वर्णः कः स्वरः । श्वेतो वर्णः षट् स्वराणि इमान्यक्षराणि दैवतानि भवन्ति । प्रातः पूर्वा भवति, गायत्री मध्यमा, सावित्री पश्चिमा, सन्ध्या सरस्वती ॥१२॥ प्रातः सन्ध्या रक्ता, रक्तपद्मासनस्था रक्ताम्बरधरा रक्तवर्णा रक्तगन्धानुलेपना चतुर्मुखा अष्टभुजा द्विनेत्रा दण्डाक्षमालाकमण्डलुस्रुवधारिणी सर्वाभरणभूषिता कौमारी ब्राह्मी हंसवाहिनी ऋग्वेदसंहिता ब्रह्मदैवत्या त्रिपदा गायत्री षट्कुक्षिः पञ्चशीर्षा अग्निमुखा रुद्रशिवविष्णुहृदया ब्रह्मकवचा सांख्य-

यन सगोत्रा भूर्लोकव्यापिनी अग्निस्तत्त्वम्, उदात्तानुदात्तस्वरित-स्वरमकार आत्मज्ञाने विनियोगः। इत्येषा गायत्री ॥ १३ ॥ मध्याह्नसन्ध्या श्वेता श्वेतपद्मासनस्था श्वेताम्बरधरा श्वेत-गन्धानुलेपना पञ्चमुखी दशभुजा त्रिनेत्रा शूलाक्षमाला कमण्डलुकपालधारिणी सर्वाभरणभूषिता सावित्री युवती माहेश्वरी वृषभवाहिनी यजुर्वेदसंहिता रुद्रदैवत्या, त्रिपदा सावित्री षट्कुक्षिः पञ्चशीर्षा अग्निमुखा रुद्रशिखा ब्रह्मकवचा भारद्वाजसगोत्रा भुवर्लोकव्यापिनी वायुस्तत्त्वम्, उदात्तानुदात्तस्वरितस्वरमकारः श्वेतवर्ण आत्मज्ञाने विनियोगः । इत्येषा सावित्री ॥ १४ ॥ सायंसन्ध्या कृष्णा कृष्णपद्मासनस्था कृष्णाम्बरधरा कृष्णवर्णा कृष्णगन्धानुलेपना कृष्णमाल्याम्बरधरा एकमुखी चतुर्भुजा द्विनेत्रा शङ्खचक्रगदापद्मधारिणी सर्वाभरणभूषिता सरस्वती वृद्धा वैष्णवी गरुडवाहिनी सामवेदसंहिता विष्णुदैवत्या त्रिपदा षट्कुक्षिः पञ्चशीर्षा अग्निमुखा विष्णुहृदया रुद्रशिखा ब्रह्मकवचा काश्यप-सगोत्रा स्वर्लोकव्यापिनी सूर्यस्तत्त्वमुदात्तानुदात्तस्वरितमकारः कृष्णवर्णो मोक्षज्ञाने विनियोगः। इत्येषा सरस्वती ॥ १५ ॥ रक्ता गायत्री श्वेता सावित्री कृष्णवर्णा सरस्वती। प्रणवो नित्ययुक्तश्च व्याहृतीषु च सप्तसु ।१६॥ सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुप-स्थिते। दश शतं समभ्यर्च्य गायत्री पावनी महत् ॥ १७ ॥ प्रह्लादोऽत्रिर्वसिष्ठश्च शुक्रः कण्वः पराशरः। विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौ(सौ)तको महान् ॥१८॥ याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्नि-स्तपो निधिः। गौतमो मुद्गलः श्रेष्ठो वेदव्यासश्च लोमशः ॥१९॥ अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो माण्डुकस्तथा। दुर्वासास्तपसा श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा ॥ २० ॥ उक्तात्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठान्यासु पूर्विका। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥ २१ ॥ त्रिष्टुप् च जगती चैव तथातिजगती मता। शक्करी सातिपूर्वा यादष्ट्यत्यष्टी तथैव च। धृतिश्चातिधृतिश्चैव प्रकृतिः

कृतिराकृतिः ॥ २२ ॥ विकृतिः संकृतिश्चैव तथातिकृतिरुत्कृतिः । इत्येतांश्छन्दसां संज्ञाः क्रमशो वच्मि सांप्रतम् ॥ २३ ॥ भूरिति छन्दो भुव इति छन्दः स्वरितो छन्दो भूर्भुवःस्वरोमिति देवी गायत्री इत्येतानि छन्दांसि प्रथममाग्नेयं द्वितीयं प्राजापत्यं तृतीयं सौम्यं चतुर्थमैशानं पञ्चममादित्यं षष्ठं बार्हस्पत्यं सप्तमं पितृदैवत्यमष्टमं भगदैवत्यं नवममार्यमं दशमं सावित्रमेकादशं त्वाष्ट्रं द्वादशं पौष्णं त्रयोदशमैन्द्राग्नं चतुर्दशं वायव्यं पञ्चदमं वामदैवत्यं षोडशं मैत्रावरुणं सप्तदशमाङ्गिरसमष्टादशं वैश्वदेव्यमेकोनविंशं वैष्णवं विंशं वासवमेकविंशं रौद्रं द्वाविंशमाश्विनं त्रयोविंशं ब्राह्मं चतुर्विंशं सावित्रम् ॥ २४ ॥ दीर्घान्स्वरेण संयुक्तान् बिंदुनादसमन्वितान् । व्यापकान्विन्यसेत्पश्चाद्दशपङ्क्त्यक्षराणि च । द्रवुपुंस इति प्रत्यक्षबीजानि । प्रह्लादिनी प्रभा सत्या विश्वा भद्रा विलासिनी । प्रभावती जया कान्ता शान्ता पद्मा सरस्वती ॥ २५ ॥ विद्रुमस्फटिकाकारं पद्मरागसमप्रभम् । इन्द्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुङ्कुमप्रभम् ।२६ ॥ अञ्जनाभं च गाङ्गेयं वैडूर्यं चन्द्रसन्निभम् । हारिद्रं कृष्णदुग्धाभं रविकान्तिसमं भवम् ॥ २७ ॥ शुकपिच्छसमाकारं क्रमेण परिकल्पयेत् । पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ॥ २८ ॥ गन्धो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्तथैव च ॥२९॥ घ्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक् श्रोत्रं च तथापरम् । उपस्थपायुपादादि पाणिर्वागपि च क्रमात् ॥ ३० ॥ मनो बुद्धिरहङ्कारमव्यक्त च यथाक्रमम् । सुमुखं संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा । एकमुखं च द्विमुखं त्रिमुखं च चतुर्मुखम् ॥ ३१ ॥ पञ्चमुखं षण्मुखं चाधोमुखं चैव व्यापकम् । अञ्जलीकं ततः प्रोक्तं मुद्रितं तु त्रयोदशम् ॥ ३२ ॥ शकटं यमपाशं च ग्रथितं संमुखोन्मुखम् । प्रलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यः कूर्मो बराहकम् ॥३३॥ सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा । एता मुद्राश्चतुर्विंशद्गायत्र्याः सुप्रतिष्ठिताः ॥ ३४ ॥ ॐ मूर्ध्नि संघाते ब्रह्मा विष्णुर्ललाटे रुद्रो भ्रूमध्ये चक्षुश्चन्द्रादित्यौ

कर्णयोः शुक्रबृहस्पती नासिके वायुदैवत्यं प्रभातं दोषा उभे सन्ध्ये मुखमग्निर्जिह्वा सरस्वती ग्रीवा स्वाध्यायाः स्तनयोर्वसवो बाह्वोर्मरुतः हृदयं पर्जन्यमाकाशमपरं नाभिरन्तरिक्षं कटिरिन्द्रियाणि जघनं प्राजापत्यं कैलासमलयौ ऊरू विश्वेदेवा जानुभ्यां जान्वोः कुशिकौ जङ्घयोरयनद्वयं सुराः पितरः पादौ पृथिवी वनस्पतिर्गुल्फौ रोमाणि मुहूर्तास्ते विग्रहाः केतुमासा ऋतवः सन्ध्याकालत्रयमाच्छादनं संवत्सरो निमिषः अहोरात्रावादित्यचन्द्रमसौ सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशापराम् । सहस्रनेत्रीं देवीं गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ॥ ३५ ॥ तत्सवितुर्वरदाय नमः तत्प्रातरादित्याय नमः । सायमधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति ॥ ३६ ॥ प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । तत्सायंप्रातः प्रयुंजानोऽपापो भवति । य इदं गायत्र्यथर्वशीर्षं ब्राह्मणः प्रयतः पठेत् । चत्वारो वेदा अधीता भवन्ति । सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति । सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति । सर्वप्रत्यूहात्पूतो भवति ॥ ३७ ॥ अपेयपानात्पूतो भवति ॥ ३८ ॥ अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति । अलेह्यलेहनात्पूतो भवति । अचोष्यचोषणात्पूतो भवति । सुरापानात्पूतो भवति ॥ ३९ ॥ सुवर्णस्तेयात्पूतो भवति । पङ्क्तिभेदनात्पूतो भवति । पतितसंभाषणात्पूतो भवति । अनृतवचनात्पूतो भवति । गुरुतल्पगमनात्पूतो भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । वृषलीगमनात्पूतो भवति ॥ ४० ॥ ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति । भ्रूणहत्यायाः पूतो भवति । वीरहत्यायाः पूतो भवति । अब्रह्मचारी सुब्रह्मचारी भवति ॥४१॥ अनेनाथर्वशीर्षेणाधीतेन क्रतुशतेनेष्टं भवति । षष्टिसहस्रं गायत्री जप्ता भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयेदर्थसिद्धिर्भवति । य इदं गायत्र्यथर्वशीर्षं ब्राह्मणः प्रयतः पठेत् ॥ स सर्वपापैः प्रमुच्यते ब्रह्मलोके महीयते ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४२ ॥ हरिः ॐ ॥ भद्रं कर्णेभिति शान्तिपाठः ।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ इति गायत्र्यथर्वशीर्षं सम्पूर्णम् ॥

१६६. सावित्र्युपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

सावित्र्युपनिषद्वेद्यचित्सावित्रपदोज्ज्वलम् ।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तं रामचन्द्रपदं भजे ॥ १ ॥

सावित्र्यात्मा पाशुपतं परंब्रह्मावधूतकम् ।
त्रिपुरातपनं देवी त्रिपुरा कठभावना ॥ २ ॥

॥ ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

हरि ॐ । कः सविता ? का सावित्री ? अग्निरेव सविता पृथिवी सावित्री । स यत्राग्निस्तत्पृथिवी । यत्र वै पृथिवी तत्राग्निस्ते द्वे योनी तदेकं (निस्तदेकं) मिथुनम् ॥ १ ॥

कः सविता ? का सावित्री ? वरुण एव सविताऽऽपः सावित्री । स यत्र वरुणस्तदापो यत्र वा आपस्तद्वरुणस्ते द्वे योनी । तदेकं मिथुनम् ॥ २ ॥

कः सविता ? का सावित्री ? वायुरेव सविताकाशः सावित्री । स यत्र वायुस्तदाकाशो यत्र वा आकाशस्तद्वायुस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ३ ॥

कः सविता ? का सावित्री ? यज्ञ एव सविता छन्दांसि सावित्री । स यत्र यज्ञस्तत्र छन्दांसि यत्र वा छन्दांसि स यज्ञस्ते द्वे योनी । तदेकं मिथुनम् ॥ ४ ॥

कः सविता ? का सावित्री ? स्तनयित्नुरेव सविता विद्युत्सावित्री । स यत्र स्तनयित्नुस्तद्विद्युत् यत्र वा विद्युत्तत्र स्तनयित्नुस्ते द्वे योनी । तदेकं मिथुनम् ॥ ६ ॥

कः सविता ? का सावित्री ? चन्द्र एव सविता नक्षत्राणि सावित्री । स यत्र चन्द्रस्तन्नक्षत्राणि यत्र वा नक्षत्राणि स चन्द्रमास्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥ ७ ॥

कः सविता ? का सावित्री ? मन एव सविता वाक् सावित्री स । यत्र मनस्तद्वाक् यत्र वा वाक् तन्मनस्ते द्वे योनी तदेकं मिथुनम् ॥८॥ कः सविता ? का सावित्री ? पुरुष एव सविता स्त्री सावित्री । स यत्र पुरुषस्तत्स्त्री यत्र वा स्त्री स पुरुषस्ते द्वे योनी । तदेकं मिथुनम् ॥९॥ तस्या एव प्रथमः पादो भूस्तत्सवितुर्वरेण्यमित्यग्निर्वै वरेण्यमापो वरेण्यं चन्द्रमा वरेण्यम् । तस्या एव द्वितीयः पादो भर्गमयोऽपो भुवो भर्गो देवस्य धीमहीत्यग्निर्वै भर्ग आदित्यो वै भर्गश्चन्द्रमा वै भर्गः । तस्या एष (एव) तृतीय पादः स्वर्धियो यो नः प्रचोदयादिति । स्त्री चैव पुरुषश्च प्रजनयतो यो वा एतां सावित्रीमेवं वेद स पुनर्मृत्युं जयति । बलातिबलयोर्विराट् पुरुष ऋषिः । गायत्री छन्दः । गायत्री देवता । अकारोकारमकारा बीजाद्याः । क्षुधादिनिरसने विनियोगः । क्लीमित्यादिषडङ्ग-न्यासः । ध्यानम् ।

अमृतकरतलार्द्रौ सर्वसंजीवनाढ्यावघहरणसुदक्षौ वेदसारे मयूखे । प्रणवमयविकारौ भास्कराकारदेहौ सततमनुभवेऽहं तौ बलातिबलान्तौ ॥

ॐ ह्रीं बले महादेवि ह्रीं महाबले क्लीं चतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिप्रदे तत्सवितुर्वरदात्मिके ह्रीं वरेण्यं भर्गो देवस्य वरदात्मिके अतिबले सर्वदयामूर्ते बले सर्वक्षुद्भ्रमोपनाशिनि धीमहि धियो यो नो जाते प्रचुर्यः यो प्रचोदयादात्मिके प्रणवशिरस्कात्मिके हुं फट् स्वाहा । एवं विद्वान् कृतकृत्यो भवति सावित्र्या एव सलोकतां जयतीत्युपनिषत् ॥ ९ ॥

हरिः ॐ तत्सत् । ॐ आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

॥ इति सावित्र्युपनिषत्समाप्ता ॥

१६७. नारायणोपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ ॐअथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति । नारायणात्प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी । नारायणाद् ब्रह्मा जायते । नारायणाद्रुद्रो जायते । नारायणादिन्द्रो जायते । नारायणात्प्रजापतिः प्रजायते । नारायणाद् द्वादशादित्या रुद्रा वसवः सर्वाणि छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते । नारायणात्प्रवर्तन्ते । नारायणे प्रलीयन्ते । एतदृग्वेदशिरोऽधीते ॥ १ ॥

अथ नित्यो नारायणः । ब्रह्मा नारायणः । शिवश्च नारायणः शक्रश्च नारायणः । कालश्च नारायणः । दिशश्च नारायणः । विदिशश्च नारायणः । ऊर्ध्वं च नारायणः । अधश्च नारायणः । अन्तर्बहिश्च नारायणः । नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् । य एवं वेद स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति । एतद्यजुर्वेदशिरोऽधीते ॥२॥

ओमित्यग्रे व्याहरेत् । नम इति पश्चात् । नारायणायेत्युपरिष्टात् ओमित्येकाक्षरम् । नम इति द्वे अक्षरे । नारायणायेति पञ्चाक्षराणि । एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम् । यो ह वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदमध्येति । अनपब्रुवः सर्वमायुरेति । विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषं गौपत्यं ततोऽमृतत्वमश्नुते । ततोऽमृतत्वमश्नुत इति । एतत्सामवेदशिरोऽधीते ॥ ३ ॥

प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपम् । अकार उकारो मकार इति । ता अनेकधा समभवत्तदेतदोमिति । यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसारबन्धनात् । ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रोपासको

वैकुण्ठभवनं गमिष्यति। तदिदं पुण्डरीकं विज्ञानघनं तस्मात्तडिदाभमात्रम्। ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः। ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युत इति। सर्वभूतस्थमेकं वै नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्मोम्। एतदथर्वशिरोऽधीते। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातरधीयानः पापोऽपापो भवति। मध्यन्दिनमादित्याभिमुखोऽधीयानः पञ्चमहापातकोपपातकात्प्रमुच्यते। सर्ववेदपारायणपुण्यं लभते। नारायणसायुज्यमवाप्नोति। श्रीमन्नारायणसायुज्यमवाप्नोति य एवं वेद ॥ ५ ॥

॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥ हरिः ॐ ॥

॥ इति नारायणोपनिषत्समाप्ता ॥

१६८. कृष्णोपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

यो रामः कृष्णतामेत्य सार्वात्म्यं प्राप्य लीलया।
अतोषद्देवमौनिपटलं तं नतोऽस्म्यहम् ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः

हरिः ॐ। श्रीमहाविष्णुं सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः। तं होचुर्नोऽवद्यमतारान्वै गण्यन्ते आलिङ्गामो भवन्तमिति। भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मामालिङ्गथ अन्ये येऽवतारास्ते हि गोपा न स्त्रीश्च नो कुरु।

अन्योन्यविग्रहं धार्यं तवाङ्गस्पर्शनादिह।
शश्वत्स्पर्शयितास्माकं गृह्णीमोऽवतरान्वयम् ॥ १ ॥

रुद्रादीनां वचः श्रुत्वा प्रोवाच भगवान्स्वयम् ।
अङ्गसङ्गं करिष्यामि भवद्वाक्यं करोम्यहम् ॥ २ ॥
मोदितास्ते सुराः सर्वे कृतकृत्याधुना वयम् ।
यो नन्दः परमानन्दो यशोदा मुक्तिगेहिनी ॥ ३ ॥
माया सा त्रिविधा प्रोक्ता सत्त्वराजसतामसी ।
प्रोक्ता च सात्विकी रुद्रे भक्ते ब्रह्मणि राजसी ॥ ४ ॥
तामसी दैत्यपक्षेषु माया त्रेधा ह्युदाहृता ।
अजेया वैष्णवी माया जप्येन च सुता पुरा ॥ ५ ॥
देवकी ब्रह्मपुत्रा सा या वेदैरुपगीयते ।
निगमो वसुदेवो यो वेदार्थः कृष्णरामयोः । ६ ॥
स्तुवते सततं यस्तु सोऽवतीर्णो महीतले ।
वने वृन्दावने क्रीडन् गोपगोपीसुरैः सह ॥ ७ ॥
गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः ।
वंशस्तु भगवान्रुद्रः शृङ्गमिन्द्रः सगोसुरः ॥ ८ ॥
गोकुलं वनवैकुण्ठं तापसास्तत्र ते द्रुमाः ।
लोभक्रोधादया दैत्याः कलिकालतिरस्कृतः ॥ ९ ॥
गोपरूपो हरिः साक्षान्मायाविग्रहधारणः ।
दुर्बोधं कुहकं तस्य मायया मोहितं जगत् ॥ १० ॥
दुर्जया सा सुरैः सर्वैर्धृष्टिरूपो भवेद्द्विजः ।
रुद्रो येन कृतो वंशस्तस्य माया जगत्कथम् ॥ ११ ॥
बलं ज्ञानं सुराणां वै तेषां ज्ञानं हृतं क्षणात् ।
शेषनागोऽभवद्रामः कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम् ॥ १२ ॥
अष्टावष्टसहस्रे द्वे शताधिक्यः स्त्रियस्तथा ।
ऋचोपनिषदस्ता वै ब्रह्मरूपा ऋचः स्त्रियः ॥ १३ ॥
द्वेषश्चाणूरमल्लोऽयं मत्सरो मुष्टिको जयः ।
दर्पः कुवलयापीडो गर्वो रक्षः खगो बकः ॥ १४ ॥

दया सा रोहिणी माता सत्यभामा धरेति वै ।
अघासुरा महाव्याधिः कलिः कंसः स भूपतिः ॥ १५ ॥
शमो मित्रः सुदामा च सत्याक्रूरोद्धवो दमः ।
वः शङ्ख स स्वयं विष्णुर्लक्ष्मीरूपो व्यवस्थितः ॥ १६ ॥
दुग्धसिन्धौ समुत्पन्नो मेघघोषस्तु संस्मृतः ।
दुग्धोदधिः कृतस्तेन भग्नभाण्डो दधिग्रहे ॥ १७ ॥
क्रीडते बालको भूत्वा पूर्ववत्सुमहोदधौ ।
संहारार्थं च शत्रूणां रक्षणाय च संस्थितः ॥ १८ ॥
कृतार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम् ।
यत्स्रष्टुमीश्वरेणासीत्तच्चक्रं ब्रह्मरूपधृक् ॥ १९ ॥
जयन्तीसम्भवो वायुश्चमरो धर्मसञ्ज्ञितः ।
यस्यासौ ज्वलनाभासः खड्गरूपो महेश्वरः ॥ २० ॥
कश्यपोलूखलः ख्यातो रज्जुर्माताऽदितिस्तथा ।
चक्रं शङ्खं च संसिद्धि बिन्दुं च सर्वमूर्धनि ॥ २१ ॥
यावन्ति देवरूपाणि वदन्ति विबुधा जनाः ।
नमन्ति देवरूपेभ्य एवमादि न संशयः ॥ २२ ॥
गदा च कालिका साक्षात्सर्वशत्रुनिबर्हिणी ।
धनुः शार्ङ्गं स्वमाया च शरत्कालः सुभोजनः ॥ २३ ॥
अब्जकाण्डं जगद्बीजं धृतं पाणौ स्वलीलया ।
गरुडो वटभाण्डीरः सुदामा नारदो मुनिः ॥ २४ ॥
वृन्दा भक्तिः क्रिया बुद्धिः सर्वजन्तुप्रकाशिनी ।
तस्मान्न भिन्नं नाभिन्नमाभ्यो भिन्नो न वै विभुः ।
भूमावुतारितं सर्वं वैकुण्ठं स्वर्गवासिनाम् ॥ २५ ॥
सर्वतीर्थफलं लभते य एवं वेद ।
देहबन्धाद्विमुच्यते देहबन्धाद्विमुच्यते इत्युपनिषत् ॥

ॐ भद्रङ्कर्णेभिरिति शान्तिः ।

॥ इति कृष्णोपनिषद् ॥

१६९. गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

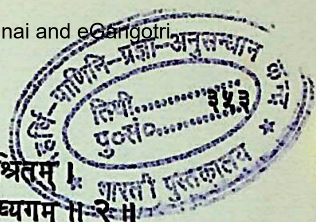
श्रीमत्पञ्चपदाधारं सविशेषतयोज्ज्वलम् ।
प्रतियोगिविनिर्मुक्तं निर्विशेषं हरिं भजे ॥ १ ॥
गोपालतापनं कृष्णं याज्ञवल्क्यं वराहकम् ।
शाट्यायनी हयग्रीवं दत्तात्रेयं च गारुडम् ॥ २ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ।

ॐ कृषिर्भूवाचकः शब्दो नश्च निर्वृतिवाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ १ ॥
ॐ सच्चिदानन्दाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ २ ॥

हरिः ॐ मुनयो ह वै ब्राह्मणमूचुः । कः परमो देवः । कुतो मृत्युर्बिभेति । कस्य विज्ञानेनाखिलं विज्ञातं भवति । केनेदं विश्वं संसरतीति । तदु होवाच ब्राह्मणः । कृष्णो वै परमं दैवतम् । गोविन्दान्मृत्युर्बिभेति । गोपीजनवल्लभज्ञानेनैतद्विज्ञानं भवति । स्वाहेदं विश्वं संसरतीति । तदुहोचुः । कः कृष्णः । गोविन्दश्च कोऽसाविति । गोपीजनवल्लभश्च कः । का स्वाहेति । तानुवाच ब्राह्मणः । पापकर्षणो गोभूमिवेदवेदितो गोपीजनविद्याकलापप्रेरकः । तन्माया चेति सकलं परं ब्रह्मैव तत् । यो ध्यायति रसति भजति सोऽमृतो भवतीति । ते होचुः । किं तद्रूपं किं रसनं किमाहो तद्भजनं तत्सर्वं विविदिषतामाख्याहीति । तदुहोवाच हैरण्यो गोपवेषमभ्राभं तरुणं कल्पद्रुमाश्रितम् । तदिह श्लोका भवन्ति ।

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥ १ ॥



गोपगोपीगवावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम् ।
दिव्यालङ्करणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम् ॥ २ ॥

कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम् ।
चिन्तयंश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥ ३ ॥ इति ।

तस्य पुना रसनमितिजलभूमि तु सम्पाताः। कामादिकृष्णायेत्येकं पदम् । गोविन्दायेति द्वितीयम् । गोपीजनेति तृतीयम् । वल्लभायेति तुरीयम् । स्वाहेति पञ्चममिति पञ्चपदं जपन्पचाङ्गं द्यावाभूमी सूर्याचन्द्रमसौ तद्रूपतया ब्रह्म सम्पद्यत इति । तदेष श्लोकः क्लींमित्येतदादावादाय कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभायेति बृहन्मानव्यासकृदुच्चरेद्योऽसौ गतिस्तस्यास्ति मङ्क्षु-नान्या गतिः स्यादिति । भक्तिरस्य भजनम् । एतदिहामुत्रोपाधि-नैराश्येनामुष्मिन्मनःकल्पनम् । एतदेव च नैष्कर्म्यम् ।

कृष्णं तं विप्रा बहुधा यजन्ति गोविन्दं सन्तं बहुधा आराधयन्ति ।
गोपी जनवल्लभो भुवनानि दध्रे स्वाहाश्रितो जगदेतत्सुरेताः ॥ १ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो जन्ये जन्ये .पञ्चरूपो बभूव ।
कृष्णस्तदेकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौ पञ्चपदो बिभाति ॥ २ ॥

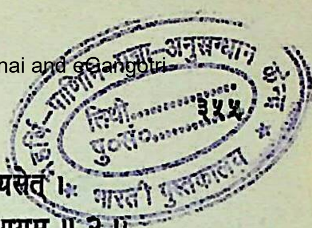
ते होचुरुपासनमेतस्य परमात्मनो गोविन्दस्याखिलाधारिणो ब्रूहीति । तानुवाच यत्तस्य पीठं हैरण्याष्टपलाशमम्बुजं तदन्तरा-धिकानलास्त्रयुगं तदन्तरालाद्यर्णाखिलबीजं कृष्णाय नम इति बीजाढ्यं सब्राह्मणमादायानङ्गगायत्रीं यथावदालिख्य भूमण्डलं शूलवेष्टितं कृत्वाङ्गवासुदेवादिरुक्मिण्यादिस्वशक्तिनन्दादिवसुदे-वादिपार्थादिनिध्यादिवीतं यजेत्सन्ध्यासु प्रतिपत्तिभिरुपचारैः । तेनास्याखिलं भवत्यखिलं भवतीति ॥२॥ तदीह श्लोका भवन्ति ।

एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन्बहुधा यो विभाति ।
तं पीठं येऽनुभजन्ति धीरास्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ ३ ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तं पीठगं येऽनुभजन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ ४ ॥
एतद्विष्णोः परमं पदं ये नित्योद्युक्तास्तं यजन्ति न कामात् ।
तेषामसौ गोपरूपः प्रयत्नात्प्रकाशयेदात्मपदं तदेव ॥ ५ ॥
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो विद्यां तस्मै गोपयति स्म कृष्णः ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुः शरणं व्रजेत् ॥ ६ ॥
ओङ्कारेणान्तरितं ये जपन्ति गोविन्दस्य पञ्चपदं मनुम् ।
तेषामसौ दर्शयेदात्मरूपं तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशान्त्यै ॥ ७ ॥
एतस्मा एव पञ्चपदादभूवन्गोविन्दस्य मनवो मानवानाम् ।
दशार्णाद्यास्तेऽपि सङ्क्रन्दनाद्यैरभ्यस्यन्ते भूतिकामैर्यथावत् ॥ ८ ॥

ते पप्रच्छुस्तदुहोवाच ब्रह्मसदनं चरतो मे ध्यातः स्तुतः परमेश्वरः । परार्धान्ते सोऽबुध्यत । क उपदेष्टा मे पुरुषः पुरस्तादाविर्बभूव । ततः प्रणतो मायानुकूलेन हृदा मह्यमष्टादशार्णस्वरूपं सृष्टये दत्वान्तर्हितः । पुनस्ते सिसृक्षा मे प्रादुरभूवन् । तेष्वक्षरेषु विभज्य भविष्यज्जगद्रूपं प्रकाशमयम् । तदिह कालाकालात्पृथिवीतोऽग्निर्बिन्दोरिन्दुस्तत्सम्पातात्तदर्क इति । क्लीङ्कारादजस्रं कृष्णादाकाशं खाद्वायुरुत्तरात्सुरभिविद्याः प्रादुरकार्षमकार्षमिति । तदुत्तरास्त्रीपुंसादिभेदाः सकलमिदं सकलमिदमिति ॥ ३ ॥ एतस्यैव यजनेन चन्द्रध्वजो गतमोहमात्मानं वेदयति । ओङ्कारालीकं मनुमावर्तयेत् । सङ्गरहितोऽभ्यानयत् । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् । तस्मादेनं नित्यमावर्तयेदिति ॥ ४ ॥ तदाहुरेके यस्य प्रथमपदाद्भूमिर्द्वितीयपदाज्जलं तृतीयपदात्तेजश्चतुर्थपदाद्वायुचरमपदाद्व्योमेति । वैष्णवं पञ्चव्याहृतिमयं मन्त्रं कृष्णावभासकं कैवल्यस्य सृत्यै सततमावर्तयेत्सततमावर्तयेदिति ॥ ५ ॥ तदत्र गाथाः ।

यस्य चाद्यपदाद्भूमिर्द्वितीयात्सलिलोद्भवः ।
तृतीयात्तेज उद्भूतं चतुर्थाद्गन्धवाहनः ॥ १ ॥



पञ्चमादम्बरोत्पत्तिस्तमेवैकं समभ्यसेत् ।
चन्द्रध्वजोऽगमद्विष्णोः परमं पदमव्ययम् ॥ २ ॥

ततो विशुद्धं विमलं विशोकमशेषलोभादिनिरस्तसङ्गम् ।
यत्तत्पदं पञ्चपदं तदेव स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति ॥ ३ ॥

तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहं पञ्चपदं वृन्दावनसुरभूरुह-तलासीनं सततं मरुद्गणोऽहं परमया स्तुत्या स्तोष्यामि ।

ॐ नमो विश्वस्वरूपाय विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ १ ॥

नमो विज्ञानरूपाय परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय गोपीनाथाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २ ॥

नमः कमलनेत्राय नमः कमलमालिने ।
नमः कमलनाभाय कमलापतये नमः ॥ ३ ॥

बर्हापीडाभिरामाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
रमामानसहंसाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४ ॥

कंसवंशविनाशाय केशिचाणूरघातिने ।
वृषभध्वजवन्द्याय पार्थसारथये नमः ॥ ५ ॥

वेणुनादविनोदाय गोपालायाहिमर्दिने ।
कालिन्दीकूललोलाय लोलकुण्डलधारिणे ॥ ६ ॥

बल्लवीवदनाम्भोजमालिने नृत्तशालिने ।
नमः प्रणतपालाय श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ७ ॥

नमः पापप्रणाशाय गोवर्धनधराय च ।
पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ॥ ८ ॥

निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥ ९ ॥

प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ।
आधिव्याधिभुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो ॥ १० ॥
श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर ।
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ॥ ११ ॥
केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन ।
गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥ १२ ॥

अथैवं स्तुतिभिराराधयामि । तथा यूयं पञ्चपदं जपन्तः श्रीकृष्णं ध्यायन्तः संसृतिं तरिष्यथेति होवाच हैरण्यगर्भः । अमुं पञ्चपदमनुमावर्तयेद्यः स यात्यनायासतः केवलं तत्पदं तत् । अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शदिति । तस्मात्कृष्ण एव परमो देवस्तं ध्यायेत् । तं यजेत् । तं रसयेत् । तं भजेत् । हरिः ॐ ।

ॐ तत्सदित्युपनिषत् । ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः ।
॥ इति श्रीगोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्सम्पूर्णा ॥

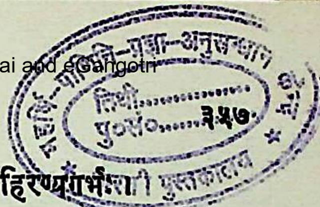
१७०. एकाक्षरोपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

एकाक्षरपदारूढं सर्वात्मकमखण्डितम् ।
सर्ववर्जितचिन्मात्रं त्रिपान्नारायणं भजे ॥ १ ॥

ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

हरिः ॐ ॥ एकाक्षरं त्वक्षरेऽत्रास्ति सोमे सुषुम्नायां चेह दृढी स एकः ।
त्वं विश्वभूर्भूतपतिः पुराणः पर्जन्य एको भुवनस्य गोप्ता ॥ १ ॥
विश्वे निमग्नपदवीः कवीनां त्वं जातवेदो भुवनस्य नाथः ।
अजातमग्रे स हिरण्यरेता यज्ञस्त्वमेवैकविभुः पुराणः ॥ २ ॥
प्राणः प्रसूतिर्भुवनस्य योनिर्व्याप्तं त्वया एकपदेन विश्वम् ।
त्वं विश्वभूर्योनिपराः स्वगर्भे कुमार एको विशिखः सुधन्वा ॥ ३ ॥



वितत्य बाणं तरुणार्कवर्णं व्योमान्तरे भासि हिरण्यगर्भः ।
भासा त्वया व्योम्नि कृतः सुतार्क्ष्यस्त्वं वै कुमारस्त्वमरिष्टनेमिः ॥ ४ ॥

त्वं वज्रभृद् भूतपतिस्त्वमेव कामः प्रजानां निहितोऽसि सोमे ।
स्वाहा स्वधा यच्च वषट् करोति रुद्रः पशूनां गुहया निमग्नः ॥ ५ ॥

धाता विधाता पवनः सुपर्णो विष्णुर्वराहो रजनी अहश्च ।
भूतं भविष्यत्प्रभवः क्रियाश्च कालः क्रमस्त्वं परमाक्षरं च ॥ ६ ॥

ऋचो यजूंषि प्रसवन्ति वक्रात्सामानि सम्राड्वसुरन्तरिक्षम् ।
त्वं यज्ञनेता हुतभुग्विभुश्च रुद्रास्तथा दैत्यगणा वसुश्च ॥ ७ ॥

स एष देवोऽम्बरगश्च चक्रे अन्येऽभ्यधिष्ठेत तमो निरुन्ध्य ।
हिरण्मयं यस्य विभाति सर्वं व्योमान्तरे रश्मिमिवांशुनाभिः ॥ ८ ॥

स सर्ववेत्ता भुवनस्य गोप्ता ताभिः प्रजानां निहिता जनानाम् ।
प्रोता त्वमोता विचितिः क्रमाणां प्रजापतिश्छन्दमयो विगर्भः ॥ ९ ॥

सामैश्चिदन्तो विरजश्च बाहुर्हिरण्य(ण्म)यं वेदविदां वरिष्ठम् ।
यमध्वरे ब्रह्मविदः स्तुवन्ति सामैर्यजुर्भिः क्रतुभिस्त्वमेव ॥ १० ॥

त्वं स्त्री पुमांस्त्वं च कुमार एकस्त्वं वै कुमारी ह्यथ भूस्त्वमेव ।
त्वमेव धाता वरुणश्च राजा त्वं वत्सरोऽग्न्यर्यम एव सर्वम् ॥ ११ ॥

मित्रः सुपर्णश्चन्द्र इन्द्रो वरुणो रुद्रस्त्वष्टा विष्णुः सविता गोपतिस्त्वम् ।
त्वं विष्णुर्भूतानि तु त्रासि दैत्यांस्त्वयाऽऽवृतं जगदुद्भवगर्भः ॥ १२ ॥

त्वं भूर्भुवः स्वस्त्वं हि स्वयं भूरथ विश्वतोमुखः ।
य एवं नित्यं वेदयते गुहाशयं प्रभुं पुराणं सर्वभूतं हिरण्मयम् ॥ १३ ॥

हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं स बुद्धिमान्बुद्धिमतीत्य तिष्ठतीत्युपनिषत् ॥ १४ ॥ हरिः ॐ ॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ।

॥ इत्येकाक्षरोपनिषत्समाप्ता ॥

१७१. नेत्रोपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिपाठः

हरिः ॐ ॥ अथातश्चाक्षुषीं पठितसिद्धविद्यां चक्षूरोगहरां व्याख्यास्यामो यया चक्षूरोगाः सर्वतो नश्यन्ति चक्षुषो दीप्तिर्भवति। अस्याश्चाक्षुषविद्याया अहिर्बुध्न्य ऋषिः। गायत्री छन्दः। सविता देवता। चक्षूरोगनिवृत्तये जपे विनियोगः ॥

ॐ चक्षुश्चक्षुश्चक्षुस्तेजः ॥ स्थिरो भवं मां पाहि त्वरितं चक्षूरोगान् शमय शमय मम जातरूपं तेजो दर्शय दर्शय यथाहमन्धो न स्यां तथा कृपया कल्याणं कुरु कुरु ॥

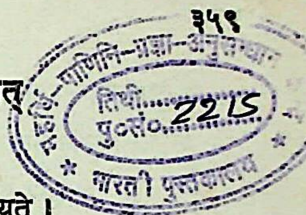
मम यानि यानि पूर्वजन्मोपार्जितानि चक्षुः प्रतिरोधकदुष्कृतानि तानि सर्वाणि निमूंलय निमूंलय।

ॐ नमश्चक्षुस्तेजोदात्रे दिव्यभास्कराय। ॐ नमः करुणाकराय अमृताय। ॐ नमो भगवते सूर्याय ॥

अक्षितेजसे नमः। खेचराय नमः। महते नमः। रजसे नमः। तमसे नमः। असतो मा(मां) सद्गमय। तमसो मा(मां) ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा (र्मांम्) अमृतं गमय। उष्णो भगवान्। शुचिरूपः हंसो भगवान्। शुचिरप्रतिरूपः। य इमां चाक्षुष्मतीं विद्यां ब्राह्मणो नित्यमधीते न तस्याक्षिरोगो भवति न तस्य कुलेऽन्धो भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा विद्यासिद्धिर्भवति ॥
ॐ विश्वरूपं घृणितं जातवेदसं हिरण्मयं ज्योतिरूपं तपन्तं सहस्ररश्मिभिः शतधा वर्तमानः। पुरः प्रजातामुदयत्येष सूर्यः। ॐ नमो भगवते आदित्याय अवाग्वादिने स्वाहा ॥ हरिः ॐ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिपाठः ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

॥ इति नेत्रोपनिषत्समाप्ता ॥



१७२. कलिसंतरणोपनिषत्

श्रीगणेशाय नमः

यद्दिव्यनाम स्मरतां संसारो गोष्पदायते ।
सा नव्यभक्तिर्भवति तद्रामपदमाश्रये ॥ १ ॥
ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ॥
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ इति शान्तिपाठः ॥

हरिः ॐ ॥ द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम । कथं भगवन् गां पर्यटन्कलिं संतरेयमिति । स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छृणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि । भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूत-कलिर्भवति । नारदः पुनः पप्रच्छ तन्नाम किमिति । स होवाच हिरण्यगर्भः ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥ १ ॥
इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम् ।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते ॥ २ ॥

इति षोडशकलावृतस्य जीवस्यावरणविनाशनम् । ततः प्रकाशते परं ब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति । पुनर्नारदः पप्रच्छ । भगवन्कोऽस्य विधिरिति । तं होवाच नास्य विधिरिति । सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन्ब्राह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यता-मेति । यदाऽस्य षोडशीकस्य सार्धत्रिकोटीर्जपति तदा ब्रह्महत्यां तरति । तरति वीरहत्याम् । स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति । पितृदेव-

मनुष्याणामपकारात्पूतो भवति। सर्वधर्मपरित्यागपापात्सद्यः शुचितामाप्नुयात्। सद्यो मुच्यते सद्यो मुच्यते इत्युपनिषत् ॥३॥

॥ हरि ॐ ॥ ॐ सह नाववत्विति शान्तिः ॥

॥ इति श्रीकलिसंतरणोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ इति स्तुतिमणिमालायाः द्वितीयभागः समाप्तः ॥

॥ इति करुणापतित्रिपाठिसङ्कलिता-सम्पादिता 'स्तुतिमणिमाला' समाप्ता ॥




महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु०सं० 2215
भारती पुस्तकालय


तिथि
पुस्त० 2215
भारती पुस्तकालय